पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

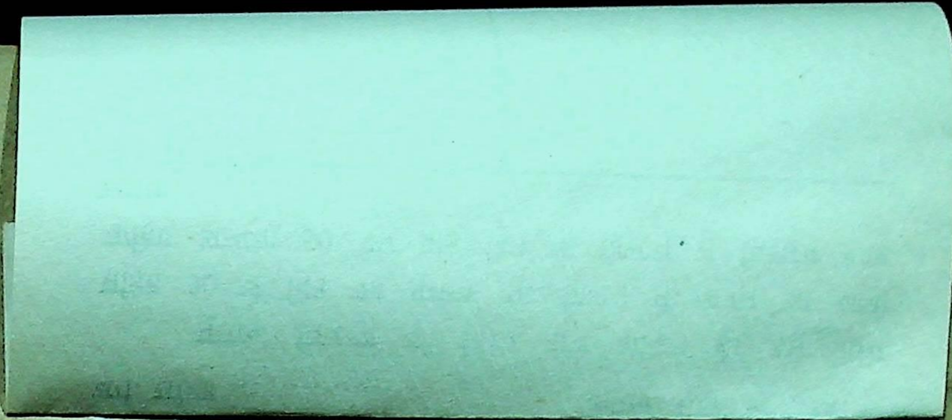
विषय संख्या ________ आगत नं० ________

लेखक [illegible]

शीर्षक [illegible]

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या



गणेश किरण माला की तीसरी किरण

॥ श्रीः ॥

शल्य तन्त्रम्

(प्राच्य पाश्चात्यतुलनात्मक)

MANUAL OF SURGERY

COMPARISON OF AYURVEDIC AND ALOPATHICSYSTEM



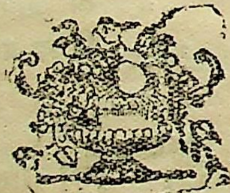
विरचित

प्रोफेसर डाक्टर बालकराम शुक्ल शास्त्री,
आयुर्वेदाचार्य, आयुर्विज्ञानाचार्य
एम० डी०, एच०, शास्त्राचार्य
आयुर्वेद कालिज
हृषीकेश



January 1934 Price Rs. 1-8-0

पाश्चात्य शल्य तन्त्र की विषयानुक्रमणिका



शल्य तन्त्र

भाग २

पाश्चात्य सिद्धान्तानुसार

प्रदाह Inphlamation इन्फ्लैमेशन

निरुक्ति—शरीर का कोई अङ्ग वा प्रत्यङ्ग आहत हो जावे, अथवा उसके किसी अँश विशेष में आघात लग जावे, उस आहत स्थान में जो परिवर्तन होता है, उसको प्रदाह (इन्फ्लैमेशन) कहते हैं।

पाश्चात्य चिकित्सक वर्डन् का सिद्धान्त

१८७० ईसवी में चिकित्सक महोदय ने प्रदाह का उत्तम रूपसे निरुपण किया था, इस समय भी वही निर्वचन प्रचलित हैं, इस स्थान में यह भी वर्णन करना आवश्यक है, कि जिस स्थान में आघात नहीं लगता है उस स्थान में प्रदाह वा शोथ देखा जाता है। तो उसका कारण दूषित रक्तका सञ्चय, अथवा शोणित का अवरोध, अथवा रक्त के अंदर विष का प्रवेश होजाना होता है।

अर्वाचीन प्राचीन सिद्धान्त

प्राचीन चिकित्सक सब जगह में प्रदाह को नाश करने वाली और अहित करने वाली प्रक्रिया मानते थे, उनका विचार था कि किसी स्थान में प्रदाह उत्पन्न हो जावे, तो उस स्थान का ध्वंस और क्षत जानना चाहिये, किन्तु इस समय यह सिद्धान्त नहीं माना जाता है, कारण यह है, कि जब से जीवाणु कारण वाद का प्रचार हुआ, तब से यह निश्चय हुआ, कि शोथ वा प्रदाह, शारीरिक अँश को ध्वंस करने वाली, वा अहित करने वाली वाली वस्तुओं से रक्षा करता हैं। इसका सारांश यह हुआ, कि विष, वीज अथवा दूषित पदार्थ शरीर के किसी अंश में प्रविष्ट होकर सब शरीर में फैलने की चेष्टा

करता हैं, किंतु ईश्वर की शक्ति ने उसकी उस चेष्टा को व्यर्थ करने के लिये चारों तरफ से उसका मार्ग वंद कर दिया है, और अन्त में उस समस्त दूषित पदार्थ को शरीर से बाहर निकल देती है।

प्रदाह के भेद

प्रदाह दो प्रकार का होता हैं। (१) तरुण (Acute) पुरातन (Chronic)।

प्रदाह का कारण—पूर्व प्रवर्तक (Predisposing) कारण दो प्रकार का है। स्थानिक और सार्वाङ्गिक।

स्थानिक कारण

१-बहुत समय से रक्त कम हो जावे, अथवा मृदु शोणित के संघातसे (Passive congestion) ठीक २ रक्तका सञ्चालन न होना।

२—किसी अंश की स्नायु की शक्ति का लोप, अथवा हानि हो जावे, और उसमें उस अंश की स्वाभाविक वाधा पहुँचाने वाली शक्ति कम हो जावे।

३—प्रदाह से कोई अंश एक वार आक्रान्त हो गया होवे, वही स्थान को दुर्वलता से फिर आक्रान्त हो जाता हैं।

सार्वाङ्गिक कारण

सार्वाङ्गिक पूर्व प्रवर्तक कारण से शरीर का ओजोबल कम हो जाता है।

१—वृद्धावस्था में पोषण शक्ति विशेष कम हो जाती है।

२—हृदय की दुर्वलता से शरीर में ठीक २ शोणित सञ्चालन नहीं होता हैं।

३—शोणित की अस्वस्थ अवस्था—कई कारणों से हो जाती है। जैसे—मदात्यय रोग, वहुमूत्र, मेदोविकृति। सीसा, पारद, फास्फोरस, आदि के उपयोग करने से विषैला रक्त हो जाता हैं। जब कि विधि से सेवन नहीं किये जाते हैं, उस समय रक्त में अस्वाभाविक उपकरण अधिक हो जाते हैं। अथवा वृक्क की दाह से सब शरीर में फैला हुआ शोथ अथवा वायुरोग आदि में शोणित से निकालने के योग्य पदार्थों का कम निकालना, अथवा एलब्यूमिन्यूरिया (मूत्र में शुक्र वस्तु मिलकर निकलै) अथवा एनमिया (शोणिताल्पता) इन रोगों में शरीर के अन्दर बहुत से स्वाभाविक उपकरण कम हो जाते हैं।

४ –उपदंश, क्षय पिडिका (ट्यूवार्कल) आदि वात रोग प्रभृति वहुत से सर्वाङ्गिक रोगों का आक्रमण।

उत्तेजक कारण

शरीर के अन्दर में किसी उद्दीपक पदार्थ के प्रविष्ट हो जाने से प्रदाह हो सकता है

और उद्दीपक कारण से भी प्रदाह हो सकता है, उद्दीपक कारण, और उद्दीपक पदार्थ घाव भागों के अन्दर ही प्रवेश किये जाते हैं।

२—यान्त्रिक वा आभिघातिक कारण जैसे दबना, रगड़ लगना और चोट लगना, गिर पड़ना आदि।

२—बाहर के शीत और आतप का परिवर्तन।

३—विद्युत् संयोग, विद्युत वा वज्र का आघात, वैद्युतिकतरंगों का आघात।

४—उग्र पदार्थ अथवा उग्रता साधन।

(क) रासायनिक क्रिया साधक द्रव्यादि जैसे उग्र द्रावक अथवा क्षार द्रव्य।

(ख) उद्भिज्ज उग्र पदार्थ, जैसे जमालगोटे का तेल।

(ग) जान्तव उग्रपदार्थ, तेलनी मक्खी (केन्थराइडिस) कीट सांप आदि का दंशन।

(घ) शरीर के अन्दर में जीवाणुओं की वृद्धि।

नूतन प्रदाह की परिणति

प्रदाह के कारण अनुसार वा प्राबल्य के अनुसार, प्रदाह की ह्रास वा वृद्धि होती है। इसलिये साधारण रीति से प्रदाह की पांच परिणति देखी जाती हैं।

पूर्वसम्प्राप्ति

(Resolution अर्थात् प्रदाह युक्त अंश का आरोग्य और स्वाभाविक अवस्था वा क्रिया का प्रत्यावर्तन। आघात साधारण होवे, और उसे चोट लगे हुये अंश का ध्वंस न होवे, तो पुनः सम्प्राप्ति हो सकती है।

शोफोत्पत्ति

वा तान्तव स्थूली भवन, (Organisation ओर्गैनिजेशन) वा (Fibrous-thickening फाइब्रस थिकनिङ्ग) प्रदाह की चिकित्सा न करने पर जब वह शोफ से युक्त हो जावे, परन्तु उसमें पूय न पड़ा होवे, इन सब अवस्थाओं में ये सब अँश पहिली अवस्था को फिर नहीं प्राप्त होते हैं। इसलिये चारों तरफ के सब संयोजक तन्तु दृढ़ और कठोर हो जाते हैं, इसलिये वह स्थान कड़ा पड़ जाता है।

पूयोद्भव

(Suppuration सप्यूरेशन) आक्रान्त अंश में एक प्रकार के जीवाणु पैदा हो जाते हैं। जिस से उस अंश के तन्तु झिल्ली आदि कला समूह पककर पतले हो जाते हैं।

क्षतोद्भव

(Ulceration अलसरेशन) त्वचाके ऊपर अथवा श्लैष्मिक झिल्ली के किसी अँश के ध्वंस हो जाने पर उस स्थान में क्षत हो जाता है।

गलित क्षय

(Gangrene) प्रदाह से प्रायः यह कम होता है। विष की उग्रता अथवा आक्रान्त अंश के तन्तु वा झिल्ली आदिकी दुवलता से गलित क्षय (ग्रैंगिन)हो सकता है।

प्रदाह के आर्त चिन्ह (Clinical signs)

प्राचीन केलसस प्रदाह के आर्त चिह्नों को चार अवस्थाओं में ५ हींटा। (१) ताप (२) यातना (३) रक्तिमता (४) शोथ और क्रिया विपर्यय इसको पांचवीं अवस्था में गिनती हो सकती है।

उत्ताप

(Heat हीट) प्रदाह युक्त अँश को छूने से उष्णता मालूम होती है और ताप मान यंत्र से उस स्थान के ताप की परीक्षा करने पर शरीर के दूसरे अँश की अपेक्षा उस अंश की ताप अधिक देखी जाती है। इसका कारण यह है, उस अंश के अन्दर से अधिक परिमाणमें रक्त बहता है।

वेदना

(Pain पेन) शोणित की अधिकता से धमनियां फैल जाती हैं, और उसके साथ ही निकलने के योग्य पदार्थों के दबाव से चारों तरफ बारीक २ स्नायुओं में उग्रता पैदा हो जाती है, इससे भी वेदना होती है. वेदना होने पर अधिकतर शोथ देखा जाता है।

रक्तिमता

(Redness रेडनेस्) प्रदाह से युक्त अंश में शोणित की अधिकता होती है, इससे वह अंश लाल होता है।

शोथ

(Swelling स्वेलिङ्ग) आक्रान्त अंश में शोणित की अधिकता अथवा निकालने के योग्य पदार्थों की अधिकता से वह अँश फूल जाता है, इसको ही शोथ कहते हैं।

क्रिया विपर्यय

यह एक प्रदाह की अनुषङ्गी अवस्था है।

साधारण अथवा सर्वाङ्गी लक्षण समूह

निरुक्ति

वा लक्षण—सम्पूर्ण अङ्गों में फैलने वाले जो सब लक्षण प्रकाशित होते हैं, और बराबर प्रकाशित होते हैं। उस समुदाय को साधारण अथवा सर्वाङ्गीण लक्षण कहते हैं। शरीर का ताप अल्प मात्रा में अथवा अधिक मात्रामें बढ़ जावै, और हृदय का सङ्कोचन और विस्फारण और उसके साथ ही श्वास की गति बढ़ जावै, तो इसको ज्वर कहते हैं। शरीर में ज्वर कुछ काल तक बना रहने पर जीर्ण शीर्ण शरीर होता है, और पेशियों का बल कम हो जाता है, उसका मुख सूख जाता है, जिह्वा मल से युक्त रहती है उसकी अवस्था खराब होनेपर ओठ, मसूड़े मलसे ढक जाते हैं, क्षुधा कम हो जाती है। परिपाक शक्ति घट जाती है, और कोष्ठ बद्ध हो जाता है। पुरीष में बहुत दुर्गन्ध आती है। मूत्र अल्प मात्रा में, और गहरा रंग वाला निकलता है. उसमें यूरिया और यूरेट अधिक देखा जाता है। ज्वर वाले रोगी की त्वचा अधिकतर सब स्थानों की सूख जाती है।

प्रदाह ज्वर

अभिघातिक ज्वर (सर्जिकेलफीवर)को भिन्न २ प्रकृति के अनुसार उसका नाम अलग २ होता है, उनमें दो का वर्णन किया जाता है।

स्थिनिक और एस्थिनिक,। ज्वर और उसके अनुषङ्गी लक्षण समूह साफ २ मालूम होवे। तो उसको स्थानिक प्रदाह ज्वर कहते है। स्वस्थ और बलवान युवा पुरुष एक बारगी तरुण न्यूमोनिया (श्वसनक ज्वर) से आक्रान्त होजाव अथवा उसके किसी स्थलमें नवीन फाड़े पैदा होजावें; तो इस अवस्थाको सबल अवस्थ (स्थिनिक) कह सकते हैं।

एस्थिनिक प्रदाह ज्वर-उपरोक्त अवस्था के विपरीत" अवसाद और स्तैमित्य होवे। और रोगी का शरीर शीतलहो जावे, इसलिये चिकित्सा लगती की जाती होवे। तो इस अवस्था को एस्थिनिक, प्रदाह ज्वर कहते है। इस अवस्था से अधिक तर दुबल रोगी, अथवा व्यभिचार आदि क्षीण देह वाले मनुष्य आक्रान्त देखे जाते है।

प्रदाह के प्रकार भेद

शरीर में प्रदाह आरम्भ होने पर जो सम्पूर्ण भिन्न २ आकृतियें प्रकाशित होती है। उनका नाम अनेक प्रकार से कहा जा सका है। जैसे, श्लैष्मिक झिल्ली प्रदाह, (कैटरेल)

सान्तत्रिक विशिष्ट झिल्ली प्रदाह (क्रूपस) डिपथेरिक कृमि जन्य प्रदाह (डिपथेरिटिक) अन्तर्दाह पारेन काइमेटस) काषांणु गत दाह (इटरष्टि शियेल) चंचल प्रदाह, (मेटष्टे-टिक) ये भेद होते है ।

श्लैष्मिक झिल्ली में प्रदाह होवे। और प्रदाह युक्त स्थान में लालिमा, और जल के तुल्य वेदना प्रकाशित होवे । उस को कैटरेल प्रदाह कहते है ।

क्रूप्स प्रदाह में, तन्तु वाली अप्रकृत झिल्ली में प्रदाह पैदा होकर, फुफ्फुसपरि-वेष्टनीकला (प्लूरा) उदरच्छद कला अथवा उदराचरकला (पेरिटोनियम) में अथवा, किसी ग्रन्थि की झिल्ली में यह दाह उत्पन्न हो जाती हैं ।

वेसिलस डिपथेरिपी नामक एक प्रकार के जीवाणु से इस प्रदाह की उत्पत्ति होती है । इसमें एक प्रकार अप्रकृत झिल्ली पैदा हो जाती है । उस अप्रकृत झिल्ली में सम्पूर्ण जीवाणु प्रकाशित होते हैं ।

चिकित्सा

तरुण प्रदाह की चिकित्सा दो प्रदाह की होती है । एक स्थानिक,दूसरी सार्वाङ्गिक, स्थानिक चिकित्सा के भेद चार हो सकते है ।

(१) उत्तेजक और उसके सहायक कारणों को दूर करना । कई जगहों में यह चि-कित्सा सहज में ही होजाती है । आंख के सफेद भाग में तिनका, अथवा वालू का कण पड़ जावै । अथवा नाड़ी व्रण के तल में एक मरा हुआ हाड़ का टुकड़ा होवै। वह सहज में निकाल कर अलग किया जा सकता है । अथवा कोई फोड़ा पक जावै तो उसका मुख खोल देने पर प्रदाह शान्त हो जाती हैं ।

(२) प्रदाह युक्त अंशके लिये जितना सम्भव हो सके उतना विश्राम देवै, किसी अस्थि की सन्धि में प्रदाह होवै तो उस पर पार्श्वफलक (स्पिलिन्ट) का प्रयोग करै । स्तन में प्रदाह होवै तो उपयुक्त धमनों से उसको रक्षा करना आवश्यकीय हैं। इससे उस प्र-दाह युक्त अंश की बाह्य शान्ति की जाती है । और अन्दर की शान्तिके लिये उपयुक्त औ-षध सेवन करे ।

(३) स्थानिक रक्त का दवाव, और रक्त की अधिकता को कम करना चाहिये। इससे दूषित रसका सञ्चार और उससे उत्पन्न हुई वेदना कम हो जाती हैं। जलन से युक्त अंश को ऊपर का उठाये रखने से अनेक समय जलन शान्त हो जाती है । और जोंक लगा कर, शृङ्गी, से चूष कर, रक्त को निकाल देवै तो इससे भी दाह शान्त हो जाती है । अच्छी तरह विचारकर शीतल प्रयोग करने से विना परिश्रम के दाह अच्छी हो

जाती हैं। कारण यह है कि शीत प्रयोग करने से सूक्ष्म २ धमनियां सिकुड़ जाती है। इससे रक्त की वृद्धि घट जाती हैं। प्रदाह की पहली हालत में,वरफ, शीतल जल आदि प्रयोग करे। पूय हाने पर शीतल वस्तु का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

ताप प्रयोग—विशेष कर आर्द्र ताप, प्रदाह के लिये अति लाभ दायक है। इससे ठीक शैत्यक विपरीत कार्य की सिद्धि होती हैं। किन्तु फल दोनों स्थलों में हितकारी ही होता हैं। शीत के प्रयोग से सब शोणित नालियां सिकुड़ जाती हैं। और ताप के प्रयोग से शोणित नालियां फैल जाती है। इससे दवाव, खिचाव और प्रदाहजन्य पीडा कम हो जाती हैं। पूय उपन्न होने पर यदि आर्द्र ताप का प्रयोग किया जावेगा, तो पूय शीघ्र ही जम जायगा। त्वचा के नीचे भाग में प्रदाह होने पर अफीम, वेलाडोना आदि औषधियाँ मिला कर उष्ण स्वेद (Hetfomehtation) का प्रयोग करे। अथवा स्पंञ्ज भिगोकर रक्खे अथवा कुछ गरम जल में फुलालैन के टुकड़े को भिगोकर उसके ऊपर रक्खै, इससे प्रदाह शीघ्र ही शान्त हो जाती है, फोड़ा प्रारम्भ होते ही अलसी की गरम पुल्टिस, उसके ऊपर वार वार वांधे। इससे रोगी को वहुत आराम होता हैं। और रोग की शान्ति हो जाती है। जो फोड़ा चीर दिया गया हैं। अथवा क्षत के ऊपर इसकी पुल्टिस का प्रयोगन करे।

(४) प्रदाह जिससे और अधिक न वढ़ जावे। और वेदना भी अधिक न होवै, इस विषय में विशेष ध्यान रक्खै।

सर्वाङ्गीण चिकित्सा

रोगी की अवस्था के अनुसार सर्वाङ्गीण चिकित्सा करना भी मुख्य हैं, जिसका पहिले से ही शरीर दुवला होवै। अथवा अधिक दिन तक ज्वर रहने से दुवले होने की सम्भावना होवे। तो वल देने वाली चिकित्सा करे। इसके साथ ही जिस भाँति दूषित पदार्थ उसके शरीर से वाहर निकल जावे। इस लिये विरेचक, पसीना लाने वाली, और मूत्र कारक, औषधियों का प्रयोग करे। कुनैन के प्रयोग से अधिक फल मिलता हैं। अथवा ईथर अथवा, कार्वनेट आफ एमोनिया का प्रयोग करे।

पुरातन प्रदाह

प्रभेद पुरातन प्रदाह के लक्षण आदि नवीन प्रदाह के तुल्य ही हैं। किन्तु लक्षणों में कुछ कमती बढ़ती होती है। शोणित की अधिकता, और निःस्राव प्रायः समान ही होता हैं। और शरीर विधान समुदाय की पूर्ति क्रिया अधिक वढ़ जाती है, इस लिये इसके ऊपर विशेष दृष्टि रखना चाहिये। और तरुण प्रदाह में शरीर विधान की पूर्ति क्रिया अति अत्यन्त मृदु होती है। इस पूर्ति क्रिया से तन्तु, कोष, आदि ध्वंस अथवा कम हो जाते है।

कारण

इसके नवीन प्रदाह के समान ही कारण, होते हैं। किन्तु भेद यह है। कि पुरातन प्रदाह के कारण, मृदु और मन्द होते है। इसलिये इसका कार्य धीरे २ होता है। और सम्पूर्ण विधान श्वसन होकर बढ़ जाते हैं। और परिपुष्ट हो जाते हैं। अनेक स्थल में शारीरिक पूर्व प्रवर्तना हीकारण रूप से कार्य करती है। उपदंश, सफेद सरसों के तुल्य घुणाकर पिड़िका (ट्यूबर्कल) वात, वो, ग्रन्थिवात, आदि रोग होने पर पुरातन प्रदाह हो जाता हैं। इसलिये पुरातन प्रदाह की चिकित्सा करने पर पहिले यह जानना आवश्यक है। कि इसके कोई रोग हैं कि नहो।

परिणाम फल

रोगी की शारीरिक अवस्था के ऊपर परिणाम फल अधिक निर्भर है। इसलिये मुख्य २ विषय लिखे जाते हैं। सामान्य प्रकृति की पुरातन प्रदाह में सब संयोजक तन्तु बढ़ जाते हैं। और बार २ स्फूर्तिके अनुसार आक्रान्त अंश का आयतन बढ़ा देते हैं। पुरातन प्रकृति की अस्थि प्रदाह में अस्थि मोटी कड़ी लम्बी हो जाती है। और पुरातन अस्थ्यावरक झिल्ली की प्रदाह (क्रोनिक पेरिआस्टाइटिस) की पीड़ा में नवीन २ अस्थिके अंकुरों की उत्पत्ति होती है। अधिकतर सब संकोचक तन्तुओं के बढ़ जाने से सब गाँठ बढ़ जाती हैं। और कड़ी पड़जाती है। त्वचा के आक्रान्त होने पर जीर्ण चर्मदल (क्रोनिक हाइपरट्रफिक) खाज के तुल्य होता है और आयतन मोटा, बड़ा होता है। अथवा, इसका स्वभाविक गठन बदल कर दानाओं से युक्त हो जाता हैं। पुरातन प्रदाहमें कभी २ पूय भी देखा जाता है।

चिकित्सा

(१)—पहले रोग के कारणों को दूर करना चाहिये। खराब हुई हड्डी को काट कर शस्त्र से बाहर निकाल देवै। और ट्यूबार्कल से युक्त कोई अवस्था होवे। तो उसको छुरी से छील कर उसके ऊपर उस स्थान में कार्बोलिक एसिड्, लगा देवै।

(२)—आक्रान्त अङ्गका विधान अत्यन्त आवश्यक है। नवीन प्रकृति की प्रदाह में जिस भांति विश्राम कराना मुख्य है। उसी भांति पुरातन प्रकृति की प्रदाह में विश्राम कराना मुख्य हैं। सब ग्रन्थियों को स्थिर भाव से रक्खे। रोगी को शयन कराने से मेरुदण्ड का भार कम होजाता हैं। निस्रावक सम्पूर्ण ग्रन्थियों में जिससे अधिक कार्य न होवे। और सब इन्द्रियों में उग्रता न पैदा होवे। अतः सावधान रहना चाहिये।

(३)—प्रत्युग्रता साधन (काउन्टर इरीस्टेशन) पुरातन प्रदाह में यह एक विशेष हितकारी अवस्था है। रोग की प्रकृति और आक्रान्त स्थान की अवस्था के अनुसार स-प्रक्रिया की विभिन्नता देखी जाती है। जैसे हाथ से घर्षण करने से अथवा किसी प्रकार का मलहम लगाने से अथवा पीड़ित स्थान में किसी स्नेह पदार्थ का मर्दन करने से त्वचा में शोणित की अधिकता बढ़ जाती है। और उसके साथ ही, ऊपरके तन्तुओं का और सब कलाओं का कार्य बढ़ जाता है। अस्थि और अस्थि सन्धियों की पुरातन प्रदाह में शस्त्र क्रिया से कठोर प्रत्युग्रता पैदा हो जाती है।

(४) सब समय पर पुरातन प्रदाह में सञ्चाप देने से बहुत लाभ होता है। दृढ़ बन्धनों से यह कार्य अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है।

स्फोट (Abscess ऐबसेस)

निरुक्ति—पूय वाले पदार्थ एक स्थान पर इकट्ठे हो जावें। तो उसको स्फोट कहते हैं। यह प्रदाह की एक परिणति है। स्फोट दो प्रकार का होता है, एक तरुण दूसरा पुरातन।

तरुण स्फोट (Acute Abscess)

कारण—किसी प्रकार का आघात, दबाव, अधिक शीतलता अथवा ऊष्मा का संस्पर्श, अथवा किसी असात्म्य, वा आगन्तुक (Feoregnbody) पदार्थ, अथवा विष की उग्रता से फोड़ा पैदा हो जाता है। शेष कारणों से पैदा हुआ फोड़ा प्रायः व्यापक होता है। बाहर के असात्म्य पदार्थों से जैसे लोहा, अथवा अन्य कोई धातु लकड़ी, ईंट पत्थर आदि शरीर में लगकर पीड़ा के साथ फोड़ा पैदा हो जाता है। जैसे अस्थि का कोई अंश पक जावे। अथवा मूत्राशय से मूत्र विटप प्रदेश (पेरिनियम) में प्रवेश कर जाने पर फोड़ा पैदा हो सकता है। मसूरिका रोमान्तिका आदि सम्पूर्ण स्फोट ज्वरों में विषैला शोणित हो जाता है। इन सब ज्वरों में भी फोड़े देखे जाते हैं।

निदान

पहिले वर्णन किया गया है, प्रदाह से फोड़ा पैदा होता है। अर्थात् आघात आदि करणों से स्थान के आहत होने पर पहिले उस स्थानपर प्रदाह होता है। फिर फोड़ा पैदा होता है। प्रदाह युक्त स्थानके तन्तु आदि सब विधान प्रदाहसे युक्त हो जाते हैं। और धीरे २

* ऐबसेस-को आयुर्वेद में 'विद्रधि' कहते हैं।

तरल हो जाते हैं। उस समय उसमें पूय उत्पन्न हो जाता है। यह प्रक्रिया जल्दी २ अथवा धीरेधीरे होती है। शीघ्र वेगसे होनेपर नवीन फोड़ा कहते हैं। और धीरे २ होनेपर उसको पुरातन फोड़ा कहते हैं। पुरातन स्फोट को अनुग्र (कोल्ड) स्फोट कहते हैं। शरीर के उपकरण (त्रिधान) प्रदाह युक्त होकर क्रमशः कोमल और दूर २ होकर पूय (मवाद) में परिणित हो जाते हैं। यदि वे एक ही जगह में रुक जावें। और उनके चारों तरफ कड़ा पड़ जावे। तो उसको परिवृत स्फोट (सर्कमस्क्राइब्ड) कहते हैं। किन्तु स्फोट के साथ साथ उसके चारों तरफ का भाग कोमल और तरल हो जाता है। पूय जन्य दूषित पदार्थ शरीर के कई स्थानों में फैल जाता है।

उस समय उसको व्यापक (डिफ्यूज्ड) स्फोट कहते हैं, नवीन परिवृत स्फोट में प्रदाह के कारण जो दूषित लसीका वा, रस रक्त आदि इकट्ठे हो जातेहैं। वे एक स्थान में रुक जाते हैं, उस समय उस पूय से एक प्रकार की झिल्ली और उस झिल्ली, से एक कोष (Sack) बन जाता है। उस कोष में पूय और दूषित रक्त लसीका आदि जमा हो जाते हैं, स्फोट के चारों ओर कड़ा पड़ जाता हैं। पूय वाले पदार्थों के फैलने पर पीड़ा होती हैं, किन्तु काल क्रम से पूय का परिमाण बढ़ जाता है, उससे स्फोट का तेज बढ़ जाता है, और उसके साथ साथ उसके चारों तरफ की बाधा देने वाली शक्ति कम हो जाती है, पूय धीरे धीरे अस्थि आदि कठिन अंशों में भी आक्रमण करता है, इसी क्रम से हड्डी वाले पदार्थ भी आक्रान्त हो जाते हैं, किंतु साधारण रीति से ऐसा देखा नहीं जाता है, जिस ओर पीड़ा कम होती है, स्फोट का मुख अधिकतर उसी ओर में पहिले होता है।

लक्षण

नवीन स्फोट के सब लक्षणों के मध्य में स्थानिक प्रदाह कभी २ ज्वर, सब अङ्गों में विकार, शीत, कम्प, शोथ, वेदना की वृद्धि, कोमलता, स्पन्दन आदि होते हैं, सब स्फोट पूय की अवस्था में कोमल हो जाते हैं। उस समय फोड़े को दबाने से उसके बीच में पूय की गाढ़ी तरङ्ग मालूम होती है। स्फोट के उत्पत्ति स्थान के अनुकूल ही वेदना की घटती बढ़ती होती हैं, यदि फोड़ा कठिन स्थान में पैदा होता है, तो उसका पूय सहज में बाहर नहीं निकलता हैं, और उसमें बहुत पीड़ा होता है. व्यापक फोड़ा होने पर शरीर में उसके शीघ्र फैल जाने पर सहज में ही जाना जा सकता है।

प्रकार भेद

सामान्य रीति से जो अधिक फोड़े देखे जाते हैं, वे अधो लिखित कई एक विभागों में विभक्त हो सकते हैं। (१) शरीर के अन्दर गम्भीर स्थान में उत्पन्न हुआ स्फोट, हलका ज्वर,, विसर्प, पूय, दूषित रक्त (पाइमियाँ) आदि से ऐसा फोड़ा पैदा हो सकता है।

(२) उदर वक्षःस्थल के गुफा के प्राचीर का फोड़ा ।*

(३) श्लैष्मिक झिल्ली में पैदा हुआ फोड़ा ।

(४) दूषित अस्थि में पैदा हुआ फोड़ा, जैसे जाधानिक स्फोट (स्योरुएवसेस) कटिगत स्फोट (लैम्बर ऐवसेस)

(५) सब यंत्रों के चारों तरफ कोषिक विधान में उत्पन्न हुआ स्फोट ।

(६) प्लीहा, यकृत, वृक्क, क्लोम ग्रंथि (पैंक्रियास) स्तन, फुष्फुस, मस्तिष्क आदि यंत्रों में प्रदाह होने से जो फोड़े पैदा होते हैं ।

(७) कोषिक विधान के गम्भीर स्थानों में जो छिपे हुए फोड़े उत्पन्न होते हैं । जैसे गले के पश्चिम भाग का फोड़ा (रिट्रोफैरिंजपेल) गुदकोकन्दरीय स्फोट (इ-हिकयोरैकेटल) फुष्फुस द्वयान्त्र रालवर्ती स्फोट (मिडियष्टाइनेल ऐबसेस) ।

(८) ग्रंथिगत स्फोट (ग्लैन्ड्यूलर) इस प्रकार के स्फोट को पुरातन स्फोट कहते हैं ।

(९) पूयोत्पादक हाईडेटिड स्फोट ।

निरूपण

तरुण स्फोट का सहज में निरूपण हो सकता है, स्फोट का मुख दिखलाई देने पर और उसमें वेदना और तरङ्गों के मालूम होने पर निरूपण में कोई सन्देह नहीं रहता है । किन्तु शरीर के अन्दर गम्भीर प्रदेशों में, और कठिन विधानों में उत्पन्न हुआ स्फोट सहज में निश्चित नहीं होता है । इस अवस्था के फोड़ों का निर्णय धन्वंतरि वैद्य ही कर सकता है ।

चिकित्सा

विशेष विधि प्रदाह वाला अंश जब नरम होता है तब उसमें मवाद पैदा हो जाता है, पूय की उत्पत्ति निवारण भी की जा सकती है । पहिले पहल प्रदाह युक्त अङ्ग को ऊपर में रक्खें, और उसको विश्राम देवें, उसके साथ उसके ऊपर शीतल जल अथवा बरफ उद्वेयलोशन का प्रयोग करें । प्रदाह वाले अंश में पूय की उत्पत्ति बंद की जा सकती है, कुनैन और लोहे के साथ सल्फाइडआफकैलसियम वटी के आकार में प्रयोग करें । तो यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है, कि कार्बोलिक एसिड के तुल्य प्रबल पाक को दूर करने वाली औषध को प्रदाह वाले अंश को त्वचा के नीचे में पिचकारी सेप्रक्षिप्त करें. पूय को पैदा करने वाले, सब जीवाणु इससे नाश किये जा सकते हैं तरुण, अस्थि आवरक झिल्ली की प्रदाह (एक्यूटपेरियष्टाईटिस) में और इसी के समान दूसरी प्रादाहिक पीड़ा-

---

* क्रमिजन्य द्राक्षा गुच्छ सदृश स्फोट समूह ।

में पहिले पवन निवारक उपाय का अवलम्बन करके प्रदाह युक्त अंश को चीर देना चाहिये, ऐसा करने से सहज में ही पूय पैदा हो जाता है, । इससे प्रदाह की फैलने वाली शक्ति कम हो जाती हैं। उसके साथ प्रदाह भी कम हो जाता है। फोड़े का मुख जब खोलना होवे, तो नीचे लिखे हुये तीन विषयों में विशेष ध्यान रखना चाहिये । १—फोड़े का मुख ऐसा बड़ा करके चीरे जिससे उसके मध्य में और पूय न पैदा हो सके, २—ऐसे स्थान में चीरा लगावे, जिससे बिना बाधा के रक्त और पूयनिकल सके, ३—और ऐसी ओर चीरा लगावे, जिससे उस अङ्ग के हिलाने - डुलाने में खुला हुआ मुख जिससे बंद न होवे।

हिलटेन की प्रक्रिया

मर्म स्थान में पैदा हुए गम्भीर फोड़ा के लिये हिलटन की प्रक्रिया का प्रयोग करे, इससे विशेष लाभ होता है, उसकी रीति यह हैं—कि बाहर के शरीरके विधान से त्वचा को अलग कर देवे, उसके बाद उस फोड़े के गह्वर के मध्य में एक एषणी यंत्र (डाइरेक्टर) चालन करे, इसके बाद उसके खाने में मुचुण्डी (ड्रेसिङ्ग फर्सेप्स) प्रवेश करके उस फर्सेप्स यंत्र के दोनों फलों को फैलाने से फोड़े का मुख खुल जाता हैं । उस समय उसके अन्दर अंगुलि प्रवेश करे पीव बहाने वाली रबड़की नली (ड्रेनेज ट्यूब) प्रवेश कर देवे इससे विशेष लाभ होता हैं ।

कक्षिक स्फोट (एक्जिलरी एबसेस)

बगल में फोड़ा हो जावे, तो कक्षा की मध्य रेखा के ऊपर से वक्ष के सामने ऊपर से नीचे की ओर चीर देवें, और हिलटन की रीति अनुसरण करे, ऐसा करने से विपत्ति के तीन कारणों से बच सकता है । वे तीन मूल कारण कक्षाके ऊपर की सब नाड़ी सामने वक्षस्थल की सब नाड़ी, और पीछे के प्रगंड की सब धमनी । हिल्टन की रीति से इनके कटने का भय नहीं रहता है । इन में से किसी एक भी धमनी के कट जाने पर बहुत विपत्ति पैदा होने की सम्भावना है ।

वंक्षण गत ब्रध्न (वद) (इंगूनेलब्यूबो)

रोगी को लिटा कर के, अथवा, खड़ा करके नीचे से ऊपर को तिरछा चीरे। ऐसा करने से रोगी जिस समय बैठता हैं , उस समय चिरा हुआ मुख फैल जाता है , इससे वद के मध्य में पीव नहीं रुक सक्ता है ।

उपसर्ग

तरुण स्फोट से नीचे लिखे हुये उपद्रव पैदा हो सकते हैं । (१) किसी बड़े यन्त्र के आक्रान्त हो जानेसे रक्त स्राव होता है, (२) उदर गह्वर का वद भाग ज उदरत्वककवक

ला से ढका होवे पेरिटोनियल गह्वर) किसी ग्रन्थि का मध्य भाग आदि कोई मुख्य अङ्ग अक्रान्त हो जाता है । ३-फोड़े से नाड़ी व्रण हो जाता है । ४-रक्त विषैला हो जाने से पाइमिया (रक्त में पीव जन्य रोग) सेप्टिमिया (मलाक्त रक्त) ।

पुरातन स्फोट Chronic Abscess

नवीन फोड़े के समान पुराना फोड़ा शीघ्र नहीं पैदा होता है । पुराना फोड़ा धीरे २ पैदा होता है) इसमें प्रदाह के साधारण लक्षण प्रकाशित नहीं होते है । और यह कृमियों (बैक्टीरिया) से उत्पन्न होने पर भी इसमें पूय को पैदा करने वाले जीवाणु अधिक तर दिखलाई नहीं देते हैं । नवीन फोड़ों का पूय गाढ़ा, मलाई के समान होता है, और पुरातन स्फोटों के अन्दर का पदार्थ पतला दधि के समान होता है ।

लक्षण

पुरातन स्फोट के लक्षण अनेक प्रकार के होते हैं । इसके उत्पत्ति के स्थान के अनुसार लक्षण देखे जाते हैं । इसके शोथ में कमती बढ़ती होती रहती हैं, अधिक तर प्रदाह के बड़े चिह्नों का अभाव मेरूदण्ड का अस्थिक्षत पीड़ा बढ़ जाती हैं, पुरातन स्फोट में अस्त्र क्रिया करने के पहिले साधारण रीति से कोई धातु गत लक्षण नहीं दिखलाई देते हैं । किन्तु इसके बाद पूय को पैदा करने वाले जीवाणु किसी क्रम से उसके मध्य में प्रवेश कर जाने पर हेक्टिक ज्वर, और बहुत काल तक पूय को उत्पन्न करने वाली शक्ति हो सक्ती हैं, और अवसाद, दोनों वृक्कों में पीड़ा, अतिसार, वा यकृत, के दोष से मृत्यु होने तक की सम्भावना हैं ।

निर्णय

पहिले वर्णन कर दिया गया है। कि पुरातन स्फोट में प्रायः प्रदाह नहीं होती हैं, इस लिये उनके समय इसको वसाबुर्द, अथवा, दूसरा प्रकार का कोमल अर्बुद जान कर भूल हो जाती है । शरीर के किसी स्थान में खानिज विष दूषित रक्त इकट्ठा हो जाने पर भी पुरातन स्फोट, समझना भूल है, संदिग्ध अवस्था में एषणी सूची (* Exploring needle) से उस स्थान को विना वेधन किये हुये प्रकृत अवस्था जानी नहीं जा सक्ती है।

परिणाम फल

पुरातन फोड़ा बहुत दिन तक स्थिर रह कर कभी २ पक जाती है, और बाहर, अथवा भीतर में श्लैष्मिक नाली, लसीका गह्वर आदि फट कर बाहर निकल आते हैं । अथवा इससे पूय का जलीय अंश रक्त में मिल जाता है । और फोड़े के अन्दर मलाई के

में पहिले पवन निवारक उपाय का अवलम्बन करके प्रदाह युक्त अंश को चीर देना चाहिये, ऐसा करने से सहज में ही पूय पैदा हो जाता है, । इससे प्रदाह की फैलने वाली शक्ति कम हो जाती हैं। उसके साथ प्रदाह भी कम .हो जाता है। फोड़े :का मुख जब खोलना होवे, तो नीचे लिखे हुये तीन विषयों में विशेष ध्यान रखना चाहिये। १—फोड़े का मुख ऐसा बड़ा करके चीरे जिससे उसके मध्य में और पूय न पैदा हो सके, २—ऐसे स्थान में चीरा लगावे, जिससे बिना बाधा के रक्त और पूयनिकल सके, ३—और ऐसी ओर चीरा लगावे, जिससे उस अङ्ग के हिलाने - डुलाने में खुला हुआ मुख जिससे बंद न होवे।

हिलटेन की प्रक्रिया

मर्म स्थान में पैदा हुए गम्भीर फोड़ा के लिये हिलटन की प्रक्रिया का प्रयोग करे, इससे विशेष लाभ होता है, उसकी रीति यह है—कि बाहर के शरीरके विधान से त्वचा को अलग कर देवे, उसके बाद उस फोड़े के गह्वर के मध्य में एक एषणी यंत्र (डाइरेक्टर) चालन करे, इसके बाद उसके खाने में मुचुण्डी (ड्रेसिङ्ग फर्सेप्स) प्रवेश करके उस फर्सेप्स यंत्र के दोनों फलों को फैलाने से फोड़े का मुख खुल जाता है। उस समय उसके अन्दर अंगुलि प्रवेश करे पीव बहाने वाली रबड़की नली (ड्रेनेज ट्यूब) प्रवेश कर देवे इससे विशेष लाभ होता है।

कायिक स्फोट (एक्जिलरी एबसेस)

बगल में फोड़ा हो जावे, तो कक्षा की मध्य रेखा के ऊपर से वक्ष के सामने ऊपर से नीचे की ओर चीर देवें, और हिल्टन की रीति अनुसरण करे, ऐसा करने से विपत्ति के तीन कारणों से बच सकता है। वे तीन मूल कारण कक्षाके ऊपर की सब नाड़ी सामने वक्षस्थल की सब नाड़ी, और पीछे के प्रगण्ड की सब धमनी। हिल्टन की रीति से इनके कटने का भय नहीं रहता है। इन में से किसी एक भी धमनी के कट जाने पर बहुत विपत्ति पैदा होने की सम्भावना है।

वंक्षण गत ब्रध्न (वद) (इंगूनेलब्यूबो)

रोगी को लिटा कर के, अथवा, खड़ा करके नीचे से ऊपर को तिरछा चीरे। ऐसा करने से रोगी जिस समय बैठता है, उस समय चिरा हुआ मुख फैल जाता है, इससे वद के मध्य में पीव नहीं रुक सक्ता है।

उपसर्ग

तरुण स्फोट से नीचे लिखे हुये उपद्रव पैदा हो सकते हैं। (१) किसी बड़े यन्त्र के आक्रान्त हो जानेसे रक्त स्राव होता है, (२) उदर गह्वर का यह भाग जो उदरच्छकदक

ला से ढका होवे पेरिटोनियल गह्वर) किसी ग्रन्थि का मध्य भाग आदि कोई मुख्य अङ्ग अक्रान्त हो जाता हैं । ३-फोड़े से नाड़ी व्रण हो जाता है । ४-रक्त विषैला हो जाने से पाइमिया (रक्त में पीव जन्य रोग) सेप्टिमिया (मलाक्त रक्त) ।

पुरातन स्फोट Chronic Abscess

नवीन फोड़े के समान पुराना फोड़ा शीघ्र नहीं पैदा होता है । पुराना फोड़ा धीरे २ पैदा होता है) इसमें प्रदाह के साधारण लक्षण प्रकाशित नहीं होते है । और यह किमियों (बक्टेरिया) से उत्पन्न होने पर भी इसमें पूय को पैदा करने वाले जीवाणु अधिक तर दिखलाई नहीं देते हैं । नवीन फोड़ों का पूय गाढ़ा, मलाई के समान होता है, और पुरातन स्फोटों के अन्दर का पदार्थ पतला दधि के समान होता है ।

लक्षण

पुरातन स्फोट के लक्षण अनेक प्रकार के होते हैं । इसके उत्पत्ति के स्थान के अनुसार लक्षण देखे जाते हैं । इसके शोथ में कमती बढ़ती होती रहती हैं, अधिक तर प्रदाह के कई चिह्नों का अभाव मेरूदण्ड का अस्थिक्षत पीड़ा बढ़ जाती हैं, पुरातन स्फोट में अस्त्र क्रिया करने के पहिले साधारण रीति से कोई धातु गत लक्षण नहीं दिखलाई देते हैं । किन्तु इसके बाद पूय को पैदा करने वाले जीवाणु किसी क्रम से उसके मध्य में प्रवेश कर जाने पर हेक्टिक ज्वर, और बहुत काल तक पूय को उत्पन्न करने वाली शक्ति हो सक्ती हैं, और अवसाद, दोनों वृक्कों में पीड़ा, अतिसार, या यकृत, के दोष से मृत्यु होने तक की सम्भावना हैं ।

निर्णय

पहिले वर्णन कर दिया गया है। कि पुरातन स्फोट में प्रायः प्रदाह नहीं होती हैं, इस लिये उनके समय इसको वसाबुर्द, अथवा, दूसरा प्रकार का कोमल अर्बुद जान कर भूल हो जाती है । शरीर के किसी स्थान में खानिज विष दूषित रक्त इकट्ठा हो जाने पर भी पुरातन स्फोट, समझना भूल है, संदिग्ध अवस्था में एषणी सूची (* Exploring needle) से उस स्थान को बिना वेधन किये हुये प्रकृत अवस्था जानी नहीं जा सक्ती है।

परिणाम फल

पुरातन फोड़ा बहुत दिन तक स्थिर रह कर कभी २ पक जाती है, और बाहर, अथवा भीतर में श्लैष्मिक नाली, लसीका गह्वर आदि फट कर बाहर निकल आते हैं । अथवा इससे पूय का जलीय अंश रक्त में मिल जाता है । और फोड़े के अन्दर मलाई के

समान एक प्रकारका पदार्थ सूख करके जम जाता है। अथवा चूर्ण के समान आकार को, धारण कर लेता है, कभी यह मलाईके आकारमें रहकर फटजाता है, और चारों तरफ नवीन प्रदाह पैदा कर देता है। ऐसी अवस्था को आवशेषिककोट (रेसिड्यूअल ऐबसेस) कहते हैं। ऐसा न होकर कभी २ पूय कोष (Puscells) पैदा हो कर उस स्थान में एकअर्बुद पैदा हो जाता है,।

चिकित्सा

पीड़ित अस्थि अथवा अस्थि की सन्धि के साथ संयुक्त न होने पर छोटे २ पुराने फोड़ों को चीर देना चाहिये। ऐसा असम्भव होने पर उसको काट कर भीतर का पूय, रक्त, दूर कर बाहर निकाल देवै, और सीं देवे। अथव विषाक्त रक्तका विरोध करने वाली (ऐन्टी सेप्टिक) प्रणाली से उसका दूषित पदार्थ बाहर निकालें मेरु रज्जु की पीड़ा के परिणाम से उत्पन्न हुये फोड़ों में, अथवा किसी दूसरे कारण से उत्पन्न हुये बड़े २ फोड़ों में ध्यान, देकर चिकित्सा करनी चाहिऐ। पचन निवारक सब कार्यों की उपेक्षा से यदि उसके भीतर, पूय पड़ कर पक जावै। अथवा किसी प्रकार उस के अन्दर जीवाणु प्रविष्ट हो जावै। तो कई दिन के बाद पूय उत्पन्न होता हैं। इसके साथ प्रदाह ज्वर पैदा होकर संघातिक होने की सम्भावना है। इस अवस्था में एस्पिरेट यंत्र से फोड़ा को फोड़ देवै, जितने बार फोड़े, उतने ही बार उसके मध्य में आइडोफार्म इमलशन, डाल देवै। उसके बाद पचन निवारक उपायों का अवलम्बन करै और उसका मुख खोल देवै बर्कर महोदय का, "फ्लशिङ्ग्यून" नामक अस्त्रसे फोड़ा के अन्दर के खराब पदार्थों को छील लेवै। बड़ेर संदंश यन्त्रों (फर्सेप्स (के मुख में एन्टी सेप्टिक स्पञ्ज, संयुक्त करके फोड़ा की प्राचीर को रगड़ना चाहिये। एन्टी सेप्टिक लोशन ५००० से १ पर क्लोराइड आफमर्करी) से धोवै और इसके मध्य में आयोडोफार्म इमलशन डाले। और फोड़ा को बाध देवे। फोड़ा में और पूय भर जावें तो वही उपाय फिर दूसरी बार करै।

व्यापक पूयोद्भव Diffuse : Suppuration

उद्भव स्थान—यन्त्र, वा शरीर विधान के आधेय में अथवा त्वचा के ऊपरी स्तर में अथवा श्लेष्मिक (Serous सिरस) झिल्ली में व्यापक पूय का उद्भव होता है। पहले कहे हुये प्रकार का उदाहरण कहा जासकता है। जो कोष्ठिक (सेल्यूलर) और कोष्ठ (सेल्यूलोक्यूटेनियस) और त्वचा में फैलने वाले विसर्प में शरीर व्यापी पूय का उद्भव होते हुवे, देखा जाता है। आगन्तुक मेद (गाठिया) कात (वेङ्क्रिन) उदर प्रदाह (पेरिटोनाइटिस)।

निदान

जो दो प्रकार का व्यापक पूय (मवाद) कहा गया है। दोनों का निदान एक ही है। किन्तु भेद यह है कि एक का पूय शरीर के भीतर में फैलता है। और दूसरे का त्वचा के ऊपरी स्तर में फैलता है। इसलिये त्वचा का गम्भीर अंश वा श्लैष्मिक झिल्ली आक्रान्त हो जाती हैं। तब उसको क्षत कहते हैं।

मेदोगत ज्वर Hectic Fever हेकटिक फीवर

निदान—चिरकाल से फैलने वाले पूयोद्भव से हेकटिक ज्वर होता है। शरीर के अन्दर में अधिक मात्रासे पूयके पैदा हो जानेसे यह ज्वर उत्पन्न हो जाता है। किन्तु इसका एक ही कारण नहीं है। क्योंकि ऐसा भी देखा गया हैं। कि एक २ पुरानी विद्रधि अथवा फोड़ा लम्बा चौड़ा गहरा होते हुए भी चिरकाल तक सम भाव में रहता है। उस समय जब तक वह चीरा नहीं जाता हैं, तब तक इस ज्वर के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते हैं। तब उसके अन्दर पूय न पड़े, इस लिये अच्छी तरह धोवै। ऐसा करने पर यह ज्वर उत्पन्न ही होता है। इससे निश्चय यह हुआ कि पूय पककर और सड़कर थोड़ी थोड़ी मात्रा में शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जावे, उससे सारे शरीर का रक्त विषैला हो जाता है, इससे हेक्टिक ज्वर पैदा होता है।

लक्षण

इस ज्वर में अधिक स्वेद निकलता है। शीघ्र ही शरीर क्षीण होजाता है। रात्रिमें ज्वर आता है। प्रातः काल उतर जाता है। अधिकतर कोष्ट वद्ध मूत्र, विकृति, म्लानमुख, लालगाल, दोनों आंखें सफेद, इसके साथ ही कनीनिका फैली हुई, और लालजीभ उसका प्रान्त भाग सूख जाता है, और नाड़ी की गति कम हो जाती है। भूख कम हो जाती है और रोगी की अवस्था प्रति दिन खराब ही होती जाती है अन्त में उदर के रोगों से पीड़ित होकर इस लोक को छोड़ देता है।

चिकित्सा

पूयोद्भव का कारण दूर करना चाहिये (संक्षपतः क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्) यदि ऐसा न किया जासके। तो पूय को बिना बाधा के निकालने के लिये उद्योग करे। जिससे दूषित पूय पदार्थ शरीर के अन्दर न प्रविष्ट होवे। और निकलने वाले द्रव्य पक न जावें। इसलिये पचन निवारक आइडोफार्म आदि औषधें प्रयोग करे। उसके साथ ही, उत्तेजक, और बलदायक औषधियों का भी प्रयोग करे। तरल किया हुआ गन्धकाम्ल (Sulphuric Acid) और ऐट्रोपिन से धर्म निवारण करे। और अफीम खैर आदि संकोचक औषधियों से उदर के रोगों को नाश करे।

लार्डेसस पीड़ा Lardaceous Disease

निदान—शरीर के सम्पूर्ण अंश विशेष कर अस्थि, अस्थिसन्धि, चिरकाल व्यापी पूयरोग, यकृत दोनों वृक्क, तिल्ली, और अन्त्र मण्डल में यह पीड़ा हो सक्ती हैं। इसमें शरीर के यन्त्रों का प्रोटोप्लाज़्म (पलल) और छोटी २ धमनियों का पेशिक सब आच्छादन चर्बी अथवा मोम के तरह एक प्रकार विलेपी पदार्थ से आवृत हो जाता हैं।

लक्षण

इस रोग में यकृत अत्यन्त बढ़ जाता हैं। कभी कभी यह जघन चूड़ा (इलिऐक-क्रेष्ट) तक आजाता हैं। वृक्क और प्लीहा का आयतन बढ़ जाता है। और मूत्र में (एल्ब्यूमेन अण्डशुक्क) हायेलाइन (पानी ऐसा, शीसे जैसा) पदार्थ निकलते हैं। पहिले २ मूत्र का परिमाण अधिक बढ़ जाता है। उसका वर्ण मलीन होता है, और आपेक्षिक गुरुत्व कम हो जाता हैं। उदर के रोग दिखलाई देते हैं। जिससे साफ २ मलूम हो जाता है, कि अंत्र मण्डल आक्रान्त हो गया है।

चिकित्सा

जिस कारण से पूय पैदा हुआ होवै। उसको पहिले दूर करें जानु सन्धि में अस्त्र प्रयोग करनेसे यह कार्य अच्छी तरह सिद्ध होजाता हैं। ऐसा करनेपर यकृत की वृद्धि और रोग के अन्य लक्षण इतनी जल्दी घट जाते हैं। कि देखने में आश्चर्य होता है।

एक द्विमुख नाड़ी व्रण Sinus and Fistula

नाड़ीव्रण की निरुक्ति—व्रण का मुख अपने से ही उन्मुक्त हो जावे। अथवा कृत्रिम उपायों से उन्मुक्त किया गया होवे। तो उसका गह्वर अंकुररोद्गम (ग्रैनूलेशन) से अधिकतर भरा रहता है। कभी कभी ऐसा न होकर उसमें नाली अथवा शोथे होजाता है, और व्रण सहज में अच्छा नहीं होता है। ऐसा रूप होने पर, उसको नाड़ीव्रण कहते हैं किसी अवस्था में अस्थि क्षत होने पर अथवा मृत अस्थि के साथ व्रणका संयोग होने अथवा व्रण के अंदर वाहिरका पदार्थ अथवा आगन्तुक पदार्थ (Floreign Body) पड़ जावे। अथवा किसी श्लेष्मा की नाली अथवा निःस्रावक का ग्रंथि के किसी स्थान में व्रण पैदा हो जावें। अथवा व्रण के खुल जाने पर दैशिक क्रियाओं के बश से यदि उसके प्राचीर आपस में सम्मिलित न होकर अलग हो जावे। ऐसा होने पर व्रण भरता नहीं है। और एक पूय से युक्त गड्ढे में परिणत हो जाता है। इस अवस्था को नाड़ी व्रण कहते हैं।

प्रभेद

साइनस और फिश्च्यूला, अधिकतर एक संज्ञा से ही व्यवहार किये जाते हैं। किन्तु दोनों के मध्य में यह पार्थक्य है। कि जिस नाड़ी व्रण में एक ओर मुख होवे। उसको साइनस कहते हैं। जिस के दोनों तरफ मुख होवे, उसको फिश्च्यूला कहते हैं। व्रण का गड्ढा न भरने पर अधिकतर वह साइनस में परिणित हो जाता है किन्तु, आघात क्षत अथवा गलितक्षत से साइनस और फिश्च्यूला दोनों देखे जाते हैं। कोई कोई इस रोग से जन्म भर आक्रान्त रहते हैं। भगन्दर और नाडी व्रण का विवरण आगे किया जावेगा। यहां पर जिस नाड़ी व्रण का आकार लिखा गया है। उसका आकार नल के समान, और दीर्घ और इसके अन्दर का भाग मसृण झिल्ली से ढका रहता हैं। और अधिकतर बड़े २ अंकुरों के मध्य में इसका मुख बाहर को होता है।

चिकित्सा

पहिले रोग के कारण को दूर करना चाहिये। इसके बाद व्रण की प्राचीर को धाल अस्त्र से छील देवे। और उपयुक्त बन्धनों से उसको जोड़ देवै। जिससे नाड़ी व्रण के गम्भीर प्रान्त में पूय न पैदा होवै। और जिससे नाडी व्रण और प्रकृत व्रण में परिणत न होवे। इस विषय को ध्यान में रख कर बन्धन बाँधे। यह क्रिया असम्भव मालूम होवै तो एक रबड़ की निष्काशन नली (ड्रेनज़ ट्यूब) प्रवेश कर देवै। जिससे क्षत भीतर से ही भर आवै। जितना क्षत भीतर से भरता आवे, उतनी ही नली प्रति दिन काट कर छोटी करता जावे। यदि नाड़ी व्रण बहुत दिनका हो जावै। और उसके प्राचीर कड़े पड़ जावें, या अचैतन्य हो जावै, तो 'टिंक्चर आइयोडाइन्' 'नाइट्रेट आफ सिलवर' अथवा 'पर अक्साइड आफ हाइड्रोजन' के तरल प्रक्षेप से उसको उत्तेजित करना आवश्यक है। नाड़ी व्रण के अन्दर आच्छादन करने वाली झिल्ली यदि ट्यूबाकल (उभार) युक्त हो जावे। तो वल्कमैन के स्पून नामक अस्त्र से उसको खुरच देवै। अथवा "क्लोराइड आफ जिङ्क" विशुद्ध कार्बोलिक एसिड, गैलवेनारीतार अथवा वेज़्लिन अथवा प्रकृत छेदनास्त्र से खुरच देवै। इन सब उपायों के निष्फल होने पर नाड़ी व्रण को खोल देवै। और उसकी आच्छादक झिल्ली काट कर अथवा खुरच कर निकाल देवै। और आइडोफार्म की वत्ती अथवा अन्य किसी पवन निवारक औषध से व्रण का क्षत भर देवै, ऐसा करने पर क्षत जड़से अच्छा हो जाता है। व्रणको चीरते हुये यदि किसी बड़ी रक्त की नाली में अथवा मर्म स्थान में, अथवा और किसी अङ्ग में आघात लग जावे, अथवा उसके चीरने पर क्षत के बढ़ जाने की सम्भावना होवे

अथवा अन्य किसी कारणसे वह असाध्य खराव मालूम होवै, तो उस नाड़ी व्रण के दूसरी तरफ में और एक मुख काट कर बाहिर करै। इसके बाद दोनों मुखों में ड्रेनेज़ट्यूब (निष्काशन नली) प्रवेश कर देवै। जैसे घाव भरता जावे, प्रति दिन उसी भांति एक २ कर दोनों नलियों को काटता जावे, इन सब स्थानिक चिकित्साओं के साथ सर्वाङ्गीण चिकित्सा भी करता जावे। कभी २ किसी सर्वाङ्गीण कार्द के विकार से नाड़ी व्रण आंशिक, वा, सम्पूर्ण रूप में हो जाता है।

क्षत Ulcers

निरुक्ति—त्वचा के ऊपरी स्तर में अथवाश्लैष्मिक झिल्लीमें प्रदाह होकर उसके कुछ अंश के क्षय हो जाने पर जो साफ २ पूय से युक्त आघात के चिह्न पैदा हो जाते हैं। उसको क्षत Ulcers कहते हैं, आघात अथवा अस्त्रोपचार के बाद कभी २ प्रकाशित आघत के चिह्नों को भी क्षत कहा जाता है।

क्षत के भेद

क्षत अनेक प्रकार का है। उत्पत्ति स्थान स्थानिक अवस्था परिवेष्टक अवस्था, से कई प्रकार का है। अथवा किसी विशेष कारण के अनुसार क्षत के भेद कल्पित किये जा सकते हैं।

स्तन का क्षत



इस प्रकार के क्षतके किनारे चिकने होते हैं और तलदेश बराबर होता है। स्वथ अंकुरों से ढका रहता है। इससे एक प्रकार का गंध रहित मवाद निकलता है। पचननिवारक दवायों से उसको युक्त करें और उसमें उग्रता पैदा होने न देवै। तो उसमें से एक प्रकार का स्वस्थ रस निकलता है इसके चारों तरफ की त्वचा ठीक रहती है। क्षत के अच्छे होने पर यही अवस्था हो जाती है।

चिकित्सा

अनुग्रतां साधक और पचन निवारक बन्धन बाँधे, और रोगी को विश्राम करावे, इससे क्षत शीघ्र ही अच्छा हो सकता है। क्षत का आयतन बढ़ जाने पर त्वक् परिस्था पन (स्किन ग्रैफटिंग) से कीलोत्पादन (साईकेट्राइजेशन) किया जा सकता हैं, इससे बड़े २ घाव प्रायः आराम हो जाते हैं, इस उद्देश्य के लिये साधारण रीति से दो उपायों का अवलम्बन किया जाता है ।

त्वक् परिस्थापन की पुरातन प्रक्रिया

रोगी की बाहु अथवा दूसरे स्थान से धमनी जाल के सहित छोटे ५ स्किनग्रैफ-टिङ्ग कैंची से टुकड़े त्वचा के काटकर उसी समय उस अंकुर वाले क्षत के ऊपर रखकर धीरे २ दबा देवे, इसके बाद जितने दिन तक वह जुड़ न जावे, तब तक पचन निवारक बन्धनों से उसको आवृत रक्खे, इसके बाद कुछ दिन के मध्य में रक्खे हुये छोटे २ त्वचा के टुकड़े नहीं दिखलाई पड़ते हैं । ये सब नवीन त्वचा से नवीन तन्तु बाहिर होकर क्षत के पुराने तन्तुओं के साथ मिल जाते हैं ।

नूतन प्रक्रिया

क्षत के स्थान को पचन निवारक औषधियों से अच्छी अवस्था में लावे, इसके बाद सब भांति की उग्र और पचन निवारक औषधियों से पकाये हुये नमक के पानी से धोना चाहिये, इसके अनन्तर क्षत के अंकुरों को छील देना चाहिये, और तीक्ष्ण धार वाले क्षुरे से रोगी की बाहु से अथवा ऊरु देश से एपिथिलियम् (उपकोष)——और कुछ अंश क्यूटिसविर से युक्त लम्बे २ त्वचाके टुकड़े काटकर उसी अस्तुरेसे क्षतके ऊपर रक्खें। क्षत के किनारों में त्वचा के टुकड़ों को सीं देवे, नहीं तो समय पर बेजुड़ करके, चारों तरफ से अंकुर पैदा हो जाते हैं । किसी कटे हुये प्रत्यङ्ग से अथवा खरगोश वा मेढक के शरीर से त्वचा के टुकड़े लिये जा सकते हैं । कोई लिङ्ग के मुख को ढकने वाली त्वचा को काटने के लिये बतलाते हैं ।

फङ्गोस क्षत (Feungousulcers) फङ्गोस आलर्स

प्रकृति—दाह आदि कारणों से शरीर के किसी स्थान में क्षत हो जावै। क्षत के चारों तरफ के मांसादि और त्वचा सिकुड़ जाती है, इस लिये क्षत के अंकुरों में शिराओं से शोणित सञ्चालन नहीं होता है, इससे क्षत बढ़ जाता है। इस प्रकार के क्षत को फंङ्गोस आलसर कहते हैं, इस क्षत के किनारे ठीक होते हैं किन्तु अंकुर त्वचा के ऊपर उठ जाते हैं । वे मोटे फैले हुये अधिक गहरे, लाल वर्ण के होते हैं उनसे सहज में ही रक्त निकलता है, और दुर्गन्धि से युक्त स्राव निकलता है ।

चिकित्सा

नाइट्रेट आफ सिलवर इस क्षत पर प्रयोग करे।

क्षीण क्षत Weak ulcer

प्रकृति—इसका दूसरा नाम शोथ विशिष्ठक्षत (इडिमेटस) है, उभार (ट्यूबार्कल) से युक्त अस्थि अथवा अस्थि सन्धि से इस प्रकार का क्षत पैदा होता है। प्रदाह के शान्त करने वाले मृदु प्रलेप को चिरकाल तक प्रयोग करने पर क्षत शान्त न होवे। तो शोथ वाला वही क्षत होता है। इस प्रकार के क्षत के किनारे तो ठीक होते हैं, परन्तु उसके अंकुर मोटे उठे हुये होते हैं। इससे अधिक मात्रा में जल के समान पतला स्राव होता है ।

चिकित्सा

इसके कारण को दूर करे, इसको दबावै, नाइट्रेट आफसिलवर अथवा संकोचक पदार्थों के लोशन प्रयोग करे। ट्यूबार्कल से उत्पन्न हुआ होवे, तो उसके अंकुरों को छील कर अलग कर देवै।

प्रदाह क्षत (Inflamedlulcer)

प्रकृति—इसका दूसरा नाम प्रदाह जनित क्षत (इन्फ्लैमेटरी आलसर) है। दोनों प्रकार के क्षत का मूल कारण प्रदाह है। वह प्रदाह मदात्यय (Alcohalism) दीनता आदि कारणों से सब अङ्गों में विकार रूप में पैदा हो सकती है। इसलिये पहिले प्रकार के क्षत प्रादाहिक अथवा प्रदाह जनित क्षत और शेष कहे हुये क्षत प्रदाह क्षत कहे जाते हैं। प्रदाह वाले क्षत का आकार अधिकतर बराबर नहीं होता हैं। उसका प्रान्त भाग भग्न और ऊँचा नीचा होता है। चारों तरफ की त्वचा और लालवर्ण से युक्त सूजन वाली होती है, प्रदाह तरुण होने पर वह पीला, सड़े हुये मांस से ढका हुआ देखा जाता है। यह अवस्था अत्यन्त प्रदाह होने पर होती है। साधारण अवस्था में अंकुर नहीं होते हैं, इस कारण से सूजा हुआ तोला और फीका लाल वर्ण होता है।

चिकित्सा

रोगी को विश्राम देवै, क्षत वाले अङ्ग को ऊँचा करके रक्खै। सब प्रकार की स्थानिक और पूतिदोष के हटाने के लिये प्रयत्न करे। तूलाक्तपट्टी (Lint) के साथ बोरिकएसिड आदि पाक को दूर करने वाली औषधियों का प्रयोग करे। रोगी के स्वास्थ्य पर दृष्टि रखना चाहिये।

पूति मांस क्षत (Sloughing ulcer)

प्रकृति—पहिले कहे हुये प्रदाह जनित क्षत की प्रकृति कठोर हो जावे, तो उसको पूतिमांस क्षत कहते हैं इसका प्रदाह अत्यन्त भारी और फैलने वाला होता है। उपदंश सुजाक आदि उपसर्गिक रोगों से इस प्रकार का क्षत देखा जाता है। इस प्रकार का क्षत अति शीघ्रता से फैलता है। इसके किनारे दबे हुये अथवा उठे हुये, धूम्र वर्ण वाले होते हैं, और इसका तल भाग पीला अथवा काला और पूति मांस से ढका रहता है। ऐसे क्षत में कम फैलने वाले ज्वर के साथ वेदना देखी जाती हैं।

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा प्रदाह जनित क्षत के समान ही है। क्षत की अवस्था खराब होने पर उसमें पाक से बचाने वाली औषधियों का प्रयोग करे। पीड़ा होने पर अफीम का प्रयोग करे। उपदंश से क्षत पैदा हुआ होवे, तो पूर्व उपदंश में कही हुई चिकित्सा का अवलम्बन करे, और पूति मांस (Slough) जब तक काम न होवें, तब तक बड़ी सावधानी से पारद का प्रयोग करे।

Phagedcniculcer फेजिडिनिकआलसर

प्रकृति—इस समय यह क्षत कम दिखलाई देता हैं, किन्तु उपदंश, सुजाक आदि सांक्रामिक रोगों से आक्रान्त रोगियों के भोजन पान पहिनने के कपड़े, रहने के लिये वास स्थान को खराबी इंद्रिय दोष से फिजिडिनिक आलसर पैदा हो जाता हैं। इस रीति के क्षत के प्रान्त भाग बराबर नहीं होते हैं। इसके चारों तरफ की त्वचा बैंजनी वर्ण की होती है। क्षत के ऊपर अंकुर (ग्रेनूलेशन) नहीं होते हैं। और वह अधिक लाल दूषित पदार्थ से ढका रहता है। उसमें अधिकतर पूति माँस मिला हुआ दिखाई देता है, पूति मांस की परिमाण में वृद्धि हो जावे, तो उस क्षत को स्लफिड फेजिडिन कहते हैं। इस प्रकार के क्षत बहुत जल्दी फैलते हैं, और अधिकतर सम्पूर्ण प्रत्यङ्ग जैसे शिश्न भग आदि को नष्ट कर देते हैं। इस क्षत में ज्वर भी पैदा हो जाता है।

चिकित्सा

क्षत के स्थान में स्पर्श ज्ञान हारक औषधियों का प्रयोग करके जब वह सूख जाय तब नाइट्रिक एसिड से क्षत के ऊपर का सब भाग जला देवे। कोई धान्वन्तरीय वैद्य विशुद्ध कार्बोलिकएसिड और पर क्लोराइडआफ मर्करी ५००० से एक प्रयोग करके क्षत के ऊपर आइडोफार्म डालने के लिये कहते हैं। नीम की पत्तियों के क्वाथ से धोने पर विशेष लाभ होता हैं। बलकारक पुष्टिकर आहार के साथ पूरी मात्रा में अफीम का प्र-

योग किया जा सकता है। आवश्यकता होने पर उत्तेजक औषधियों का का भी प्रयोग कर सकते हैं। वायु सेवन, स्वास्थ्य रक्षा में विशेष ध्यान रक्खे।

पुरातन वेदनाहीन अथवा मन्थरक्षत

Chronic, Callous or indolent ulcer

प्रकृति—क्षत को अच्छा करने के लिये बहुत काल तक ध्यान न देनेपर उसकी उग्रता क्रमसे बढ़ जाती हैं, इस कारण से क्षत के किनारे जलन पैदा करने वाले पदार्थों से भर जाते हैं, इसलिये शोणित सञ्चालन और क्षत के शान्त होने की शक्ति कम हो जाती है। गरीब मनुष्यों के पैर के नीचे इस प्रकार का क्षत अधिक तर देखा जाता है। इसके किनारे, चिकने सफेद, सिकुड़े हुए और उठे हुए होते हैं। चारों तरफ की त्वचा लाल हो जाती है अथवा उसमें खाज के समान चर्म रोग हो जाता है। तल भाग एक प्रकार के पतले स्राव से ढका रहता है। इसमें कोई अंकुर दिखलाई नहीं पड़ता है, यदि कहीं पर दो चार अंकुर दिखलाई देते हैं। तो वे बहुत छोटे होते हैं। इस प्रकार का क्षत कई वर्ष तक रहता है और इसमें मामूली पीड़ा होती है। इसका आयतन अधिकतर छोटा होता है, इसलिये समय २ पर यह सब पैर को घेर लेता है। यह अस्थि और अस्थिवेष्ट (फेशिया) में लगा रहता है, पुराने अचेतन्य क्षत में धीरे २ उग्रता पैदा हो जाती है। वयोवृद्धि के साथ में अधिकतर वह एपिथि- लियम (उपकोष) की प्रकृति को धारण करता हैं।

चिकित्सा

स्नेह द्रव्य और बन्धनों से किनारों को नरम करना चाहिये, उसके बाद उसके ऊपर आइडोफार्म अथवा उसी के तुल्य और कोई पाक से बचाने वाली औषध को डाले और मार्टिन का बन्धन बांधे, क्षत के बहुत बड़े होनेपर अस्त्र से उसको छील देवे। उसके ऊपर त्वक परिस्थापन (Skingrafting) करना चाहिये, क्षत पांव के पर्व (पोरवा) आदि को घेर लेवे, अथवा एपिथिलियम (उपकोष) में परिणित होने के लक्षण दिखलाई देवे तो अङ्गच्छेद Amputotion) कर देवे।

उग्र क्षत Irritable or painful ulcer

प्रकृति—किसी क्षतमें उग्रता अथवा पीडा प्रकाशित होवै। उसको उग्रक्षत अथवा तीव्र क्षत कहते हैं। किन्तु इसमें एक विशेषता यह है कि इस भाँति के क्षत अधिकतर छोटे और तीव्र व्यथा पैदा करनेवाले होते हैं। और यह अधिकतर मल द्वार के समीप में होता है। कभी २ मध्य अवस्था के बाद स्त्रियों के गुल्फ (टकने) के समीप में छोटे आयतन वाला रक्त से भरा हुआ पीड़ा पैदा करने वाला क्षत पैदा हो जाता है, उ-

सको भी उग्र अथवा तीव्र क्षत कहते हैं। ऐसे क्षत की व्यवस्था समय २ पर अत्यन्त पीड़ा पैदा करने वाली होती हैं। स्नायु के सब प्रान्त आक्रान्त होकर अत्यन्त वेदना पैदा करनेवाले हो जाते हैं।

चिकित्सा

साधारण स्वास्थ्य के विषय में ध्यान रक्खें, अल्प मात्रा में अफीम का प्रयोग करे, और नाइट्रेट आफ सिलवर से उसको जलावे, इससे क्षत अच्छा हो जाता है। क्षत कष्ट साध्य होने पर हिलटन् की प्रक्रिया के अनुसार त्वचा के नीचे से छोटी २ स्नायुओं को अलग कर देवे, अथवा उनको काट देवै, इससे बहुत लाभ होता है।

विशेष क्षत

किसी विशेष कारण से जिन क्षतों की उत्पत्ति होती हैं उनका विवरण यहां पर किया जाता है, जैसे ट्यूबार्क्यूलस आलसर (यक्ष्म पिड़का जन्य क्षत) सिफिलिटिर आलसर (उपदंशिक क्षत गाउट आलसर (वातिक क्षत) और स्कौर्ब्यूटिक आलसर (रक्त प्रवर्तक क्षत) इत्यादि विशेष क्षत होते हैं।

क्षुद्र पिडिका जन्य क्षत (Tuberculous ulcer)

प्रकृति—ट्यूबार्कल क्षुद्र पिडिका से युक्त सबलसीका ग्रंथियां भग्न हो जावे अथवा ट्यूबार्कल (क्षुद्र पिडिका) वाले सब व्रण फट जाते हैं, अथवा ट्यूबार्कल (क्षुद्रपिडिका) वाले सब नोड्यूल क्षुद्रार्बुद क्षत में परिणित हो जावे ऐसे जो क्षत पैदा होते हैं उनके किनारे मैले, सूजन वाले और बाहर मुख वाले होते हैं। इन क्षतों को छूनेपर सहज में ही रक्त निकलने लगता है इससे अल्प परिमाण में एक प्रकार हल्दी के समान पीला रस निकलता है।

चिकित्सा

क्षुद्र पिडिका (ट्यूबाकल) के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

बालकमैन का स्पून (तालयत्र) नामक अस्त्रसे क्षत के किनारे और तल: छील देना चाहिये। कड़ा होने पर उसके ऊपर ब्लिष्टर (छालोत्पादक पलस्तर) का प्रयोग कर के फफोला पैदा कर देवै। फिर वह शान्त हो सकता है।

उपदंश रोग में प्राथमिक क्षत होने के बाद शरीर के अनेक स्थानों में क्षत होजाते हैं, इस प्रकार के क्षतों के दो विभाग हैं। एक अगम्भीर, दूसरा गम्भीर।

अगम्भीर क्षत

पिडिकाओं से युक्त, और व्रण वाले उपदंश—से सब अगम्भीर क्षत पैदा होते है, इनका आकार गोल होता है। अथवा द्वितीया के चन्द्रमा के समान होता है। इन क्षतों

के चारों तरफ धूम्र वर्ण का एक घेरा दिखलाई पड़ता हैं। पीला क्षत पूति मांस (श्लफ) अथवा पपड़ी से ढका रहता हैं।

गम्भीर क्षत

गांठों के फूट जाने पर गहरा क्षत हो जाता है। इस भाँति का क्षत गोल अथवा बादाम के तुल्य होता हैं। इसके किनारे ऊँचे और लाल होते हैं।

चिकित्सा

पूरी मात्रा में, आइयो डाइड आफ पोटाशियम् और कष्ट साध्य होने पर इसके साथ कम मात्रा में पारद का प्रयोग करे। स्थानिक चिकित्सा बोरोसिक पुल्टिश और उसकेऊपर ब्लेकवाश आइडोफार्म अथवा रेड अक्साइड आफमर्करी का प्रयोग करे।

सन्धिवात क्षत Gonty ulcer

वायु से पीड़ित अंश के ऊपर जो क्षत होते हैं। उनको सन्धिवातक्षत कहते हैं। ये क्षत अगम्भीर और छोटे आयतन वाले होते हैं। इन का रस सूख जाने पर क्षत के ऊपर खड़िया मिट्टी के तुल्य आकार मालूम होता है।

रक्त प्रवर्तक क्षत (स्कार्ब्यूटिक क्षत)

रक्त पित्त (स्कार्वि) रोग से पीड़ित पुरुष के जो क्षत होता हैं। उसको रक्त प्रवर्तक क्षत (स्कार्ब्यूटिक) कहते हैं। इस क्षत के अंकुर बैंजने होते हैं। इसका ऊपरी भाग पपड़ो से ढका रहता है। इसको निकालने से रक्त निकलता हैं। इसकी चिकित्सा रक्त पित्त (स्कार्वि) के तुल्य ही है।

गलित क्षत Gangrene or Mortification

प्रदाह से भिन्न और किसी कारण से, गलित क्षत (ग्रैंग्रिन) पैदा होजावे। यह भी एक प्रदाह ही का कारण हैं।

कारण—गलित क्षत (ग्रैंग्रिन) के दो प्रकार के कारण है। पूर्व प्रवर्तक HPre-Disposing) और उत्तजकर (Exciting)।

पूर्व प्रवर्तक

सब कारणों से शरीर की जीवनी शक्ति कम हो जावे। रोगकी हानि करने वाली शक्ति को दबाने के लिये शरीर में सामर्थ्य न रहे। इसको पूर्व प्रवर्तक कारण कहते हैं। जैसे वृद्धावस्था हृदय की दुर्बलता, वा, दुर्बल क्रिया, अङ्ग प्रत्यङ्ग में बहुत काल तक

नोट-उपदंश का विशेष विवरण राकेश केरक्तदाषाङ्क नामक विशेषाङ्क में देखना चाहिये।

शोणित की अधिकता रहै । बहुमूत्र वृक्क (गुर्दा) की दाहसे सब शरीर में शोथ होवै इसलिये रक्त दूषित हो जावै । अथवा स्नायु केन्द्र, वा,स्नायु काण्ड में पीड़ा होने से अथवा आघात से स्नायु की शक्ति कम हो जावै ।

उत्तेजक कारण

इसके पांच विभाग हैं ।

(१)—भौतिक, वा, रासायनिक उपाय (Physicalorchemical Agencies)

(२)—प्रदाह (Inplammation)

(३)—धामनिशोणित सञ्चालन में बाधा (Obstruction tothe arterial Supply)

(४)—कैशिक शोणित सञ्चालन में बाधा (Obstruction tothecapillary circulation)

(५)—शैरिक शोणित के प्रत्यागमन में बाधा (Obstructiontothe uenous-return)

भौतिक, वा, रासायनिक उपाय

(१)—ये शरीर की जीवनी शक्ति प्रत्यक्ष रूप से नष्ट करते हैं । आघात अथवा बल प्रयोग से कोई प्रत्यङ्ग अथवा, उसका कोई अङ्ग पिस जावे । अधिक उत्ताप से जल जावै । अथवा, अधिक ठंढक जैसे तुषार (कोहरा) शरीर पर पड़ जावे । तीक्ष्ण द्रावक (acids) क्षार पदार्थ दूषित पूति स्राव की रासायनिक क्रिया हो जावे ।

प्रदाह

(२) जलन को पैदा करने वाले, बाहर निकालने वाले पदार्थों से पीड़िक अंश में दबाव पड़े । इसलिये उस के शोणित संचालन में बाधा पहुंचे । और ऐसी दाह जिससे कोमल अंश शून्य पड़जावे । अथवा डिपथेरिया क्रिमी से पैदा हुआ प्रदाह होवे, पूय से किसी अङ्ग में गलित क्षत हो जावे, ये प्रदाह से गलित क्षत के दृष्टान्त स्वरूप होते हैं ।

धामनिक बाधा, arterialbstuction

(३) मूल धमनी कट जावे, अथवा बंध जावे, इसलिये अर्बुद हो जावे । तो शोणित संञ्चालन में बाधा होती है ।

कौशिक वाधा Capillaryobstruction

दवाव से अथवा रक्त के इकट्ठा होजाने से कौशिक रक्त नालियों के शोणित सञ्चालन में वाधा पैदा होवै।

शैरिक वाधा Venousobstruction

स्ट्रेंग्यूलेटेड् हर्निया (फँसी हुई अंत्रवृद्धि) अग्र पाटिका (पैरा फाइमोसिस) और दृढ़ वन्धन आदि कारण होने पर शिरा से शोणित प्रत्यागमन में कमी हो जाती है।

चिह्न और लक्षण

कारण की प्रकृति के अनुकूल लक्षण और चिह्न में भेद देखा जाता है।

(क) आक्रान्त अंश की सब शोणित नालियों का फड़कना वन्द होजावे।

(ख) स्पर्श ज्ञान की शक्ति नष्ट होजावे। आंक्रान्त अंश में चीटीं काट लेवे, तो रोगी को पता नहीं लगता है।

(ग) क्रिया से शून्य और वर्ण का परिवर्तन हो जाता है, गलित क्षत गैंग्रिन, प्रकाश होने के पहिले जो अंश, उत्तप्त, लाल, फूलाहुआ, पीड़ा से युक्त होता है। धीरे २ वह ठंडा हो जाता है, और उस का संताप, चारों तरफ में शरीर के ताप के अनुसार जो हो जाता है। पीड़ा कम हो जाती है, ऐसा कि आक्रन्त अंश की स्पर्श ज्ञान शक्ति का लोप हो जाती है। त्वचा की ललाई धीरे २ कम हो कर मिट्टी के समान मलिन वर्ण हो जाती है, और उसके स्थान २ में लाल दाग होते हैं। उस अंश को दावने से एक प्रकार चुड़ चुड़ शब्द होता है, और उस से सड़ी दुर्गन्ध निकलती है। शेष में क्षत हो जाता है।

चिकित्सा

चिकित्सा करने के समय कई एक विषयों में ध्यान रखना चाहिये। इसके कारणों को दूर करे। इसलिये उस अङ्ग में दृढ़ वन्धन होवे, तो उसको खोल देवै। यदि पकना प्रारम्भ होवै, तो उससे उसकी रक्षा करे, दवाव और खिंचाव को शान्त करे। गैंग्रिन उत्पन्न होने पर उसकी चिकित्सा करे, जिससे वह अच्छा हो जावे, परन्तु अच्छा होने के लिये आक्रान्त अंश को ऊंचा कर के रक्खे। उस अंश के ताप की रक्षा करे, शोणित संचालन की सब वाधाओं को दूर करे, शिरा में शोणित रुक गया होवै। तो धीरे धीरे मृदु संघर्षण से उसको शान्त करे, गैंग्रिन आरम्भ होने पर जिससे वह स्थान सड़न जावे इस लिये सजीव अंश से मृत अंश को अलग करने के लिये विशेष दृष्टि रक्खे। अथवा

उस अंश को काट देवे, इसके अतिरिक्त रोगी के बल की रक्षा, शरीर में दूषित पूतिविष (Septic Poison) का शोषण दूर करे, और पीड़ा शान्त करने के लिये अफीम का प्रयोग करें।

प्रकार भेद

अवस्था के अनुसार गैंग्रिन दो प्रकार का होता है। एक आर्द्र, दूसरा शुष्क (१) प्रादाहिक गैंग्रिन, (२) आभिघातिक, (Franmatic) गैंग्रिन (३) शल्यातु रालयिक गैंग्रिन (४) फैजिडिमा (सड़ा हुआ जैसा आतशक) (५) कैंक्रम अरिस, औनोमा मुख दारी पिड़िका (६) विस्फोटक (Carlbuncle) (७) शय्याक्षत (Bedores) (८) बहुमूत्र (Diabetic) गैंग्रिन। ये आर्द्र गैंग्रिन के अन्दर है। (१) जराजन्य (Senile) गैंग्रिन (२) किसी मूल धमनी के बन्धन अथवा उसके मध्य में पैदा हुआ अर्बुद उससे उत्पन्न हुआ गैंग्रिन ३ तुषारघात (Frostbite) जन्य गैंग्रिन और रेनेड की पीड़ा ये शुष्क गैंग्रिन के अन्तगत है इससे स्पष्ट जाना जाता हैं। कि गैंग्रिन के जितने कारण होते है। उतने ही प्रकार का गैंग्रिन हो सकता है।

आभिघातिक गैंग्रिन(Troumatic Gangrene)

आभिघातिक गैंग्रिन के दोभेद होते हैं। स्थानिक Local और व्यापक (Spreading)

लक्षण

शल्यातुरालय में अधिकतर आभिघातिक गैंग्रिन देखा जाता है। किसी प्रकार की कठोर आघात से शरीर का कोई स्थान, भग्न अथवा पिस जावे। आभिघातिक गैंग्रिन पैदा होता है। इसके सिवाय कोई मूलधमनी, अथवा शिरा व दोनों कट जावें। या विदीर्ण होजावे और त्वचा में कोई आघात न लगे तब भी गैंग्रिन पैदा हो सकता है। इस को अप्रत्यक्ष:आभिघातिक गैंग्रिन कहते हैं।

लक्षण—आहत हुआ प्रत्यङ्ग फूल जाता है। और छूने पर ठंढा मालूम होता हैं। शिथिल हो जाता है। उस स्थान में त्वचा फड़कती हुई मालूम होती है।

चिकित्सा

जब रोग ठीक २ निश्चित हो जावे तब आहत स्थान को काट देवे। यदि गैंग्रिन चिकित्सा से अच्छा हो सकै तो अंगच्छेद (Amputation) न करके, रुई के फाहा से आहत हुवे प्रत्यंग को गर्म रक्खे और उसको एक तकिया के ऊपर रक्खे और उत्तेजक औषध और दृढ़ बन्धन प्रयोग करे। कक्षदण्ड (स्प्लिन्ट) का व्यवहार न करै। अङ्गच्छेद

यदि करना होवे ग्रस्त गैंग्रिन अंश के ऊपर काटना चाहिये किसी प्रकार का क्षत हो जावे तो वह सड़ न जावे, इस विषय में ध्यान रखना चाहिये। समय समय पर आहत या पिसे हुये अंश को चीर कर उसके मध्य से रक्त का जमाव, निकाल देवै। अथवा टूटी हुई हड्डी को निकाल कर रक्त नाली के दबाव को दूर कर देवे। इस भांति गैंग्रिन अच्छा हो सकता है,

व्यापक आभिघातिक गलित क्षत

फैलने वाले आभिघातिक गलित क्षत (गैंग्रिन) की प्रकृति अधिक भयंकर होती हैं। ऐसा गलित क्षत (गैंग्रिन) शरीर की ओर बहुत जल्दी फैलता है, उसके साथ २ कठोर सब अङ्गों में लक्षण दिखलाई देते है, ये दो प्रकार के होते हैं दोनों विष बीजाणु से पैदा होते हैं। रोगी का स्वास्थ्य पहिले से खराब हो जाता है, एक प्रकार की पीडा पैदा होकर दूसरी पीडा किसी स्पर्श के आक्रमण से पैदा हुई दाह से होती है,

चिकित्सा

प्रथम प्रकार के गैंग्रिन में आज तक चिकित्सा से विशेष लाभ नहीं देखा गया है, दूसरे प्रकार के गैंग्रिन में जितनी जल्दी अङ्गच्छेद किया जावे, उतना ही अच्छा है, और उत्तेजक औषधि, पुष्टि कारक तरल, खाने वाले पदार्थों से बल की रक्षा करे पीड़ा को हटाने के लिये अफीम का प्रयोग करें, इसके साथ ५ आइडोफार्म से क्षत स्थान को ढका रक्खे,

जरा जन्य गैंग्रिन Senilegangrene

अधिकतर ऐसा गैंग्रिन वृद्धावस्था में होता है, । यह अधिक तर पैर के अंगूठे से प्रारम्भ होता है, कभी २ यह, नाक, कान, अथवा अँगुलियों में भी प्रकाशित होता है, ।

लक्षण

हृदय की दुर्बलता से जंघा की धमनी में शोणित सञ्चालनक्रम हो जावै, और नीचे के प्रत्यङ्गों की शोणित नालियों में रक्त जम जावै, तब इस प्रकार का गैंग्रिन पैदा करता हैं, एल्ब्यूमिन्यूरिया (अण्डशुक्लमूत्र मल) अधिकतर इस रोग के साथ होता है, पहिले अगूंठे में पांव के तलवा में काला दाग दिखलाई देता है, इसके बाद उस स्थान में प्रदाह होकर क्षत पैदा हो जाता है' कभी २ जूता के कड़े होने से पैर के छिल जाने पर वह स्थान पक जाता है, पीडा प्रकाशित होने के पहिले आक्रान्त स्थान शीतल हो जाता है, और अचेतन हो जाता हैं, और पाँव में अधिक तर गड्ढा हो जाता है, गैंग्रिन उत्पन्न हो

कर ऊपर को फैलता है, यहाँ तक सम्पूर्ण पैर के तलवे फैल जाता हैं, कभी२ सब पैर इस से आक्रान्त हो जाता है आक्रान्त अंग, सूख जाता है, । काला हो जाता हैं, सिकुड़ जाता हैं, पीडा अत्यन्त तीव्र होती है' ।

चिकित्सा

अङ्गच्छेद, इस रोग में प्रधान चिकित्सा है, आक्रान्त अङ्ग के दूर में अङ्गच्छेद करना चाहिये, इस लिये यदि पैर के तलवे में गैंग्रिन हवे । तो अधिकतर उरुदेश का छेद न करें उत्तेजक औषधियां और तरल आहार देवें अफीम से उसकी वेदना को दूर करें.

तुषार घातजन्य गैंग्रिन Gangrenetofrostbite

अधिक कोहरा, व पाला आदि के शरीर पर पड़ने से, अथवा अधिक काल तक ठंढक के साथ संयोग होने पर इस प्रकार गैंग्रिन पैदा हो सकता है, यह रोग भारत वर्ष में प्राय: नहीं होता हैं, शीत प्रधान देशों में होता हैं.

मधुमेहिक गैंग्रिन Diabeticgangrene

मधुमेह वाले रोगी के जो गैंग्रिन होता है, उसको मधुमेहिक गैंग्रिन कहते हैं । यह गैंग्रिन किसी २ अंश में जरा जन्य गैंग्रिन के समान होता है. उसके समान बुड्ढे आदमियों में यह भी होता हैं, अधिक तर पैर के तलवे, में अथवा अंगूठे में, जूता से कट जाने पर अथवा सामान्य क्षत होने पर यह पैदा होता हैं,किन्तु जल्दी नहीं फैलता है, यह शुष्क होने पर भी आर्द्र भाव को प्राप्त होता है.

चिकित्सा

पहिले अँगच्छेद (एम्पूटेशन) निष्प्रयोजन जान कर उसको नहीं करते थे । पाक को दूर करने वाले वन्धनों से, उत्तेजक औषध, तरल. पुष्टिकारक आहार, से रोगी रक्षा करते थे ।

वेदना को दूर करने के लिये अफीम देते थे परन्तु आज कल यह सिद्धान्त छोड़ दिया गया है' प्रसिद्ध शल्य चिकित्सकओयल सेप, स्पेन्स सर,, आदि ने, अङ्गच्छेद को आवश्यक समझ कर ऐसे गैंग्रिन की चिकित्सा में अवश्य अङ्गच्छेद करने के लिये कहा है, इस रोग में अस्त्रोपचार सर्वथा आपत्ति रहित नहीं जानना चाहिये, क्योंकि सामान्य अस्त्र प्रयोग से समय पर मधु मेह जनित मूर्च्छा, (डायविटिक कोमा) होकर रोगी की मृत्यु देखी जाती है,

रेनडस पीडा Raynandsdisease

लक्षण—यह एक प्रकार का गैंग्रिन है, यह किसी अभिघात के बाद उत्पन्न नहीं होता है, बालक और युवा पुरुषों की अंगुलियों में कुछ काल तक ठंडक आदि के लगने से यह रोग हो जाता है, इस लिये यह शीत काल में, अंगूठा और दूसरी अंगुलियों में प्रकाशित होता है, कभी कान में भी होता है, आक्रान्त अंश में रक्त भर जाता है, और नीला पड़ जाता है, और उसमें तीव्र वेदना होती है, कभी २ सन्यास आदि रोग होकर मृत्यु भी हो जाती है,

चिकित्सा

वैज्ञानिक रेनड महोदय तड़ित तरङ्ग से इस रोग की चिकित्सा करते हैं, गैंग्रिन प्रकाश होने के पहिले इस क्रिया का अवलम्बन करना चाहिये । इससे प्रायः सफलता होती है, गैंग्रिनपैदा हो जाने पर साधारण अस्त्रोपचार करना चाहिये, कान में एक प्रकार गैंग्रिन दिखलाई देवै । तो अफीम का सेवन करावे, और बेलाडोना, स्थानिक रूप में प्रयोग करै,

---



अर्बुद Tumours

निर्वचन, शरीर का कोई अंश प्रदाह के बिना फूल जावे। तो उस फूलेअंश को अर्बुद कहते हैं।

गठन

शरीर की परिणत अथवा अपरिणत अवस्था में जो सवस्वाभाविक विधान हैं। अर्बुद के उपादान उन सब उपादानों के अनुकूल हैं, जैसे अस्थि-उदास्थि- मेद, इत्यादि अथवा एपिथिलियम (उपकोष —समूह के कोष (सेल) अथवा भ्रूण की मौलिक अवस्था सत्र विधान टिसू (Tissue) देखे जाते हैं इसमें वे सवविधान विद्यमान हो सक्ते हैं।

प्रकृति

अर्बुद की प्रकृति अनेक प्रकार की है, यह जिन विधानों से उत्पन्न है, उन्हीं विधानों की प्रकृति को धारण करता है, उन्हीं विधानों से परिपुष्ट होता है,, इस अवस्था में यह चारो तरफ के विधानों को स्थान से हटा कर अपनी वृद्धि, और। परिपुष्टि करता है, जैसे मेदे से पैदा हुआ अर्बुद त्वचा के नीचे की मेद में पैदा होता है ऐसे अर्बुद को इमोलोगस (समप्रकृति) वाला अर्बुद कहते हैं।

इसके विपरीत भावोंसेयुक्त अर्बुद को विषम प्रकृति (ईटरोलोगस) वाला अर्बुद कहते हैं। विषम प्रकृति वाला एक प्रकार के विधान में पैदा होकर अन्यविधान को आक्रमणकरके स्थान से भ्रष्ट कर सकता है। जैसे एपथिल्यूमा (विलोम त्वगनुकरणी अर्बुद) एपथिलियम् (-उप कोष-) में उत्पन्न होकर संयोजक तन्तु अथवा पेशी, वा, अस्थि को आक्रमण करता है। अण्डकोष का एनकन ड्रोमा (तरुणास्थि अर्बुद) और वृक्क का ऐत्र डोमाइमा (उदर मांसार्बुद) प्राथमिक अवस्थामें विषम प्रकृतिक काअर्बुद कहे जा सकते हैं। तन्तु अस्थि, मेद आदि शरीर के परिणत पदार्थ लेकर सम प्रकृति का अर्बुद संगठित होता है ये सब अर्बुद निर्दोष होते हैं किन्तु विषम प्रकृति वाला अर्बुद कोष (सेल) के समान शीघ्र बढने वाले उपकरणों से संगठित होता हैं। इस प्रकार का अर्बुद अधिक दुष्ट दोष से युक्त होता है जिस अर्बुद के कोष जितने अधिक होते हैं। उसके दोष भी उतने ही अधिक होते हैं।

कारण

अर्बुदों की उत्पत्ति के विषय में आजतक कोई मतनिश्चित नहीं हुआ है। इसलिये इसके सम्बन्ध में जितने मत प्रचलित हैं। उनसे इसके तीन कारण निर्दिष्ट हो सकते हैं, जैसे (१) चिरकाल व्यापी उग्रता, (पुरातन प्रदाह, व शोथ, (२) आघातकिन्तु कोई न जाने हुये विशेष कारण से रोगी के शरीर में अर्बुद की उत्पत्ति की पूर्व प्रवर्तनान

होवे तो पहिले अर्बुद उत्पन्न हो सकता है, कि नहीं इसका निश्चय आज तक नहीं हुआ है, पहिले कारण स्थानिक कारण कहे जा सकते हैं। इन से अतिरिक्त इसके कई कारण सर्वाङ्गीण हैं।

जैसे शूल (कोलिक) पूर्व प्रवर्तना, पहिली अवस्था में सब विधानों का शीघ्र बढ़ना परिणत अवस्था में उन का धीरे २ विकृत और दुःख, शोक, चिन्ता आदि कारणों से विधानों में बाधा देने के लिये शक्ति का ह्रास, वा हीनता हो जाती है।

निर्दोष अर्बुद

ऊपर में जो निर्दोष और दुष्ट, दो प्रकार के अर्बुद कहे गये हैं। उन के मध्य में निर्दोष अर्बुद अधिकतर धीरे २ बढ़ता है। जिस स्थान में वह उत्पन्न होता है, सदा उस स्थान के विधान तन्तुओं की प्रकृति को प्राप्त हो जाता है, ये सब अर्बुद अधिकतर आवरण के सहित वा, कोषमय (एन् कैपसूलेटेड) परिवृत (शर्कंस्स क्राइब्) होते हैं और सहज में दवाये जा सकते हैं, वे चारों तरफ के तन्तुओं को स्थान से गिरा देते हैं किन्तु इनका परिस्राव कण मात्र भी नहीं होता है, वे कभी २ लसी का ग्रन्थियों पर और दूर के तन्तुओं पर आक्रमण नहीं करते हैं, एक वार जड़ से नष्ट कर देने पर फिर दूसरी वार पैदा नहीं होते हैं, वे बड़े आयतन वाले हो सकते हैं, और किसी मर्म स्थल में दवाव देने से, अथवा उसके कार्य में वाधा उत्पन्न हो जाने से प्राण भी नष्ट हो सकते हैं।

लक्षण

दुष्ट अर्बुद का यह रूप नहीं होता है। यह बहुत जल्दी बढ़ता और पुष्ट होता है, और जिस स्थल में पैदा होता है। वहां के तन्तु, वा सब विधानों की प्रकृति को नहीं प्राप्त होता है। यह अधिकतर आवरण रहित' वा कोष शून्य होता है, और उसके चारों तरफ की अस्थि, पेशी, मेद आदि सब विधानों को स्थान से भ्रष्ट करके उन का थोड़ा २ स्राव करता है। अर्बुद से सब लसीका ग्रन्थियां आक्रान्त हो जाती है, और लसी का, वा शोणित तरङ्ग से शरीर के सब स्थानों में फैल जाता है। एक वार इस को जड़ से नष्ट कर देने पर फिर उस स्थान पर नहीं होते हैं, और सब शरीर में एक प्रकार रक्त के रहित विवर्ण भाव को पैदा कर देता है। इस विवरण साधारण रीति से कर्कट जन्य वैवर्ण्य (Cancerouscachexia) कहते हैं।

अर्बुद भेद

आकृति और गठन के अनुसार अर्बुद नीचे लिखे हुये कई विभागों में विभक्त हो सकते हैं।

(१) संयोजक तन्तु जात अर्बुद (Connectivetissuetumours)

ये सब अर्बुद संयोजक तन्तु में पैदा होते हैं ? ये और निम्न लिखित कई उपविभागों में विभक्त हो सकते हैं ।

(क) पूर्णत्व प्राप्त संयोजक तन्तु के आकार में, जैसे तान्तव, मेदज, उपास्थिज, अस्थिज, इनके क्रमशः अंग्रेजी नाम ये हैं ।

(१) फाइब्रोमा, (२) लाईपोमा, (३) कान्ड्रोमा.(४) अष्टियोमा (५) मांइकसोमा और मषार्बुद (पैपिलोमा)

(ख) पेशी, स्नायु, रक्त नाली, और लसी का ग्रन्थि आदि में, उत्पन्न हुये, जैसे (१) पेशी अर्बुद. (माइयोमा)

(२) स्नायु अर्बुद, (न्यूरोमा) (३) एञ्जियोमा (रक्त नाली का अर्बुद) (४) लसी का ग्रन्थिका अर्बुद (लिम्फ एञ्जियोमा) (५) लिम्फ एडिनोमा (यानि ग्रन्थिका अर्बुद)

(ग) तरुण संयोजक तन्तु में उत्पन्न हुये अर्बुद जैसे गोल कोष विशिष्ट सार्कोमा (मांसार्बुद) (तकुआ के तुल्य कोष विशिष्ट सार्कोमा अथवा (३) महाकोष विशिष्ट सार्कोमा (मांसार्बुद) अथवा मायो लाइड सार्कोमा (मज्जाकोष विशिष्ट मांसार्बुद)

(२) तन्तु, वा ग्रन्थि से युक्त अर्बुद, ये तन्तु के कोष के तुल्य कोष से परि पूर्ण होते हैं । (क) निर्दोष Innocent (१) ग्रन्थि का अर्बुद (एडिनोमा) और दुष्ट Malignout सिफरियड (गोलाकार) के तुल्य कोष विशिष्ट कार्शिनोमा (त्वगर्बुद) (क) कठिन और सिरस कार्शिनोमा (कठोरत्वगर्बुद) (ख) कोमल अथवा एन्सिफिलाइड कर्शिनोमा (मज्जाकोष युक्त त्वगार्बुद) (ग) कोलाइड त्वगर्बुद (कोलाइड कर्शिनोमा) (२) स्कोयमस सेल, (सपत्रक त्वगर्बुद) वा कोष विशिष्ट कार्शिनोमा (एपिथिल्यूमा) (३) नलाकार कार्शिनोमा (४) छेदन शोलार्बुद (रोडेंट आलसर) ।

(३) शृङ्गार्बुद (चेराटोमा) इस प्रकार का अर्बुद बहुत कम होता है । संयोजक तन्तु विशिष्ट अर्बुद Cmnnectiuctissuctumours पूर्णत्व प्राप्त संयोजक तन्तु का आकार प्राप्त अर्बुद।

तान्तव अर्बुद

सबके उपादान तन्तु होते हैं । ये सब तन्तु रज्जु के तुल्य कठिन होते हैं । अथवा त्वचा के नीचे कोमल पदार्थके समान कोमल होतेहैं । ये सब दोष रहित होते हैं । और धीरे धीरे बढ़ते हैं एक बार जड़ से नष्ट कर देने पर दूसरी बार फिर पैदा नहीं होते हैं । अधिकतर एक स्वतन्त्र आवरण से आच्छादित रहते हैं छेदन करने से ये पोले आधे

साँफ विल्हेपी के सामान मालूम होते हैं। इस भांति उसके कटे हुये स्थान को दवाने से उनमें एक प्रकार का रस निकलता है।

उद्भव स्थान

फाइब्रोमेट (तान्तव अर्बुद शरीर के किसी स्थान में जिस किसी तन्तु में उत्पन्न हो सकता है। किन्तु कठिन प्रकारका अर्बुद अस्थिच्छदमें विशेष कर दोनों हनु (ठोढ़ी) ओं के ऊपर जरायु में स्नायु काराड केतान्तव शरीर में स्नायु प्रान्त में ऐसे ही नासा गल मध्य वर्ती स्थान में (नैसोफेरिंस) वा सरलान्त में अधिकतर देखा जाता है। कोमल अर्बुद त्वचा के वा, श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे कोमल तन्तु में पैदा होते हैं। इसलिये ये अण्ड कोष मगोष्ठ और मस्तिष्कि के आवरण में देखे जाते हैं।

चिह्नादि

सब अर्बुदों की स्थिति के स्थान के प्रकृति के ऊपर के लक्षण और चिह्न निर्भर होते हैं। दृढ़ अर्बुद अधिकतर, अराडाकार वा गोलाकार, समतल, चलनेवाले, दृढ़ कठिन, होते हैं।

अधिकतर एक २ करके एक स्थान में पैदा होते हैं, किसी स्नायु के साथ संयोगन होने पर ये पीड़ा से रहित होते हैं। कोमल तानाव अर्बुद, बराबर, गोलाकार स्थिति स्थापक, कोमल और वेदना रहित होता है। अण्ड कोष और भगोष्ठ में पैदा होने से कोई पीड़ा नहीं होतो है, ये एक स्थान में ठहरने वाले नहीं होते हैं, चलते रहते हैं।

चिकित्सा

अच्छी तरह विचार कर जहाँ तक होसके, तानाव अर्बुद को शस्त्र से काट देना चाहिये।

मेदोजन्य अर्बुद

प्रकृति और गठन, मेदवाले अर्बुद शरीर के मेद के तुल्य संगठित होते हैं, निर्दोष और धीरे २ पैदा होते है। क्रमशः खूब बढ़ सकते हैं ये एक वार काट देने से दूसरी वार फिर उत्पन्न नहीं होते हैं, युवा अवस्था में एक प्रकार का अर्बुद अधिक देखा जाता है। ढेर के ढेर चर्बी में संगठित होते हैं, ये सब मेद के कोमल संयोजक तन्तुओं में, रक्त नाली में परिपूर्ण रहते हैं और एक पतले आवरण से ढके रहते हैं।

चिन्हादि

मेदोजन्य अर्बुद— सब से अधिक, स्कन्ध, पीठ, कमर में, पैदा होते हैं ये को-

मल होते हैं और इन में पीड़ा नहीं होती है, ये एक २ करके एक स्थान में पैदा होते हैं कहीं पर एक से अधिक भी देखे हैं। इन सब अर्बुदों को पुराना फोड़ा समझने की कम भूल हो सकती है। अंगूठा और मध्यमा अंगुली से दबाये रखने पर गड्ढा पड़ जाता है और एषणी सूची से बेंधने पर उस में से कोई तरल पदार्थ नहीं निकलता है, ये भारी होने से मध्याकर्षण शक्ति से समय २ पर किसी नीचे के संयोजक तन्तुओं में उतर आते हैं। जैसे रेतोगठिनीगत कर्क वसार्बुद (स्पार्मेटिक कार्ड, स्राव सिरस लाइ-पोमेट) समय २ पर अण्ड कोष में उतर आता है।

चिकित्सा

अर्बुद के आवरक कोष को छोल देने पर अर्बुद स्वयं ही फट जाता है। यदि अर्बुद के लक्षण फैलने वाले हों तो उस में अस्त्र प्रयोग नहीं करना चाहिये। चिरकाल तक थोड़ी मात्रा में लायकर पोटाश, की व्यवस्था की जा सकती है। डाक्टर ओस्ल सेम कहते हैं कि इस औषधि के प्रयोग से बड़े २ अर्बुद छोटे होते हुये देखा हैं।

उपास्थिमय अर्बुद Enchondromata

इस प्रकार के अर्बुद को कार्टिलेजिनस अर्थात उपास्थिमय अर्बुद कहते हैं। इस का कारण यह है, कि ये अधिक तर उपास्थि से परिपूर्ण रहते हैं, ये निर्दोष और धीरे २ बढ़ते हैं। एक बार उन्मूलित कर देने से फिर नहीं होते हैं। ये केवल उपास्थि-यों से संगठित होते हैं। कभी २ छोटे २ उपास्थि पुञ्ज संयोजक तन्तु और रक्त नाली से आबद्ध होकर इन के उपादान का काम करते हैं।

उद्भवस्थान

यह अधिकतर अस्थियों में, विशेष कर अंगुलियों की अस्थियों में पैदा होते हैं। कभी २ अँगूठा और अग्रजंघास्थि के शिर में भी पैदा होते हुए देखे जाते हैं। कभी इस प्रकृति का अर्बुद पैरोटिड ग्लैन्ड (कर्णाग्रवर्ती—ग्रन्थि) और अण्ड कोष में भी देखा जाता है। किन्तु बहुत कम देखा जाता है।

चिकित्सा

तरुणास्थि का अर्बुद अधिक कठिन और बराबर होता है। यह धीरे २ पैदा होता है और इस में पीड़ा नहीं होती है। यह अधिकतर अकेला उत्पन्न होता है केवल हाथ की तीन, चार अंगुलियां साथ २ आक्रान्त देखी जाती हैं। कभी २ यह कोमल भी होता हैं। इस प्रकार का अर्बुद युवा अवस्था में देखा जाता हैं। जहां तक हो सके, इनको काट देना चाहिये।

अस्थि का अर्बुद Osteoma

इस प्रकार का अर्बुद प्रकृति अस्थि से संगठित होता है, अस्थि और तरुणास्थि से भिन्न और किसी कारण से पैदा हुआ नहीं देखा जाता है।

लालार्बुद Myxoma

इसका दूसरा नाम श्लैष्मिक अर्बुद (म्यूकस) है, नाभिरज्जु के उपादान में जो एक प्रकार के तन्तु, कला आदि दिखलाई पड़ते हैं। लालाअर्बुद अधिकतर उन्हीं उपादानों से बना है, विशुद्ध लालार्बुद दोष शून्य होता हैं। इसका आयतन बहुत बड़ा होता है, परन्तु एक बार जड़ से काट देने पर फिर दूसरी बार पैदा नहीं होता है, यह अधिक तर नासिका के अन्दर पैदा होता है, कभी २ अस्थिच्छद (पेरिआष्टियम् और अस्थि की मज्जा (मेड्यूलर) के अन्दर उत्पन्न हुये देखे जाते हैं, यथा सम्भव इसको काट देवें।

Papilloma

देखने में त्वचा की, वा, श्लैष्मिक झिल्ली की पैपिली, के तुल्य होते हैं। ये निर्दोष होते हैं, कहीं २ बड़े २ भी देखे जाते हैं। और केवल त्वचा में और श्लैष्मिक झिल्ली में भी उत्पन्न होते हुये देखे जाते हैं। मुख, ग्रीवा, और वक्षस्थल में कभी २ लिङ्ग में, दोनों हाथों में, स्वरयंत्र, और मूत्राशय की झिल्ली में उत्पन्न होते हैं।

मांसार्बुद Sarcomata

इस प्रकार का अर्बुद अत्यन्त दुष्ट प्रकृतिका है। यह अधिक तर सांघातिक होता हैं. इसके उपादान कोषिक तन्तु हैं, वे सब कोष अनेक प्रकार के हैं, उनके चार प्रधान विभाग किये जा सकते हैं।

(क) गोल कोष विशिष्ट Roundcelled (ख) तकुवा के तुल्य कोष विशिष्ट Spindlecelled (ग) महा कोष विशिष्टGiantcelled अथवा मज्जा कोष विशिष्ट (मये लाइड) (घ) मिश्र कोष विशिष्ट Mixedcelled ये चार प्रकार लिखे गये हैं।

गोलकोष विशिष्ट मांसार्बुद Roundcelled sarcoma

गोलकोष विशिष्ट मांसार्बुद (सार्कोमा) जल्दी बढ़ते हैं। और दुष्ट होते हैं। फिर इनका आयतन बढ़ जाता है, और बहुत जल्दी शरीर के अन्दर के यन्त्रों से शरीर के भिन्न २ अंशों में फैल जाते हैं, ये अस्थि, अस्थिच्छद त्वचा व त्वचा के नीचे के स्थान में और अण्ड कोष में पैदा हो जाते हैं। ये यौवन काल में और मध्य जीवन के

प्रारम्भ काल में दिखाई देते हैं, ये जिस भांति जल्दी बढ़ते है, उसी भांति उनसे चारों तरफ के विधान तन्तु जल्दी में आक्रान्त हो सकते हैं। उनके ऊपर की शिरायें बड़े २ आयतन को धारण करता है, और त्वचा में दाह, वा, शोथ हो जाता है, अन्त में वह फट जाती है।

और उसके बीच में एक गड्डा दिखलाई देने लगता है, रोगी का स्वास्थ्य खराब हो जाता है, । बल कम हो जाता है. शरीर का वर्ण बदल जाता है, और अर्बुद शरीर के अन्दर के जिन यंत्रों में फैलता है. उनका साफ २ ज्ञान हो जाता है' कोई सन्देह नहीं रहता है। ऐसी हालत में शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

अर्बुद को जड़ से काट देना ही एक मात्र सफल चिकित्सा है' हाथ' पैर के प्रान्त भाग में यदि अर्बुद होवे तो उसके ऊपर का अङ्गच्छेद करना आवश्यक है' शरीर काण्ड के किसी भाग में पैदा होवे, तो उस अर्बुद को काट कर अलग कर देवे।

इसमें ऐसा चीरा लगावे' कि अर्बुद के चारो भाग कट जावें,।

तकुवाके तुल्य कोष विशिष्ट मांसार्बुद (Spindlecelledsarcoma) विभाग, और, प्रकृति इस प्रकार के मांसार्बुद (सार्कोमा) अधिक देखे जाते हैं। इनका कोष समूह तकुवा के तुल्य होता है' उनके मध्य में बहुत से छोटे २ और बहुत से बड़े २ कोष होते हैं।

जिनके कोष छोटे होते हैं वे इतनी जल्दी अन्दर के यंत्रों में सम्मिलित नहीं होते हैं इस लिये उनसे अधिक विकृत प्रकृति नहीं होती है ये उन्मूलित होने पर भी अधिकतर और पैदा हो जाते हैं। अतः इनको पौनः पुनिक उपद्रव कहते हैं। ये अस्थिच्छद कला (Feascia) और नीचे के विधानों में पैदा होते हैं।

जिनके कोष बड़े २ होते हैं' उनके उपादान बहुत कोमल होते हैं। और वे बहुत जल्दी फैल कर बढ़ जाते है' यहांतक कि शरीर के अन्दर में अधिक दिखलाई देते हैं' अतः ये बड़े भयंकर होते' हैं। ऐसे अर्बुद अधिक तर वक्ष'स्थल' वा अस्थिच्छद और शरीर के अन्दर में उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा

दोनों प्रकार के अर्बुदों की चिकित्सा भारी होती है' छोटे कोष वाले अर्बुद को उन्मूलन करना आवश्यक है' बड़े कोष वाले अर्बुदों पर' कोलिस्प्लुइड़ 'Colyspluip

नाम वाले तरल पदार्थों का प्रक्षेप करने से उन का आयतन कम हो जाता है, किन्तु यह चिकित्सा अत्यन्त सांघातिक है,

महाकोष विशिष्ट मांसार्बुद (Giantcelled sarcoma)

प्रकृति —इसका दूसरा नाम मज्जा कोष विशिष्ट सार्कोमा है, ये सदा अस्थि के सम्पर्क में उत्पन्न होते हैं सब प्रकार के मांसार्बुदों के मध्य में इसकी प्रकृति अल्प दूषित होती है, कोई कहते हैं, ये एक बार में दुष्ट प्रकृति वाले नहीं होते हैं, अस्थि के लाल मज्जा में भी ये दिखलाई पड़ते है, लम्बी अस्थियों के प्रान्त में और अन्दर में, विशेष कर उसके नीचे भाग में और अग्र जंघास्थि हनु आदि में उत्पन्न होते है,

चिकित्सा

नीचे की हनु अस्थि, वा, अग्रजंघास्थि, आदि में छोटे आकार के होवें। तो अन्य स्थान में सुविधा होने पर उन्मूलित किये जा सकते हैं, अन्य स्थान में अङ्गच्छेद करना आवश्यक होता है, (घ)

(घ) मिश्रकोषका विशिष्ट मांसार्बुद

मिश्र प्रकृति वाले मांसार्बुदों में तकुवे के तुल्य कोष, वा, गोलाकार कोष, ये दोनों प्रकार के देखे जाते हैं इसलिये दोनों प्रकार के मांसार्बुदों में एक प्रकृति और आकृति धारण करते है, अणुवीक्षण यंत्र के बिना ठीक २ निश्चय नहीं होता है।

सद्योव्रण Wounds (वोन्डस)

निरुक्ति—सामान्य आघात वा अस्त्रों के आघात सेव अभिघात आदि कारणों से जो शरीर में नवीन व्रण अर्थात आघात के चिह्न उत्पन्न होते हैं। उस समुदाय को अंग्रेजी में वान्डस (सद्योव्रण) कहते हैं। और सब सद्योव्रण दो भागों में विभाग किये जा सकते हैं। जैसे गम्भीर वा उन्मुक्त (Open) और अगम्भीर (Subcutaneous) किसी २ का सिद्धान्त हैं कि अस्त्र शस्त्र के आघात से अथवा किसी और कारण से शरीर की पेशा त्वचा आदि कलाओं का जो भङ्ग और विच्छेद हो जाता है, उसको सद्योव्रण कहते हैं।

प्रकार भेद

उन्मुक्त सब सद्योव्रण पाँच विभागों में विभक्त किये जाते हैं जैसेः—

छिन्न सद्योव्रण (Incised इनसाइज्ड) वोन्ड

पिच्चित छिन्न सद्योव्रण (Lacerated लैसरेटेड वोंड

घृष्ट सद्योव्रण (Contused कान्ट्यूज्ड) वोन्ड
विद्ध सद्योव्रण (Punctured पन्कचार्ड) वोन्ड
विषाक्त सद्योव्रण (Poisoned पाइजंड) वोन्ड

भिन्न व्रण

जिस सम्पूर्ण व्रण का मुख बराबर भाग में छेदित होवे उस समुदाय को भिन्न सद्योव्रण कहते हैं। तीक्ष्ण शस्त्र शस्त्र के लगने से इस प्रकार का व्रण पैदा होता है। शस्त्र चिकित्सकों के अस्त्रोपचार में इस प्रकार का व्रण उत्पन्न होते हुये देखा जाता है। इस प्रकार के व्रण में अधिक रक्त निकलने की सम्भावना है।

छिन्न सद्योव्रण Lacerated

तन्तु आदि सब विधान अकस्मात से छिन्न हो जावें। तो उस से जो व्रण पैदा होता है। उस का नाम छिन्न सद्यो व्रण है। रेल कारखाना आदि में दुर्घटना होने से इस प्रकार का व्रण होता है अथवा जन्तुओं के काट खाने से अथवा विदारण होने से इस प्रकार का व्रण होता है। छिन्न व्रण से कम मात्रा में रक्त स्राव होता है। कारण इस का यह है। कि सब रक्त नालियां भिन्न न हो कर छिन्न हो जाती हैं। अर्थात छील जाती हैं। उन रक्त नालियों का छिन्न अंश सिकुड़ जाने से रक्त स्राव नहीं होता है। अधिक मवाद का पैदा हो जाना, धनुष्टंकार, मलाक्त रक्त सेप्टिमिया, विसर्प, विस्तृत क्षत विशेष (Scorring) इन की इस प्रकार के व्रण से पैदा होने की सम्भावना है।

घृष्ट सद्यो व्रण Contused

व्रण के प्रान्त भाग के और ऊपर भाग के तन्तु आदि सब विधान अच्छी तरह पिस जावे, वा कुचल जावे तो उस व्रण को पिच्चित व्रण कहते हैं। लाठी, मुगदर आदि मोटे २ अस्त्र वा यन्त्रादि से इस प्रकार का व्रण होता है, पिच्चित सद्योव्रण के कुचले कहुवे तन्तुला आदि के अन्दर से अधिक रक्त निकलता है, और उस से विस्तृत शोथ, पूय की उत्पत्ति, सड़ना, विसर्प, अथवा विसर्पण शील दाह, (सेल्यूलाइटिस) वा धनुष टंकार, आदि हो सकते है, अन्त में क्षत का शेष भाग शिथिल हो जाता है, व्रण के ऊपरी भागसे सब पूतिमांसहटा देने से समय २ पर उसके द्वितीयक रक्त स्राव होता है।

चिकित्सा

पिच्चित और छिन्न व्रण की चिकित्सा में सदा व्रण को धोकर साफ रक्खे। और

जेसे उनका दूषित रक्त पूय आदि अच्छी तरह निकल सके ऐसा उपाय करना चाहिये। त्वचा' वा तन्तु, कला आदि का जितना मरा हुआ भाग मालूम होवे। उसको काट कर अलग कर देना चाहिये मुख में और मस्तक में इस प्रकार का आघात लगाने से, त्वचा' तन्तु' कला आदि की रक्षा करनी चाहिये। ये दोनों प्रकार के सद्योव्रणों को विशेष कर छिन्न व्रण को सीं देना चाहिये। सीने की सुविधा होने पर उस व्रण के अन्दर' आइडोफार्म' भर कर बांध देना चाहिये।

विद्ध सद्योव्रणः Punctured

जिस व्रण की चौड़ाई की अपेक्षा गहराई अधिक होवे तो उसको विद्ध व्रण कहते हैं। बन्दूक की गोली' भाला छुरी' संङ्गीन आदि तेज नोक वाले' अस्त्र शस्त्रों से' से इस प्रकार का व्रण होता है' इसके रक्तस्राव वक्षोगह्वर' उदर गुदा आदि मुख्य २ आशय' वा सन्धियों का वेधन हो जाता है' बड़ी २ रक्त की नालियों में' और स्नायुवों में आघात लग जाता है और अधिक परिमाण में उनमें पूय पैदा होने की सम्भावना रहती है' ऐसे व्रण को कार्बोलिक लोशन' से धावे। इसका मुख बाध कर इकट्ठा रखना चाहिये' सूरियास्ल मिश्रित रूई (कलोडियन) अथवा बत्ती से बाहर का मुख बन्द रक्खै। अन्यथा व्रण के भीतर पाक से बचाने वाली बत्ती' अथवा इसके बाहिर मुख में एक रबड़ की नली रक्खे। जिससे वह भर न जावे' इसका ध्यान रक्खै। किसी धमनी के कट जाने पर यदि अधिक रक्त निकले और वह दबाव देने से अथवा कोई बड़ा स्नायु कट जावे तो इस से इसकी चिकित्सा स्वतन्त्र करै। अतः धमनी' शिरा' स्नायु आदि की चिकित्सा के वर्णन करने पर ऐसे व्रण की चिकित्सा लिखी जायगी।

विषाक्त सद्योव्रण Poisoned

पाइमिया (मलाक्त रक्त) सेप्टी सिमिया (विषाक्त रक्त) विसर्प' प्लेग (ग्रन्थिक ज्वर) आदि सांघातिक रोगों से मरे हुये रोगियों के—शव की परीक्षा (पोष्टमर्टम) अथवा व्यवच्छेद, करने के समय, इन सब रोगों का विष संक्रामित होने पर विषाक्त सद्यो व्रण पैदा हो जाता है। मृत देह जितना ताजा होगा विष की तीक्ष्णता उतनी अधिक होगी, अधिकांश स्थल में विष की मृदुता और और प्रखरता, व्यवच्छेदक के स्वास्थ्य के ऊपर निर्भर है। यदि बलवान् हृष्ट पुष्ट, व्यवच्छेदक है तो प्रखर विष का भी प्रभाव उसके ऊपर नहीं पड़ता है और शव परीक्षा वा शव व्यवच्छेद करने में जो अति चतुर हैं तो उस पर भी प्रखर विष का सहसा कोई प्रभाव

नहीं पड़ता है। शव के व्यवच्छेद करने पर अथवा शव परीक्षा करने एक प्रकार का विष फैलता है। उस से एक प्रकार का संयोग होता है। जिस का नाम डिसेक्शन और पोष्टमर्टेमवान्ड (शव परीक्षा जन्य व्रण) कहा जाता है।

स्थानिक लक्षण

(क) विष के आधान स्थान में एक फुंसी (पैश्चूल) दिखलाई पड़ती हैं, बादको वह फट जाती है। उसकी पपड़ी के नीचे लाल घाव छिपा रहता हैं, चिकित्सा करने पर भी वह घाव कई महीने तक बना रहता हैं।

(ख) छीलने से अथवा काटने से वह स्थान फूल जाता हैं। कभी २ लसीका की गहरी नालियां भी आक्रान्त हो जाती हैं, बगल की ग्रन्थियाँ बढ़कर फूल जाती हैं, उनमें पीड़ा भी होती हैं, इसके साथ साथ सब अङ्गों के कार्य में बाधा पैदा हो जाती हैं। और इसके पहिले बहुत वेग से शरीर कांपने लगता है। अधिकतर विषके आधान स्थान में पूय पड़ जाता है, उसके साथ साथ ही कक्षा (बगल) की ग्रन्थियाँ पक कर पूय से युक्त हो जाती हैं भावीफल अधिकतर खराब होता है।

(ग) पहिले के सब लक्षण कहीं पर नहीं होते हैं, कहीं पर होते हैं, और कहीं उससे भी उत्कट भयंकर लक्षण होते हैं। प्रथम अवस्था में अधिक कम्प होता है। बाद को आंत्रिक ज्वर (टाइफाइड) के लक्षण प्रकाशित हो जाते हैं, बगल की ग्रंथियों में चिरकाल रहने वाले पूय की उत्पत्ति हो जाती है, और वह धीरे धीरे ग्रीवा अथवा वक्षः स्थल के पार्श्व तक फैल जाता है। भावीफल बहुत खराब होता है. एक सप्ताह से लेकर तीन सप्ताह के मध्य में रोगी की मृत्यु हो जाती है। वह कभी अति कष्ट भोगकर बच भी जाता है। किन्तु उसका स्वास्थ्य सदा के लिये खराब हो जाता हैं।

(घ) आधान स्थान में फैलने वाली प्रकृति का कोषमय वा कोष और त्वचा, दोनों से युक्त विसर्प प्रकाशित हो जाता है। और आक्रान्त अङ्ग प्रत्यङ्गों के सब स्थान में वह जल्दी फैल जाता है, उसमें गलित क्षत (गैंग्रिन) होकर मृत्यु भी हो जाती है। इस प्रकार के आक्रमण में अधिक तर बगल की ग्रन्थियां आक्रान्त नहीं होती हैं। (ङ) इस सम्पूर्ण स्थानिक पूय की उत्पत्ति के साथ शरीर के सब अङ्गों में पूय की उत्पत्ति होती हैं, और कभी शरीर के अनेक स्थानों में फोड़े भी पैदा हो जाते हैं।

विषाक्त अस्त्र

विषाक्त तलवार, छुरिका वाण, आदि अस्त्रों से शरीरका कोई स्थल आहत होजावे तो पहिले के सब लक्षण प्रकाशित होते हैं ऐसा संयोग अधिकतर सांघातिक होता है।

चिकित्सा

पहिले उस स्थान को काट देना चाहिये। और काटे हुये स्थान से रक्त को नि-काल देवे। बाद को शीतल जल से उसको धो देना चाहिये। क्षत स्थान से रक्त को बा-हर निकाल देवै जिससे विष शरीर में प्रविष्ट न हो सके। इस लिये उस क्षत के ऊपर बन्धन बांध देना चाहिये। मुर्दा ताजा होवे और किसी संक्रामक रोग से मरा हुआ होवे तो क्षत को तेज कार्वोलिक वा, करोसिव सबलिमेन्ट लोशन से धो देना चाहिये। किसी किसी का मत हैं। कि अविमिश्रित कार्वोलिक एसिड काष्टिक, पोटाश अथवा नाइट्रेट आफ सिलवर से क्षत को जला देवे, बन्धन बांधने के बाद विष किसी प्रकार से न फैल सके। ऐसा उपाय करना चाहिये। उस स्थल में चर्म कील अथवा व्रण हो जावे। तो उसको नाइटेट्र आफ सिलवर एसिड नाइटेट्र आफ मर्करी अथवा अन्य किसी काष्टिक से जला देवे। बल कारक औषधि और वायु परिवर्तन से रोगी के स्वास्थ्य की उन्नति करनी चाहिये। संक्रामक प्रदाह दिखलाई देवे तो उस सद्योव्रण को अच्छी तरह से चीर देना चाहिये। बगल अथवा अन्य किसी स्थान में फोड़ा हो जावे। तो उसको कच्चा ही काट देना चाहिये फोड़ा में पूय उत्पन्न होनेके पहिले ही उसको काट देना चाहिये। उसके साथ विरेचक प्रयोग से रोगी के कोष्ठ की शुद्धि करे। और पुष्टि कर आहार, वा उत्तेजक औषधियों से वल की रक्षा करे। यदि फैलने वाले गैंग्रिन दिखलाई देवै तो उसी समय उसके ऊपर अङ्गच्छेद कर देना चाहिये।

ऊर्ध्व त्वग्गत सद्योव्रण Subcutaneouswounds

निर्वाचन—संयोजक तन्तु अस्थि, पेशी, रज्जु अथवा अन्य किसी शरीर के वि-धान में सद्योव्रण पैदा हो जावै, और त्वचा वा श्लैष्मिक झिल्ली अक्षुण्ण रहें, तो वह ऊर्ध्वत्वग्गत (सबक्यूटेनियस) नाम से कहा जा सकता है। ये सब व्रण पूय के उ-त्पत्ति के बिना ही संयोजक प्रदाह से शान्त हो जाते हैं। आहृत अँश को ढकने वाली श्लैष्मिक झिल्ली वा त्वचा अनाहत रहती है, इसलिये पूय उत्पन्न होने नहीं पाताहै, उसके साथ ज्वर आदि किसी विकार के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते हैं।

पिच्चित व्रण Conltusionsor bruises

निर्वाचन और प्रभेद—शरीर का कोई अंग चिर जावै। अथवा छिल जावै अथवा मोच खा जावै, वा कुचल जावै तो त्वचा के नीचे के भाग में जो निष्पिष्ट,विपष्टवा विदीर्ण विच्छिन्न, भाव उत्पन्न होता है। उस को पिच्चित व्रण कहते हैं इस विदीर्ण, वा विच्छिन्न

भाव के साथ कैशिक नाली और छोटी २ सत्र रक्त की नालियां छिल जावें तो उस पिच्चित व्रण से रक्त स्राव होने लगता है। पिच्चित व्रण सामान्य प्रकृति का होने से उस को ब्रूज़ कहते हैं। यदि यह कठोर प्रकृति को धारण कर लेवे। तो ऊपर की त्वचा फूल कर काली हो जाती हैं। अचानक उस को देखने पर गैंग्रिन, का ज्ञान होता हैं। परन्तु वास्तविक में वह गैंग्रिन नहीं होता हैं। गैंग्रिन होने से उस आहत स्थान की ताप अत्यन्त कम हो जाता है और स्पर्श शक्ति भी नष्ट हो जाती है। इसलिये पिच्चित व्रण अत्यन्त कठोर वा, विस्तृत यदि हो जावे और तीव्र आघात लगने से तन्तु, कला आदि जीवनी शक्ति नष्ट हो जावं तो अनेक स्थानों प्रकृत गैंग्रिन उत्पन्न हो सकते हैं। अन्यथा प्रदाह, वा शोथ होकर उस के मध्य में पूय पैदा हो जाता है आहत स्थान अधिक परिमाण में शोणित स्राव होने पर वह स्थान अर्बुद के समान ऊँचा हो जाता हैं।

उस को दबाने से उस के मध्य में तरङ्ग का अनुभव मालूम होता है इस रूप के रक्तार्बुद को (हिमाटोमा) कहते हैं पेशी, स्नायु, आशार, अस्थि आदि का पिच्चित व्रण यथा स्थान में वर्णन किये जावेंगे।

चिकित्सा

आहत स्थान को विश्राम देना चाहिये और किसी स्प्रिट लोशन का उस में प्रयोग करे इस के सिवाय और कुछ आवश्यक नहीं हैं। रक्तार्बुद उत्पन्न होने से उस को काटना उचित नहीं है कारण यह है। कि उस के मध्य में रहने वाला रक्त शरीर में शुद्ध होकर आता है। अतः इसके उन्मुक्त करने का प्रयोजन नहीं हैं। यदि यह चीर दिया जावेगा तो उस के विदीर्ण पथ से वायु प्रविष्ट होकर पीव पैदा हो जाती हैं। रक्तार्बुद अधिक बड़ा होने से, उस के मध्य का शोणित निकालने के लिये स्प्रिट का प्रयोग कम नहीं हैं। अर्बुद के मध्य में पीव पड़ जाने से उस को काट कर उस के मध्य का रक्त निकाल देना चाहिये और उस के अन्दर आइडोफार्म की बत्ती भर देवे, इस से अच्छा हो जाता है।

दग्ध और स्कान्दित व्रण (Burnsand scalds)

प्रकृति–दाह और स्कन्दन अर्थात् झुलसने की गम्भीरता व्याप्ति वा स्थिति स्थान दग्ध रोगी के आयु पर व्रण की प्रकृति निर्भर रहती हैं। हाथ पैरों के अत्यंत गम्भीर दग्ध की अपेक्षा शरीर काण्ड मस्तक वा मुख के (विशेषकर बालकों के) अगम्भीर वा फैले ये दग्ध व्रण अधिक दुखदायी होते हैं।

प्रकार भेद

दग्ध दो प्रकार का होता है। एक अग्नि दग्ध, दूसरा स्नेह दग्ध। संतप्त तेल घी आदि स्नेह द्रव्य अथवा गली हुई धातुओं से दग्ध हो जावे, तो उस को स्नेह दग्ध कहते हैं। ऐसे दग्ध को इस स्थान में स्कन्दित व्रण (वा पत्तुप्र) Scolds कहते हैं संतप्त जल, दूध, अथवा फेनादि से दग्ध होने पर वह मृदु प्रकृति को धारण करता है। क्योंकि वे सब स्नेह द्रव्य जल्दी ही शीतल हो जाते हैं, किन्तु अत्यन्त गरम गली हुई धातु, तेल, घी, रस, आदि पिच्छिल, स्नेह आदि से दग्ध होने पर वे सब स्नेह द्रव्य रूप से संलग्न होकर बड़े भयकर व्रण को पैदा कर देते हैं। सुप्रसिद्ध निदान तत्व वेत्ता डुपुइट्रन, दग्ध व्रण को छः विभागों में विभक्त किया है।

(१) हीन दग्ध (Simple Erythema सिम्पल इराइथेमा)

इस प्रकार के दग्ध में फैली हुई सब रक्त नालियों से अधिक परिमाण में रक्त निकलने से कोई तन्तु नष्ट नहीं होता है, और किसी प्रकार का दाग भी नहीं होता है,

(२) प्लुष्ट दग्ध Vesication वेसिकेशन) इसमें सामान्य फफोला पड़ जाता है, परन्तु कोई दाग नहीं रहता है.

(३) दुर्दग्ध—इसमें ऊपरकी त्वचा और प्रकृति त्वचा का कुछ अंश नष्ट हो जाता है. इसमें सबसे अधिक पीड़ा होता है, इसका कारण यह है, कि इसमें छोटा २ स्नायुओं के सब प्रान्त आक्रान्त हो जाते है।

(४)अति दग्ध—इसमें सब त्वचा नष्ट हो जाती हैं। ऐसे दग्ध में सब स्नायुओं का प्रान्त नष्ट हो जाता हैं। तीसरे क्रम की अपेक्षा इस क्रममें कम पीड़ा होता है, किन्तु इसमें दग्ध स्थान सिकुड़ जाता है, और अङ्ग प्रत्यङ्ग बहुत विकृत हो जाते हैं,

(५) महादग्ध— इसमें तन्तु कला— आदि नष्ट हो जाते हैं। और सब पेशियां आक्रान्त हो जाती हैं, इसमें भयङ्कर क्षत के चिह्न, और अङ्ग विकृत हो जाते हैं।

(६) सम्यग्दग्ध—इसमें सब प्रत्यङ्ग जल कर नष्ट नहीं होता है,

साधारण फल

दग्ध की प्रकृति सामान्य होवे। अर्थात थोड़ा आयतन होवे। और बाहर होवै। किसी प्रकार से सब अङ्गों में फैलने वाले लक्षणों के प्रकाशित होने की सम्भावना न होवे। तो दग्ध गम्भीर होने से केवल प्रत्यङ्गों के प्रान्त देशों में रुक जाने पर सब लक्षण साधारणरीति से दिखलाई पड़ते हैं।

किन्तु जिस समय दग्ध का आयतन फैल जाता है, विशेष कर जिस समय यह उदर वक्षः स्थल, मस्तक, अथवा ग्रीवा, को, ग्रास करता है, और रोगी बालक होने पर सब लक्षण कठिन प्रकृति का धारण करते हैं दग्ध क्षत मे जो सब अङ्गों मे लक्षण प्रकाशित होते हैं, उनको तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) संक्षोभ, वा, रक्त का अधिकता Shock andcongestion (२) प्रतिक्रिया और प्रदाह, व शोथ, Reaction and inplammation (३) पूयाद्भव और अवसन्नता (Suppuration andexhaustion) इन तीन प्रकार के लक्षणों को दग्ध के तीन नामों से कहते हैं।

संक्षोभ और रक्ताधिक्य

संक्षोभ अधिक भारी होने से विशेष कर दग्ध का आयतन फैल जाता है। और देह काण्ड, व ग्रीवा वा मस्तक, आक्रान्त होने से रोगी मलीन हो जाता है, और कांपने लगता है, अधिक दुबला हो जाता है। हाथ पैर ठंड हो जाते हैं, परन्तु उसको सामान्य कष्ट होता है, अथवा आदि में कोई कष्ट होता ही नहीं है, जब रोगी को स्तैमित्य Coma आक्रमण करता है, तब उस अवस्था में मृत्यु हो जाती है, मरने के बाद परीक्षा करने से उसके अंदर के यंत्रों में विशेष कर मस्तिष्क में रक्ताधिक्य देखा जाता है।

प्रतिक्रिया और प्रदाह

दग्ध होने के बाद २४ घंटा से लेकर ४८ घंटा,के मध्य में प्रतिक्रिया आरंभ होती है,। पूर्ण वल से जोरा २ नाड़ी चलती हैं।

शरीर का ताप बढ़ जाता है और ज्वर के सामान्य लक्षण दिखलाई देने लगते हैं, और दग्ध स्थान के चारों ओर प्रदाह होने लगता है, सब पूति मांस सड़ कर पूति पदार्थ शरीर में प्रविष्ट होने की सम्भावना है, प्रथम क्रम में अंदर के यंत्रों में जो रक्ताधिक्य हो जाता था, वह प्रदाह में परिणत हो जाता है, उससे, पार्श्व शूल की द्वितीया अवस्था (प्लूरिसी) औदर्य कला प्रदाह (पेरिटोनाइटिस) श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) शिरोच रोग,कला प्रदाह(मेनिञ्जाइटिस) ये रोग होकर मृत्यु होने की सम्भावना है,

पूयोद्भव, अवसादादि

तृतीय क्रम में रोगी के अंदर के यंत्रों में विशेष कर फुप्फुस, वा हृदय में प्रदाह होने से अधिक तर आपत्ति होने की सम्भावना है, अथवा मेदोगत ज्वर (हेक्टिक ज्वर अथवा दीर्घ काल व्यापी पूयोद्गम से आक्रान्त होकर रोगी इस लोक से चल बसता है, पूति पदार्थ के शरीर में प्रविष्ट हो जाने से रक्त बिषैला हो जाने की अधिक सम्भावना

रहती हैं' यदि रोगी भाग्य से अच्छा हो जावे' तो उसके शरीर में कठोर व्रण पैदा हो जाते हैं' जिससे उत्कट अङ्ग विकृत हो जाते हैं ।

स्थानिक चिकित्सा

दग्ध की दो प्रकारकी चिकित्सा होतीहै' एक स्थानिक Local दूसरी' सार्वाङ्गिक Constitutional चिकित्सा होती है' उन दोनों के मध्य में स्थानिक चिकित्सा का पहिले वर्णन किया जाता है सावधानता से पहिले शरीर के सब कपड़ों को खोल देना चाहिये जिससे जली हुई त्वचा आदि किसी रूप में फूलने न पावे' पहिले और दूसरे क्रम के दग्ध में अथवा दग्ध के अंश में पचन निवारक वैसलीन लगाना चाहिये । अथवा, बोरिक ऐसिड का चूर्ण डाले । उसके ऊपर रुई का फोहा रक्खे । फोला पड़ जाने पर उसका विस्तार Fension बंद करने के लिये उसमें एक छेद कर देवै । और अंदर का सीरम रक्त रस निकाल देवै फफोले का आवरण अंदर के व्रण की रक्षा करता है, । इस लिये उसकोछील कर।अलग नहीं करना चाहिये इस समय अनेक चिकित्सक पाइरिक एसिड में रुई का फोहा भिगोकर व्रण के ऊपर रखने के लिये कहते हैं ।

तृतीय क्रम के दग्ध में पूतिमास (श्लफ) को अलग करके प्रारम्भ में ही पचन निवारक बन्धनों से उन सब व्रणों को बांध देना चाहिये । इसके पहिले उनके ऊपर फलालैन का फोहा रखे।

बाद व्रण के ऊपर आइडोफार्म डालना चाहिये अथवा यूक्लिप्टस तेल, वा बोरिकलोशन अथवा इन्हीं के तुल्य और कोई पचन निवारक औषधिका प्रयोग करे। कार्बोलिक एसिड उग्रता साधक नहीं है । यदि व्रण का आयतन विस्तृत हो जाने पर इस तेल का प्रयोग किया गया है । तो वह तेल उसके अंदर प्रविष्ट हो जाता है । उस अवस्था में अनेक विपत्तियों के होने की सम्भावना है इसलिये कार्बोलिक तेल लगाना ही नहीं चाहिये, चतुर्थ और पञ्चम क्रमकी चिकित्सा तृतीय क्रमके अनुकूल ही करना चहिये।

षष्ट क्रम में अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) करना चाहिये ।

सर्वाङ्गीण चिकित्सा

अत्यंत भारी संक्षोभ (शाक) होने से नाड़ी की हालत देख कर सुरासार वा एमोनिया आदि उत्तेजक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये । कम्बल, रजाई आदि गरम वस्त्रों से उसको ढका रक्खे । पैर के तलवों में गरम जल भर कर बोतल में उससे सेक देव । और उसके गात्रों को [illegible] बांधें [illegible] बाहु को [illegible] ओर [illegible]

उसको बचावे। अधिक पीड़ा होने पर अफीम का प्रयोग करे रोगी बालक होने से उसकी पीड़ा को दूर करने के लिये वैद्य एक बाल्टी जल में बोरोसिक एसिड अथवा यूक्लिप्टस तेल डाल कर, उसमें दग्ध व्रण से पीड़ित बालक को बैठा देवे। रोगी को पुष्टि कर तरल आहार देना चाहिये। अधिक प्रदाह में ज्वर हो जाता है और अधिक अवसाद से युक्त रोगी हो जाता है। इसलिये रोगी की शक्ति की रक्षा करनी चाहिये।

वज्रपात और तड़ित संक्षोभ

Lightning Stroke and Eiectricshock

प्रकृति-शरीर पर वज्राग्नि (बिजली) के गिर पड़ने से उसी समय मृत्यु होने की सम्भावना है। कभी २ रोगी कुछ काल के लिये बेहोश हो जाता है। किंतु उससे उसकी कोई विशेष क्षति नहीं होती है। क्यों कि जल्दी ही संज्ञा वाला वह हो जाता है। किसी २ स्थल में रोगी के अङ्ग में गम्भीर अथवा अगम्भीर व्रण दिखलाई देने लगते हैं। किसी स्थान में आंख कान की बहुत सी स्नायु अचेतन हो जाती हैं। कुछ काल से तड़ित के तार के अधिक प्रचार हो जाने से अनेक व्यापत्तियां उस के संस्पर्श से हो जाती हुई दिखलाई पड़ती हैं। इन्हीं सब घटनाओं से कभी मृत्यु वा कभी कभी मूर्च्छा देखी जाती है। मूर्च्छा कृत्रिम श्वास विधान के उपाय से शांति हो जाती है।

चिकित्सा

रोगी मूर्च्छित हो जावे, तोउसके सब अङ्गों में उत्ताप का प्रयोग करे। कृत्रिम श्वासोत्पादन, वा उत्तेजक औषधि का प्रयोग करे। प्रति मिनिट रोगी की जिह्वा को पन्द्रह से बीस मिनिट तक धीरे धीरे आकर्षण और विकर्षण करे। इससे श्वासरोध का प्रतिकार हो सकता है।

स्नायु समूह यदि अवश हो जावे। तो, गैलवोनिक के तरङ्ग के प्रयोग से वह शांत हो सकता है। वज्राघात से रोगी के देह में दग्ध व्रण पैदा हो जावे तो दग्ध व्रण की चिकित्सा के तुल्य उस की चिकित्सा करनी चाहिये। श्वांस रोध का प्रतिकार करने के लिये कृत्रिम उपाय से श्वांस का पैदा करना अत्यावश्यकीय है। इस के बाद यदि उसका श्वांस फिर रुक जावे तो उसके सब शरीर का रक्त संचालन अच्छी तरह से होवे और शरीर के ताप को रक्षा होवे। ऐसा उपाय करना चाहिये। इस सम्बन्ध में तीन नियमों का पालना आवश्यकीय है।

१-प्रथम नियम—रोगी के शरीर का संस्थान-एक साफ, और बराबर स्थान के ऊपर रोगी को चित करके लिटावे और उस के कंधों के नीचे एक तकिया रक्खे।

अथवा और कोई कपड़ा लपेट कर तकिया के तुल्य ही रक्खे उस के साथ २ माथा को ऊंचा करके रक्खे, ग्रीवा, और वक्षः स्थल के सब बन्धनों को खोल देवे रोगी के पास में अधिक मनुष्यों की भीड़ न रहे इसलिये किसी घर के मध्य में रखना चाहिये। भीड़ इकट्ठी न होने पावे। इस विषय में विशेष ध्यान रखना चाहिये।

२-द्वितीय नियम—श्वास वायु की अबाधगति—

फिर धीरे २ दृढ़ भाव से बदल बदल कर करें, ऐसा करने पर रोगी निश्वास निकालने के लिये अपने से ही चेष्टा करता है।

(४) चतुर्थ नियम-इस प्रक्रिया के समय रोगी के नासा रन्ध्र को नस्य, अथवा, गन्ध, लवणसे उत्तेजित रखना चाहिये और उसके गलेके भीतरमें एक पतली नली सेश्वर निकलने के तुल्य शुग, शुर, शक होता है। उसका मुख वा वक्ष स्थल अधिकता से रगड़ना चाहिये। औरबदल २ कर उसके ऊपर शीतल और गरम जल, डालना चाहिये। इसी समय उसके हाथ पैरों में शुष्क फलालेन अथवा अन्य कोई उष्ण वस्त्र रगड़ना चाहिये उपयुक्त वैद्य उस समय न मिले। तो उसी समय इस उपाय से रोगी के श्वास के उत्पादन करने के लिये चेष्टा करना चाहिये वैद्य के आने पर उसके ऊपर सब कार्य का भार छोड़ देवें। वैद्य न आवे तो स्वयं ही यह काय करें इस रूप के कृत्रिम उपाय से रोगी का श्वास प्रश्वास, स्वाभाविक रूप से चलने लगता है। उसके रक्त सञ्चालन, और शरीर के ताप, पर दृष्टि रखना चाहिये।

शोणित सञ्चालन और ताप रक्षा

रोगी को कम्बल से आच्छादित कर देवें। और उसके हाथ पैरों को ऊपर की तरफ को मर्दन करे, गरम फलालैन, गरम पानी की बोतल अथवा चमड़े की थैली वा खूब गरम ईंट उदर के नीचे वा बगल वा पैरों की तलवों के नीचे रक्खे रोगी को गले से निगलने की सामर्थ्य को देख एक चम्मच उष्ण जल थोड़ी मात्रा में सुरा उष्ण चाय अथवा काफी देना चाहिये। रोगी को चार पाई पर लिटा देना चाहिये। और जैसे उसको अच्छी तरह नींद आवे. ऐसा करना चाहिये। इस प्रक्रिया में कोई कष्ट होवै। तो उसको जानकर वक्ष स्थल में अथवा कंधों के नीचे सरसों का प्लास्टर करना चाहिये। विलायत की रायल ह्यूमेन सोसायटी नामक समिति से उपरोक्त चार नियम प्रचलित हुये हैं जल में डूबे हुये, और ऊंचे स्थान से गिरे हुये मनुष्यों की श्वास रुक जाने पर इन सब नियमों का पालन करना चाहिये।

शोणित स्राव Hoemorrhage

प्रकार, प्रकृति सद्यो व्रण की चिकित्सा के वर्णन के समय में वर्णन किया गया

हैं। कि सबसे पहिले शोणित स्राव के बन्द करने की चेष्टा करनी चाहिये. धमनी, शिरा केशिकाओं से रक्त निकलता हैं, उनसे जो रक्त निकलता है, उसका नाम क्रमशः धामनिक, शैरिक, कैशिक, पड़जाता हैं, शोणित स्राव की प्रकृति के अनुसार उसके निवारण करने का उपाय अवलम्बन करना चाहिये। इस लिये इन तीन प्रकार के शोणित स्रावों की प्रकृति, और आपस में भेद बतलाना आवश्यक है धामनिक शोणितस्राव में रक्त झरना के तुल्य रुक २ शब्द करता हुआ बाहर निकलता हैं, हृदय के प्रत्येक संकोचन में रक्त की उक्त रूप वाली गति बढ़ी हुई होती है, और धामनिक रक्त देखने में गहरा उज्वल रक्त वर्ण का होता हैं शैरिक रक्त लगातार निकलता रहता है इसका वर्ण, गहरा, बैंजनी, लाल, होता है,।

कैशिक शोणित स्राव में व्रण के सब स्थानों से रक्त निकलने लगता हैं, और निकलते हुए समय में उसका शरीर बह कर अधिक अंश में गिर जाता है, और क्रमशः उसी भाँति इकट्ठा होता रहता है,। स्थान विशेष में धामनिक रक्त गम्भीर व्रण से निकलता है, रक्त रुक २ करके बाहिर न होकर शैरिक रक्त के समान लगातार निकलने लग जाता है, और रोगी की किसी कारण से कुछ परिमाण में श्वास रुक जावै। तो धामनिक रक्त गाढा वर्ण धारण करता हैं। कभी २ शैरिक रक्त किसी एक गहरे व्रण से बाहर होने के समय बाहर की वायु ओषजन (आक्सीजन) के संयोग से धमनी के रक्त के समान उज्वल लाल वर्ण से युक्त हो जाता हैं,

रक्त स्राव की साधारण प्रकृति

रक्त क्षय के परिणाम के ऊपर रोगी की अवस्था सम्पूर्ण रूप से निर्भर हैं, किसी बड़ी धमनी से रक्त अधिक परिणाम में निकलने से रोगी की अवस्था शीघ्र ही संकट से से युक्त हो जाती है, और वह कुछ मिनट के अन्दर ही अधिकतर मर जाता है, इसकी अपेक्षा कम कठोर होने से रोगी का मुख मलीन, सब शरीर ठंढा, पड़ जाता हैं, और सिकुड़ जाता है, ओठ' और श्लैष्मिक झिल्ली जाल प्रभा से हीन हो जाता हैं' नाड़ी क्षीण हो जातीहै अथवा जल्दी चलने लगती है' अथवा' लुप्त प्राय हो जाती है' परिशेष में बड़ी २ धमनिओं से ही ज्ञान होता है' त्वचा पसीने से तर हो जाती है' लम्बी २ श्वास चलने लगती है' दृष्टि मन्द पड़ जाती है' मस्तक को हिलाने लगता है' इन सब लक्षणों से मूर्च्छा हो जाती है' अथवा' आक्षेप व अङ्ग प्रत्यङ्गों का आ कुञ्चन हो जाता है' अथवा मृत्यु भी हो सकती है'।

कभी २ रोगी धीरे अच्छा भी हो जाता है। अथवा शोणिताल्पता अथवा आन्त्रिक विकार से अधिक दिन तक कष्ट भोगता है' रोगी वृद्ध होने से शोणिताल्पता के ऊपर कोई दूसरी पीडा भी प्रकाशित हो सकती है' उससे उसके प्राण नष्ट हो जाते हैं। रक्त क्षय में बालकों की अवस्था बड़ी शोचनीय हो जाती है' किन्तु अनेक स्थानों में अच्छे भी होते हुए देखे जाते हैं'

साधारण चिकित्सा

अधिक रक्त स्राव होने पर ऐसा उपाव करै जिससे रोगी की मृत्यु न होवै। इस लिये उसकी आसन्न मृत्यु से रक्षा करे। और होने वाली विपत्तियों से भी बचावै।

आशुप्रतीकार

जिस भांति एकवारगी मूर्च्छा हो जाने से रोगी न मरै सब से पहिले इसका उद्योग करै इसीउद्देश्य को सिद्धि के लिये जिस भांति उसके मस्तिष्क में शोणित प्रवाहित होवै' ऐसा करना चाहिये। इस लिये रोगी को चित करके लिटाना चाहिये। उसका माथा शरीर की उपेक्षा कुछ नीचा रखना चाहिये' उसका सब शरीर गरम कपड़ों से ढकना चाहिये। और उसके अङ्गों पर पैर के तलवो में जल भरी हुई गरम बोतल रगड़ना चाहिये। नाड़ी की गति ठीक न होवैं ! तो थोड़ी मात्रा में उत्तेजक औषधि का प्रयोग करै।

रोगी में गले से निगलने की शक्ति होवै, तो उसे तरल आहार खिलावै नहीं तो पतला आहार सलान्त्र से, अथवा पिचकारी से त्वचा के नीचे भाग में प्रक्षिप्त करै रोगी की संकटावस्था' में उसके हाथ पैरों को उठाये रखै। और उनमें एस मोर्च का वन्धन बाँधै। और मस्तिष्क में शोणित सञ्चालन करने के लिये उसके उदर की कण्डरा को दबावै ऐसा करनेसे शोणित स्राव बन्दहो जाताहै' उस समय लवणद्रव्य का प्रक्षेप करै शरर ीके किसी अन्दर केयंत्र से शोणित स्रावहोवै तो उत्तेजक औषध नहीं देना चाहिये रोगी यदि मूर्च्छित हो जावे, तो अन्दर के व्रण के मुख पर रक्त जम जाता है ऐसा होने से रक्त स्राव स्वयं ही बन्द होजाता है। किन्तु उत्तेजक औषधि के प्रयोग करने पर उल्टा फल हो जाता है। हृदय का कार्य बढ़ जाता हैं' और शोणित स्रोत का वेग बढ जाता है' इससे रक्त का जमाव खुल जाता हैं। और रक्त तीव्र वेगसे निकलने लगता है। उस मसय रोगी की अवस्था बहुत विपत्ति में पड़ जाती हैं।

भावी प्रतिकार

रोगी को आगे आने वाली विपत्ति से बचाने के लिये' तरल पुष्टि कर आहार अल्प मात्रा में देवै। इसके बाद, अण्डा इसके बाद, मछली' और अन्त में मांस खिलावै। इस के, लोह घटित, औषध देवै। समुद्र यात्रा करावै देहातों में रोगी को रक्खै।

शोणित परिचालन

कोई २ रोगी के देह में शोणित परिचालन (Transpustonofcblood) और लवण द्रव्य के प्रक्षेप से उसके शोणित क्षय का प्रतिकार करने के लिये कहते हैं। किन्तु यह चिकित्सा बड़ी कठिन हैं। शल्य चिकित्सक के बिना और किसी को इसमें हस्तार्पण नहीं करना चाहिये।

शोणित स्रावकी स्थानिक चिकित्सा

शोणित स्राव की स्थानिक चिकित्सा तीन प्रकार की होती है। जैसे धामनिक शैरिक, कैशिक,।

धामनिक, शोणित स्राव और तीन उपविभागों में विभक्त हो सकता है (१) प्राथमिक, (Primary प्राइमरी) प्रतिक्रिया जनित अथवा पौनः पुनिक (Reactionaryor recurrent (३) द्वितीयक (Secondary)

व्याख्या

(१) अस्त्रोपचार करने पर, अथवा और किसी कारण से एक धमनी आहत हो जावै। उससे जो शोणित स्राव होता हैं। उसको प्राथमिक शोणित स्राव कहते हैं। शस्त्रोपचार में संक्षोभ से रक्षा पाने पर और और प्राथमिक शोणित स्राव रुक जाने पर बाद का जो शोणित स्राव होता है। उसको प्रति क्रिया जनित, वा. पौनः पुनिक शोणित स्राव कहते हैं। प्राथमिक शोणित स्राव के बाद चौविस घंटे के मध्य में यह प्रति क्रिया जनित वा पौनः पुनिक शोणित स्राव नामसे कहा जाता है। २४ घंटे के बाद जिस किसी समय में शोणित स्राव होवे, उसको द्वितीयक शोणित स्राव कहते हैं।

प्राचीन चिकित्सा प्रथा

किसी छोटी वा मध्यमाकार वाली धमनी के कट जाने से, प्रकृति की अपार करुणा से अनेक समय में उसका शोणित स्राव स्वयं ही बन्द हो जाता है। बाहर की वायु, और कटे हुये तन्तु कला आदि से निकले हुये रस के संस्पर्श से व्रण के मुख का रक्त जम जाता है। इसलिये शोणित स्राव बन्द हो जाता हैं। अथवा कटी हुई धमनी के पे-

शिक तन्तु अन्दर में रक्त के अभाव होने से अपने से ही संकुचित होकर रक्त स्राव को बन्द कर देते हैं किन्तु यह रूप स्वभाविक क्रिया के ऊपर निर्भर नहीं करता है। शल्य-तन्त्र में कहे हुये यंत्र, तंत्र, वा, औषधि द्वारा शोणित स्राव बन्द करना अवश्यकीय है। प्राचीन काल में पाश्चात्य देश में शोणित स्राव के निवारण करने की बड़ी विचित्र प्रथा प्रचलित थी। कि उस समय शल्य चिकित्सक किसी अङ्ग को काट करके उस कटे हुये, अङ्गका उत्तप्त स्फुटित Pich पिचमेड़ुवा देते थे, अथवा रक्तमें गरमकी हुई छुरीका प्रयोग करते थे। किन्तु उस पाशविक चिकित्सा का यह समय नहीं है। इस समय शल्य चिकित्सा को बहुत उन्नति हुई है। इस समय दो उपायों से शोणित स्राव बन्द किया जाता है, जैसे अस्थायी (Temporary) और चिरस्थायी (Permanent) ये दो उपाय होते हैं।

अस्थायी उपाय

सङ्कोप प्रदान—धमनी वा शिरा के जिस अंश से रक्त निकलता होवे उस अंश का अच्छी तरह ज्ञान हो जाने पर चिकित्सक को कोई भय नहीं रहता है। उस स्थान की नालियों का आयतन बढ़ क्यों न गया होवै। तब भी उस अंश को अंगुली से दबावे, तो रक्त स्राव बन्द हो जाता है। इस उपाय से उस समय रक्त की गति को बन्द करके बाद को स्थायी रूप से रक्त बन्द करने की चेष्टा करना चाहिये। रक्त निकलने वाले स्थान के ऊपर अंगुल रक्खे। अथवा उस स्थान में वा हृदय के मध्य में दबावैं। पहिले प्रकार के दबावके लिये अंगुल वा टूर्निकेट यन्त्र से दबावे प्रयोग करे इसकी शेष अवस्था में एक अस्थि अथवा उसी के समान कोई कठिन पदार्थ के ऊपर उस अंश को दबावे। इस कार्य के लिये बहुत से टूर्निकेट व्यवहृत होते हैं। एसमार्च महोदय का बनाया हुआ यन्त्र रबर नल, सबसे उत्तम है टूर्निकेट यन्त्र न होवे। तो चिकित्सक अपनी जेब से रूमाल निकाल कर उसके टुकड़े २ कर देवे। और उसकी गद्दा बना कर उस आहत स्थान पर रख देवें। बाद को छाता की छड़ी में की बेंटो में कपड़ा लपेट कर आहत स्थान पर दबाते हुये फेरता रहे है। इससे भी कार्य सिद्ध हो सकता है। किन्तु इन सब उपायों का फल स्थायी नहीं है। इस लिये इसी उपाय के ऊपर निर्भर न करके स्थायी फल को देने वाले उपायों का शीघ्र ही अवलम्बन करै।

साधारण चिकित्सा

साधारण प्रकृतिका रक्त स्राव होवे। अर्थात् अति सूक्ष्म शिरा अथवा कोशिक नालयों से रक्त बाहर निकलता होवे तो अंगुलि से दबा देवै। अथवा गेंदे की पत्तियों को

पीस कर अथवा दूर्वा को पीस कर लगावे। अथवा जिस स्थान में पीसने के लिये सिल-वट आदि न मिल सके, वहां पर दूब को दांतों से चवाकर उस स्थान पर रख कर कपड़े से बांध देवै। अथवा छोटी खरेटी के पत्तों को पीस कर लगा देवै। अथवा अरहर की पत्तियों को पीस कर लगा देवैं इससे रक्त स्राव बहुत जल्दी बन्द होता हैं। किन्तु किसी धमनी से अथवा शिरा से अधिक परिमाण में रक्त निकलता होवे। तो उसे सी देवै। अथवा बाध देवे, तो रक्त स्राव बन्द हो जाता हैं।

धमनी संचाप

अंगुलि से दवाने पर बहुत समय, धमनी से रक्त निकलता हुआ रक्त बिना परिश्रम के बन्द हो जाता हैं। उपयुक्त स्थान में सञ्चाप देना आवश्यक हैं।
और जहां तक सम्भव हो सके। अंगुलि से अस्थि के ऊपर मांस पिण्ड को दवावे। दोनों हाथों के दोनों अंगूठों से उद्देश की धमनी को दवाना चाहिये। यदि वहां की धमनी से रक्त निकलता होवे।

टूर्निकेट यंत्र

अनेक समय अंगुलि के दवाव से रक्त स्राव बन्द नहीं होता हैं इसलिये प्रायः टूर्निकेट यंत्र की सहायता लेनी चाहिये। इस का नाम पेटिट टूर्निकेट यंत्र हैं। अंगुलि से अधिक समय तक मनुष्य दवाये नहीं रख सकता है और अंगुलि से सदा समान दवाव नहीं पड़ता है। इसलिये टूर्निकेट, यंत्र को आवश्यकता हैं। इस यंत्र से सब स्थानों पर समान ही दवाव पड़ता है, और जिस समय प्रयोजन होवे उसी समय प्रयोग कर सकते हैं।

अंगुलि द्वारा संचाप

बाहु की मुख्य धमनी से रक्त स्राव होवे तो उस के ऊपर की सब पेशियों के ऊपर दाहिने हाथ की सब अंगुलियों से दवावे और जत्रु के ऊपर की धमनी से रक्त स्राव होवे, तो अंगूठे से पञ्जरास्थि के ऊपर दवाव देवे। कभी २ शरीर के गम्भीर अंश में रहने वाली धमनी अथवा शिरा से रक्त स्राव होवे तो उस रक्त नाली को बांध देना चाहिये ऐसी अवस्था में संदंशयंत्र से, उसी धमनी, अथवा शिरा को पकड़ लेवे अथवा दवा देवे। चिकित्सा क्षेत्र में इस उपाय के लिये बहुत से संदंश यंत्र को व्यवहार किया जाता हैं। किन्तु इस को सावधानता से प्रयुक्त करे। इससे समय २ पर मांस पेशियाँ अपने स्थान से दूसरे स्थान में हट जाती हैं।

स्थायी उपाय Permanent

शोणित स्राव को स्थायी रूप से बन्द करने के लिये अधो लिखित नौ उपायों

का अवलम्बन करना चाहिये। जैसे, (१) शैत्य Cold (२) उत्ताप Heat (३) सञ्चाप Pressure (४) संकोचक वर्ग Styptics (५) विद्युत द्वारा दाह कर्म Cautory (६) बन्धन Ligature (७) टर्शन Torsion (८) रक्ता वरोधिन सुई (एक्यूप्रेसर) (९) रक्तावरोधकसंदश (फसिप्रेलर)

शैत्य

छोटी २ रक्त नालियों से रक्त स्राव बन्द करने के लिये शैत्य का प्रयोजन होता है। इस से पैशिक आवरण संकुचित हो जाता है उस से रक्त जमाट, वंधने में विशेष सहायता होती है, शैत्य प्रयोग के लिये बरफ, अथवा शीतल जल का व्यवहार किया जाता है।

उत्ताप

अस्त्रोपचार (आपरेशन) के लिये बड़े २ सद्योव्रण में शीतल जल के वदले में आज कल गरम जल का उत्ताप प्रयोग किया जाता है। कारण यह है कि सब स्थान में फैलने वाले शैत्य का यदि प्रयोग किया जावे तो इस से अस्त्रोपचार जन्य संक्षोभ (शक) बढ़ जाता है, इसलिये शैत्य का प्रयोग न करके गरम जल का उत्ताप प्रयोग करे। जल १२० डिग्री से १६० डिग्री तक गरम होना चाहिये। उत्ताप से रक्त नाली के तन्तु सिकुड़ जाते हैं और रक्त का एलव्यूमन Albumin जम जाता है।

सञ्चाप

सञ्चाप से रक्त स्राव कुछ क्षण के लिये वन्द हो जाता है। प्लग (स्रावनिरोधक तौल वस्तु गोलक) अथवा आइडोफार्म की वत्ती प्रयोग करने से विना परिश्रम के ही कार्य सिद्धि होती है।

संकोचक वर्ग

पर क्लोराइड आफ आइरन्, हेमामेलिस, और नाइट्रेट् आफ् सिलवर इन तीन द्रव्यों के सहयोग से रक्त सहज में ही जम जाता है। इसलिये इस को संकोचक वर्ग कहते हैं।

विद्युत द्वारा दाहकर्म Cautary

विद्युत द्वारा दाह कर्म (कटारी) कुछ परिमाण में धमनी के पैशिक आवरण संकुचित करता है, कुछ परिमाण में इस से रक्त का जमाट वंध जाता है, और व्रण स्थान के तन्तु कला आदि झुलस कर संकुचित हो जाते हैं। किन्तु इस का प्रयोग बड़ा

कठिन है। मध्य श्रेणी वाली ताप की कटारी का प्रयोग करना चाहिये। अधिक ताप वाली कटारी के प्रयोग करने से तन्तु कला आदि जल जाते हैं। उस से रक्त स्राव बन्द न होकर और बढ़ जाता है। कटारी नाना प्रकार की व्यवहार की जाती हैं। किन्तु सब से अच्छी, पैकोयेलिन की वेज़ोलिन कटारी, और पैलवनो कटारी, हैं। सुपरिच्छन्न Cleancut सद्यो व्रण में कभी भी कटारी का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

बन्धन सब से अधिक उपयोगी है। इससे रक्त स्राव स्थायीरूप में बन्द हो जाताहै इसलिये सदाव्यबहार में लाया जाता हैं। रेशम कार्बोलिक, और क्रोमिकएसिड़में भिगोया हुआ तन्तु' के पूंछ की बनाई हुई रस्सी और वृषोदर का चमड़ा प्रधानता से बाँधने के काम में आता है। इस भाँति बन्धन का प्रयोग करें। जिससे वह अत्यन्त स्थूल न होवे, और वह कड़ा हो जावै, बन्धन को दृढ़ बांधना चाहिये।

टर्शन Torsion

टर्शन करना होवे, तो इस उद्देश्य के लिये जो संदंश व्यवहृत होता है, हैं पहिले उसको संग्रह करना चाहिये, इस संदंश (फर्सेप्स) से कटी हुई धमनी को दृढ़ता से पकड़ के उसको आवरण से खींच कर बाहर करें और उसी आवरण के अन्दर में इसको अच्छी तरह वैठा देना चाहिये।

रक्तावरोधिनी सुई (एक्यूप्रेशर)

रक्तावरोधनी (एक्यूप्रेशरनिडल') नाम की एक सुई है, इस सुई की सहायता से सामान्य शोणित स्राव बन्द हो सकता हैं' किन्तु इसका व्यवहार वहुत कम होता है,

रक्तावरोधक संदंश (फर्शिप्रेशर)

स्पेंसर आयेल' का एक प्रकार संदंश है' उसका नाम सञ्चाप संदंश (प्रेशर फर्शेप्स) हैं, इससे छोटी २ रक्त नालियों से रक्त स्राव सहज में ही बंद हो सक्ता हैं'

पौनः पुनिक शोणित स्राव RecurrentHaemorrhage

प्रकृति—किसी सद्यो व्रण का शोणित स्राव एक बार वन्द हो जावै। उसके वाद २४ घंटा के मध्य में फिर से जो रक्त स्राव होता है, उसको पौनः पुनिक शोणित स्राव कहते हैं। इसका दूसरा नाम प्रति क्रिया जनित (रियेक्शनरी) अथवा मध्य वर्ती शोणित स्राव (इन्टरम्यूरी,) हैं, आहत अङ्ग के सञ्चालन करने से यदि व्रण का बन्धन अलग हो जावै अथवा खुल जावै। अथवा किसी शोणित नाली के मुख से रक्त का डेला गिर जावे तो पौनः पुनिक शोणित स्राव हो जाता हैं।

चिकित्सा

रक्त से युक्त स्थान के ऊपर पवन निवारक बत्ती अथवा अथवा पशमीनोका बन्धन प्रयोग करे। बन्धन दृढ़ता से धीरे २ बांधे, और आहत अंग को खड़ा करके रखना चाहिये। इससे रक्त स्राव बन्दन होवे। तो बन्धन खोल कर धो देना चाहिये। और रक्त नाली से यदि रक्त निकलै। तो उसको बांध देवै, उसके बाद उसके ऊपर नवीन बन्धन लगावै। और खूब दबावै।

द्वितीयक शोणित स्राव

कारण-प्रति क्रिया का काल व्यतीत होजाने से सद्योव्रण में जो शोणित स्राव होता हैं। उसको द्वितीयक शोणित स्राव कहते हैं।

शोणित स्राव के बन्द करने के सब उपाय निष्फल हो जावै। तब ऐसो दुर्घटना होती हैं। बन्धन के दोष से अथवा बन्धन के प्रयोग के दोष से, अथवा व्रण की चिकित्सा भली भांति न होने से द्वितीयक शोणित स्राव होता है। कटी हुई धमनी आदि रक्त नालिका के प्राचीर में धमनी भित्ति की स्तब्धता (ऐथेरोमा) हो जावे। अथवा उसमें किसी प्रकार की विकृति हो जावे। अथवा उपदंश ट्यूबार्कल (घुणाकारपिडिका) आदि पीड़ा से उसका प्राचीर भङ्ग हो जावे अथवा बहुमूत्र, वृक्क रोग मलाक्त रक्त (सेप्रिमिया) पूय दूषित रक्त (पाइमिया) अभिघातज ज्वर (ट्रमेटिक ज्वर) अथवा मेदा में विकृति हो जावे, तो द्वितीयक शोणित स्राव होते हुये देखा जाता हैं।

लक्षण

एक बारगी अधिक परिमाण में रक्तके निकलने से रोगी का जीवन संकट में पड़ जाता है। किसी २ स्थल में बार २ रक्त निकलता है। और परिमाण में रोगी एक बार अवसन्न होकर मृत्यु के मुख में गिर जाता हैं। स्थल विशेष में दो अथवा एक बार रक्त स्राव होकर फिर अपने आप हो बन्द हो जाता है। किन्तु यह घटना बहुत भयानक होती है। चिकित्सक इससे कभी निश्चित नहीं होता हैं। द्वितीय रक्तस्राव के प्रारम्भ होते ही उसका प्रतीकार करना चाहिये।

चिकित्सा

अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) के बाद कटे हुये अङ्ग से द्वितीयक शोणितस्राव होवैं। तो उसके प्रतीकार करने के समय अधो लिखित चार विषयों पर दृष्टि रखना चाहिये।

(१) – जिस दिन शोणित स्राव होवै।

अस्त्रोपचार के कई एक दिन के बाद शोणित स्राव होवे। और उसकी प्रकृति सामान्य हो। तो फटे हुये प्रत्यङ्ग का बन्धन दृढ़ कर देवें। और उस प्रत्यङ्ग को खड़ा रक्खे, तो शोणित स्राव बन्द हो जाता है। इससे यदि कार्य सिद्ध न होवे। तो जानना चाहिये। किमूल धमनी से रक्त स्राव होता हैं। उसकी प्रकृति भी भयङ्कर हो जाती हैं तब उस धमनी के ऊपर टूर्निकेट यन्त्र स्थापित करैं। इससे रक्त स्राव बन्द हो जाता हैं। यदि इससे भी रक्त बन्धन होवे। और रक्त के दबाव से—Flaps फ्लैप्स, विस्फारित मालूम हो, तो उस सद्योव्रण को खोल दें, और रक्त के जमाव को धो देवै। और शोणित स्रावी नालियों को बांध देवे, छेदित स्थान से शोणित स्राव न होकर किसी धमनी से शोणित स्राव हो, तो उस सद्योव्रण के ऊपर और नीचे दबाना चाहिये। सारांश यह हैं कि द्वितीय शोणित स्राव की प्रकृति सामान्य होने से उसका प्रतिकार सहज में ही हो सकता है। किन्तु गुरुतर होने से चतुर शल्य चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिये।

शैरिक शोणित स्राव Veonous Hemorrhage

कोई शिरा द्विधा छेदित हो जावे तो इसके अन्दर में रक्त का जमाट बंध जाने से शोणित स्राव स्वयं ही बन्द हो जाता है। यदि मूल शिरा न कटी होवे। तो साधारण दबाने से रक्त स्राव बन्द हो जाता हैं। बन्धन अथवा स्राव निरोधक तौल वस्तु गोलक (प्लाग) से यह कार्य सिद्ध हो सकता है। अङ्गच्छेद के बाद कोई मूल शिरा से यदि शोणित स्राव होवे तो उसमें तन्तु बन्धन (लिगेचर) का प्रयोग करना चाहिये।

कैशिक शोणित स्राव Capillary Hoemorrhage

कैशिक नाली से रक्त निकलै तो उसमें रक्त का जमाट स्वयं बँध जाने पर रक्त निकलना बन्द हो जाता हैं। सद्योव्रण के ऊपर शीतल जल अथवा उष्ण जल प्रयोग करने से यह उद्देश्य सिद्ध हो जाता है।

अभिघात Induries

अस्थि समूह का अभिघात Injuriesofdones

अस्थि समुदाय का भग्न, विश्लेष उत्पेषण, अतिक्षेप, आदि अनेक प्रकार के अभिघात हो सकते हैं। क्रमशः उनका विवरण लिखा जायगा, पहिले अस्थि भग्न का वर्णन किया जाता हैं।

अस्थिभग्न Foractures

निर्वचन—अस्थि के सब विधान सहसा बल पूर्वक विच्छिन्न हो जावें उस को अस्थि भग्न (फ्रैक्चर) कहते हैं।

कारण

अस्थि भग्न के दो प्रकार के कारण होते हैं। (१) पूर्व प्रवर्तक, कारण (२) उत्तेजक कारण।

(१) वृद्धा अवस्था में शरीर के तन्तुओं का दौर्बल्य, वा क्षय मेदो विकृति, दबाव अथवा, दुराचार से क्षय, कोमल अस्थि (अर्थात् सुधा हीन (रिकेटस) अस्थि की भङ्गुरता, अस्थि मार्दव (ओष्ट्यूमेलेकिया) कर्क मिश्रित (कार्शिनोमेटस) सार्वाङ्गिक पक्षाघात, सौषुम्नीय पश्चिम मूलगत वायु रोग (लोकोमोटर ऐटेक्सी) (स्यू वाक्यं ूलस फोसाई) उपदंशिक ग्रन्थि, अस्थिक्षत और मृतास्थि (निक्रोसिस) द्राक्षा-गुच्छ सम कृमिकोश (हाई डेटिड् सिष्ट) और दूषित सब अङ्ग विकार पूर्व प्रवर्तक कारण रूप से कहे जासकते हैं।

जिस किसी अवस्था से अस्थि विशेष रूप से भंग हो जावे, उसको पूर्व कहे हुये कारण में निर्दिष्ट कर सक्ते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का अस्थि भग्न अधिक देखा जाता है। कारण यह है, कि पुरुष सदा अनेक स्थानों में अनेक प्रकार के कार्य करते हैं (२) उत्तेजक कारण के मध्य में बाह्य अभिघात वा बल प्रयोग अथवा पैशिक कार्य ही प्रधान है।

बाह्य बल प्रयोग

बाह्यबल प्रयोग दो प्रकार का होता हैं, जैसे प्रत्यक्ष Direct और परोक्ष (Indirect)

प्रत्यक्ष बल प्रयोग में—अस्थि के जिस स्थान में बल प्रयोजित होवे, यदि ठीक वहीं स्थान भग्न हो जावे, तो ऐसे भग्न में रोगी की अवस्था संकट से युक्त हो जाती है कारण यह है कि भग्न अस्थि के सब छोटे २ अंश उसके समीप के कोमल अंशों में प्रविष्ट वा विद्ध हो जाते हैं। जिस समय पर्शु का भग्न हो जाता है, तो उसके अनेक अंश फुफ्फुस में और हृदय में प्रविष्ट हो जाते हैं, और इसी भांति कपाल के भग्न हो जाने से उसके सब अँश मस्तिष्क में विद्ध वा प्रविष्ट हो जाते हैं। इससे बढ़कर और विपत्ति की सीमा नहीं हैं। अप्रत्यक्ष वा परोक्ष भग्न में बल प्रयोग से जिस स्थान में आघात लगता है, उसके दूर के अँश भी भग्न हो जाते है, जैसे गिरने से बाहु में आघात लगे, तो जत्रु अस्थि भग्न हो जाती है। इस रूप के अभिघात में अस्थि का दुर्बल अँश प्रायः भग्न हो जाता है, इस रूप का भग्न हाथ पैरों की हड्डियों और करोटि (स्कल) की हड्डियों में अधिकतर होता है।

२—एक मात्र जान्वस्थि को छोड़कर और कोई पेशिक कार्य से भग्न होती हुई देखी नहीं जाती है। दीर्घ सब अस्थियां पेशिक कार्य से भग्न मालूम होने पर यदि अनुसन्धान किया जा सके तो उससे साफ २ मालूम हो जायगा, कि वह पूर्व में कहे हुये किसी रोग से निश्चित आक्रान्त थीं। किसी अस्थि के अन्दर में कोई दूषित अर्बुद आदि उत्पन्न हो जावे, अथवा वह अस्थि मार्दव (ओष्ट्यमूलेकिया) से नरम हो जावे, और अति सामान्य आघात से यदि वह भग्न हो जावे, तो यह समझना चाहिये, कि यह भग्न अपने से ही हुआ है।

द्विविध भग्न

सामान्य रीति से सब भग्न दो प्रकार के होते हैं। जैसे सामान्य (Simple) और जटिल वा कठोर (Compounds) भग्न के ऊपर की त्वचा भग्न न होवे, तो उसको सामान्य भग्न कहते हैं।

जटिल वा कठोर भग्न—भग्न के ऊपर की अस्थि वा तन्तु कला आदि सब कोमलांश भग्न छिन्न हो जावे, तो उसको जटिल वा कठोर भग्न कहते हैं।

किन्तु सामान्य भग्न होवे, अथवा कठोर भग्न होवे। दोनों भिन्न २ अवस्था के अनुसार कई विभागों में विभक्त हो सकते है। उसकी व्याप्ति के अनुसार से जैसे सम्पूर्ण Complete अर्थात् सम्पूर्ण अस्थि भग्न हो जावे। असम्पूर्ण Incomplete अर्थात् अस्थि का कुछ भग्न होवे। अथवा आंशिक रूप में लच जावे। खण्डित (Comminuted) अनेक स्थानों में अस्थि भग्न हो जावे।

खण्ड विखण्डित (Multiple) जिस समय एक अथवा भिन्न भिन्न अस्थियां दो अथवा तीन स्थानों में भग्न हो जावे। तो उसको खण्ड विखण्डित अस्थि कहते है।

भग्न खण्ड—अवस्था के अनुसार जैसे—अनुविद्ध Impacted जब एक भग्न खण्ड अन्य भग्न खण्ड के मध्य में प्रविष्ट हो जावे।

विदीर्ण—जब अस्थियां स्थान से हट जाती हैं तब उन में एक दरार पड़ जाती है।

अवनमित—Depressed जब एक भग्न अस्थि का टुकड़ा दूसरे आधे हड्डी के टुकड़े के नीचे भाग में प्रवेश कर जावें। जैसे करोटि के भग्न हो जाने से कभी २ यह रूप दिखलाई देता है।

छिद्री कृत Punctured भग्न खण्ड भीतर की ओर लच जाने से अस्थि में छेद हो जता हैं।

भग्न की रेखानुसार-जैसे, वक्र, तिर्यक, चक्राकार, दीर्घ Y अथवा I के आकार सेयुक्त

वा तारा कार भग्न के साथ २ उसके चारों तरफ के तन्तु कला आदि अभिघात सेयुक्त हो जातेहैं जैसे वहां भग्न अस्थि स्थान से और हट जावै अथवा उसी अङ्ग प्रत्यङ्ग की मूल ध मनीकट जावे, अथवा मस्तिष्क मूत्राशय आदि शरीर के अन्दर के यंत्र आहत हो जावे, अथवा अस्थि सन्धि भग्न हो जावै। और भी अनेक प्रकार की अवस्था में पैदा हो जावै। तो उस भग्न को कठोर भग्न (कम्पाउन्ड फ्रैक्चर) कहते हैं।

चिन्हादि

सबसे पहिले चिकित्सक अस्थिभग्न की दुर्घटना को अच्छी तरह जान लेवै, बाद को चिकित्सा प्रारम्भ करै। चिकित्सा करनेके पहिले भग्न स्थानके कपड़ों कोखुलवा देना चाहिये परन्तु सावधानी से कपड़ों को खोलना चाहिये कारण यह हैं, कि असावधानी से एक भी अस्थि का टुकड़ा, निभग्न, अथवा अनुप्रविष्ट हो जाने से सामान्य भग्न, जटिल भग्न में परिणित हो जाता हैं। जैसे पांव के भग्न होने पर जूता को काट कर निकालना चाहिये और मोजा पट्टा को कैंची से काट कर निकाले, और पैजामा के उसी अंश को काट कर अलग कर देवे उसके बाद भग्न के लक्षणों की परीक्षा करै। अधिक तर ये चिह्न देखे जाते हैं।

(१) आहत अंग, व प्रत्यङ्ग कोविकृति (२) शोथ, वा स्फोति (३) कार्य विकार (४) अस्वाभाविक संचालन (५) स्पर्शी भग्न (व्यथा (६) चुड़ चुड़ शब्द (क्रेपिटस)-

पूर्वोक्त सात चिह्नों केमध्यमें एक मात्रा क्रेपिटस, को सुड़ान्त निर्णयक कह सकतेहैं। किन्तु स्थल विशेष में चुड़ २ शब्द नहीं सुनाई पड़ता हैं,जैसे, भग्न खण्डों केआपस में अनुविद्ध हो जानेसे अथवा अस्थिका कुछ अंश भग्न हो जाने से चुड़ २ शब्द नहीं सुनाई देता है, और किसी २ स्थलमें अप्रकृति चुड़ २ शब्द (फलस, क्रेपिटस) इससे प्रकृति चुड़ २ शब्द निर्णय करना आवश्यक है,।

चुड़ २ शब्द (क्रेपिटस)

प्रकृत चुड़ २ शब्द संग्रह करना होवै। तो जिस स्थान में भग्न का संदेह होवै। उसके ऊपर वाले अंश को और नीचे वाले अंश को दृढ़ता से पकड़े। यदि अंश और छोटा मालूम होवे।

तो उसको यथा सम्भव फैला करके दो विषम मुखों को आपस में जोड़ देवै। उसके ऊर्ध्व अंश के ऊपर निम्न अंश को स्थापित करने की चेष्टा करै। इससे चुड़ चुड़

शब्द सुनाई पड़ेगा यही कार्य बहुत सावधानी से करना चाहिये। सहसा बल प्रयोग करने से रोगी को अत्यन्त यातना होती है।

चिकित्साविधि

अस्थि भग्न की चिकित्सा करनी होवे, तो निम्न लिखित चार विषयों में विशेष दृष्टि रखना चाहिये।

(१)—भग्न सन्धान—इससे भग्न अस्थियां स्वभाविक अवस्था में की जाती हैं।

(२)—जब तक सम्पूर्ण हड्डी जुड़ न जावे, तब तक उपयुक्त यन्त्रों की सहायता से उसको उसी रूप में रक्खे।

(३)—आहत मांस के स्वभाविक कार्य की उन्नति करनी चाहिये।

(४)--रोगी के साधारण स्वास्थ्य, वा, सौन्दर्य पर दृष्टि रखना चाहिये।

कर्त्तव्य

जिस समय भग्न सन्धान, के लिये उपयुक्त यन्त्र आदि न मिलै। तो कार्य में हाथ नहीं डालना चाहिये। इसलिये उस समय के मध्य में छड़ा लाठी छाता की बेंटी के दण्ड के साथ में भग्न अङ्ग को अस्थायी रूप से बाँध देवे। रोगी को चारपाई पर लिटा कर चिकित्सक को बुलावे। अस्थि भग्न की सन्धानकरने की कोशिश करे। नही तो जितनी देर होगी, उतनी ही सन्धान में हानि पहुंचती है। फिर उस हानि का ठीक करना बड़ा ही कठिन हो जाता हैं, इस का कारण यह हैं, कि देर करने से भग्न स्थान कीसब पेशियां सिकुड़ जाती हैं। और भग्न खण्ड आपसमें जुड़ जातेहैं अथवा उनके मध्यका सब पेशी वा, रज्जु, (टेन्डन) गिर जाती है। पार्श्व फलक (स्पिलिन्ट) अथवा इसके समान और कोई यन्त्र प्रस्तुत करते हो यदि कोई हाथ, पाँव भङ्ग हो जावे तो भग्न के नीचे प्रत्यङ्ग को पकड़ करके आक्षित Ehiended करें अर्थात् खींच कर फैलावे। इसी सन्धि को खींच कर फैलावे, जैसे हाथ अथवा पांव को पकड़ कर खींचे। भग्न के नीचे नीचे का अंश पकड़ कर जिस तरह नीचे की तरफ खीचा जा सकै वैसा करना चाहिये उसी तरह ऊपर के अंश को पकड़ कर खींचै। ये आकर्षण, विकर्षण, स्थिर वा दृढ़ रूप में करना उचित है। जिस समय में शल्य चिकित्सक भग्न खण्डों को सन्धान करे, उस समय में भग्न प्रत्यङ्ग को जितना सम्भव हो सकै। उतना स्वाभाविक करने की चेष्टा करें।

इसी रूप में दूसरे तरफ के प्रत्यङ्ग के साथ नापना चाहिये और परिसर में आहत

अंग जब तक समान न हो जावे तब तक भग्न अस्थि खण्डों के उपयुक्त संधान में यथा सम्भव चेष्टा करे। सब पेशियों के आक्षेप से भग्न संधान में बाधा होवे तो प्रत्यङ्ग को झुकाना चाहिये। अथवा इस रूप में संस्थापित करे। जिस से प्रतिकूल सब पेशियां शिथिल हो जावे। यदि इस कार्य से सिद्धि न होवे तो स्पर्श ज्ञान कारक औषधि का प्रयोग करे। सब विषय में सन्धान सम्पूर्ण करने के लिये कोई २ शल्य चिकित्सक स्पर्श ज्ञान कारक औषधि का सहायता से, पैरिस प्लैष्टर के मध्य में भग्न खण्ड को स्थापित करते हैं।

असंयुक्त भग्न और अप्रकृत सन्धि

Ununited Fracture and False joint

निर्वचन—जिस भग्न की अस्थियां आपस में असंयुक्त होवे। अथवा तन्तु कला से आवद्ध रहें। उस भग्न को असंयुक्त भग्न, कहते हैं कोई २ भग्न जैसे जान्वस्थि का तिर्यग भग्न, और अस्थि सन्धि पर्यन्त भग्न। कहीं २ पर अस्थि से संयुक्त भग्न होवे, तो उस समुदाय को असंयुक्त भग्न नहीं कहते हैं। इस प्रकार असंयुक्त भग्न के दोनों मुख गोल होवें तो उस को अप्रकृत संधि कहते हैं। सहसा एक प्रकार की अस्थि संधि दिखलाई देवे तो उस को प्रकृत सन्धि नहीं समझना चाहिये।

स्थानिक कारण

असंयुक्त भग्न और अप्रकृत सन्धि के दो प्रकार के कारण होते हैं। एक—स्थानिक, दूसरा, सार्वाङ्गिक।

(१) भग्न अस्थि खण्डों को विश्राम न करने देवे।

(२) पैशिक संकोचन, बड़े अस्थि खण्डों की अप्राप्ति आदि कारणों से खण्ड समुदाय परस्पर में सन्निविष्ट होवे।

(३) भग्न खण्डों के मध्य में कोई एक मृतास्थि होवे।

(४) उस प्रदेश को धमनी के शोणित सञ्चालन में रुकावट पड़े।

(५) स्नायु के कार्य की हीनता अथवा, अभाव होवे।

(६) दूषित अर्बुद आदि की उत्पत्ति।

(७) ओष्ट्यूमैलेकिया (अस्थिमार्दव) होवे तो स्थानिक कारण के नाम से कहा जाता है। ये उपरोक्त स्थानिक कारण कहे जाते हैं।

सार्वाङ्गिक कारण

उपदंश, श्वेत सर्षप सन्निभा, घुणाकार पिडिका, वा (स्यूवार्कठ) गठियावायु

वृक्क में दाह होने से सर्व शरीर गत शोथ (ब्राइट): अनेक ज्वर, शीतादि (स्कार्वि) कर्कश, गोभी के पुष्पके तुल्य व्रण (केन्सर) एक प्रकार का पाण्डु रोग (कैकेकशिया वार्धक्य, रोगो के अभ्यास का परिवर्तन। अत्यन्त उत्तेजक औषधि से सहसा वञ्चित होवे तो ये सब असंयुक्त भग्न के कारण कहे जाते हैं। कम्प (पैरालिसिस ऐजिटेन्स) से अधिकतर भग्नास्थि संयुक्त कही नहीं जा सकती है।

चिकित्सा

स्थानिक और सार्वाङ्गिक दो प्रकार के कारणों से चिकित्सा करना आवश्यक है भग्न थोड़े दिन का होवे, तो उपर्युक्त समय तक उसी भग्न अङ्ग के प्रत्यङ्ग को पार्श्वफलक से बंधा रक्खे, यदि उसके जोड़ में विलम्ब होवे, तो उसमें फिर पार्श्व फलक (स्प्लिंट) का प्रयोग करे, जिसमें भग्न सम्पूर्ण रूप से संयुक्त हो जावें, उसके साथ उपदंश गठियावायु, आदि रोग होवें। तो उसकी उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये। रोगी को सुरा आदि उत्तेजक पदार्थ का अभ्यास होवै। तो उसको सहसा न छुड़ाकर थोड़ी थोड़ी मात्रा में प्रयोग करावे। यदि भग्न अस्थि न जुड़ै। तो भग्न अस्थि के दोनों मुखों को रगड़ना चाहिये। उससे एक प्रकार का प्रदाह होकर अधिकतर संयोग साधित हो जाता है। इससे भी न होवे, तो दो उपायों से कार्य की सिद्ध की चेष्टा करें। उपयुक्त अस्त्रोपचार किसी रूप का चिरस्थायी यंत्र प्रयोग, पहिले कहा हुआ कार्य अत्यन्त कठिन है। इसमें चतुर शल्य चिकित्सक की अत्यन्त आवश्यकता हैं, द्वितीय प्रकार की चिकित्सा में कंकण के तुल्य अस्थि का बना हुआ एक प्रकार का यन्त्र प्रयुक्त होता हैं, इस यन्त्र को फैस्यूल कहते हैं।

जटिल भग्न Compoundfracture

अस्थि भग्न के साथ २ उसके ऊपर के तन्तु कला आदि से लेकर त्वचा तक भग्न अथवा निष्पिष्ट हो जावै, तो उसको जटिल भग्न कहते हैं।

कारण

इसका कारण पूर्वोक्त सहज भग्न के समान ही है, इसलिये पैशिक संकोचन, अथवा रोगी की असावधानता से सहज भग्न समय २ पर जटिल भग्नमें परिणित हो जाता है। कभी २ भग्न अंश के कोमल विधान समूह में क्षत हो जावे, अथवा पक जावै, तब उससे जटिल भग्न हो जाता है।

विपदादि

जटिल भग्न विपत्तियों का घर है, इसमें अधिक शोणित क्षय होने से संक्षोभ

वा अवसाद होकर मृत्यु भी हो जाती है, अथवा, भग्न स्थान के कोमल अंशों का पाक मृतास्थि, (निक्रोसिस) अस्थि मार्दव जन्य दाह क्षय, मलाक्त रक्त (सेप्रिमियां) विपाक्त रक्त (सेप्टिसिमिया) पूय विष दूषित रक्त (पाइमिया) अथवा विसर्प वा धनुष्टंकार होकर रोगी का जीवन संकट मय होजाता है,

चिकित्सा

आहत अंश की अवस्था, रोगी की आयु और स्वास्थ्य की अवस्था और भग्न की अवस्था, इनके ऊपर रोगी की चिकित्सा निर्भर है। भग्न की अवस्था सामान्य होवै, तो साध्यानुकूल उसको सामान्य भग्न (सिम्पल फ्रैक्चर) में परिणित करने की चेष्टा करें। सद्योव्रण छोटा होवै, और उसके ऊपर के कोमल अंश सामान्य रूप से आहत हो जावै, तो इसके ऊपर पाक से बचाने वाली पट्टी बांधें। अस्थि का कोई अंश बाहर निकल जावै। तो उसको साफ करके फिर उसी स्थान में ठीक ठीक बैठा देवै, आवश्यकता होने पर क्षत स्थान का परिसर बढ़ा देवे। वाह्यक्षत क्षुद्रायतन होने से अन्दर के कोमल अंश छिन्न, भिन्न हो जावैं। अथवा अस्थि टूट जावैं, भग्न स्थान का ऊपरी भाग देख कर उसके मध्य में दुर्गन्धि युक्त पदार्थ मालूम होवैं, तो पचननिवारक पट्टी बांध देवें। और उसके चारों तरफ की त्वचा को अस्त्रोपचार के पूर्व साफ करैं। जिस तरहसे साफ हो सकैं। इसके बाद कार्वोलिक लोशन से क्षत को धोवैं। किसी प्रकार का मल भग्न अस्थि के अन्दर न जम जावै, ऐसा उद्योग करैं, यदि जम जावै, तो उसके निकालने की चेष्टा करना चाहिये, सहज में वह न निकलै, तो ब्रुश से साफ करै। इसके बाद उसमें ड्रेनजट्यू- (पूयनिःसारणी रवड़की नली) प्रवेश कर क्षतको बांध देवै क्षत बड़ा होवे। और पिच्चित भग्न का रूप धारण करै, अथवा पेशी, आशय स्नायु, अधिक आहत हो जावै, तो अङ्गच्छेद का विषय समझ कर देखना चाहिये, अस्थि का कुछ अश बाहर निकल गया होवे तो उसको साफ करके फिर उसी स्थान पर ठीक करके बैठा देवै।

यदि असाध्य और असम्भव जान पड़े तो आरा से उसको काट देवे, उस समय ही जितना काटना होवे उतना काट देवै, इसी तरह सब भग्न अस्थियों को उसी स्थान में बैठा कर पेशी रज्जु, और कला आदि विधानों को ताँत से सीं देवै और सद्योव्रण को बांध देवे केवल एक ड्रेनजट्यूब (पूयनिः सारणी रवड नलिका) प्रवेश करने के लिये एक फाँक रक्खे, क्षत की प्रकृति भीषण हो जावे और पेशी रज्जु आदि कोमल अँश और अस्थि आदि सम्पूर्ण कठिन अंश छिन्न भिन्न अथवा चूर्ण बिचूर्ण हो जावे इस लिये जिस तरह से वे न पकैं। ऐसा विचार कर उसके मध्य में एक बड़ी नाली अथवा पचन नि-

वारक बत्ती रक्खै। इसके बाद भग्न स्थान को ऐसे एक यंत्र के साथ बांधे । जिससे भग्न स्थान खुला रहे, और आवश्यकता होने पर वह साफ, किया जा सके।

विशेष विधि

साधारण रीति से रोगी का स्वास्थ्य अच्छा रहे उसको किसी प्रकार का दुःख नहोवे। समभाव में सब बन्धन रहें केवल, नल और बत्ती को बाहर करने के लिये समय पर खोलना चाहिये, किन्तु भग्न के मध्य में पूय हो जाने से प्रतिदिन बन्धन को खोल कर साफ करना चाहिये।

अस्थि का कोई टुकड़ा सड़ जावे। तो उसको जिस तरह हो सके, अलग कर देवे विसपमलाक रक्त (सेप्रिमिया) आदि उपसर्गउपस्थितहोवे तो उनको उपयुक्तचिकित्साकरे,

सद्योव्रण की अवस्था अत्यन्त भारी हो जाने पर समय २ परअङ्गच्छेद करना चाहिये, और किस स्थल में नहीं करना चाहिये, निम्न लिखित कई एक अवस्था देख कर इसका निश्चय करना चाहिये।

अधोलिखित पांच अवस्थाओं में अङ्गच्छेद करना चाहिये

(१) कोई प्रत्यंङ्ग कल से कट जावै अथवा रेल गाड़ी के पहिये से भग्न वा निष्पिष्ट, वा छिन्न, भिन्न होवे। तोप के गोले से उड़ जावें इन अवस्थाओंमें अंगच्छेद करना चाहिये।

(२) सम्पूर्ण प्रत्यङ्ग अथवा उसका कुछ अंश नष्ट हो जावै और चूर्ण विचूर्ण हो हो कर मांस पिण्ड में परिणत हो जावे।

(३) गलित क्षत हो जावे, अथवा उसका प्रारम्भ होवे।

(४ कठोर पूतिमय सब लक्षण होवे, जैसे अस्थि मज्जा में दाह, आथाइटिस (सन्धि प्रदाह) पूय मिश्रित रक्त (पाइमिया मालूम होवे अथवा चिरकाल से होने वाली पूय की उत्पत्ति से रोगी अवसन्न होजावै।

(पांव अत्यन्त पिस जावे और उसकी हड्डी का चूर्ण २ हो जावै निम्न लिखित तीन अवस्थाओं में अंङ्गच्छेदन हो करना चाहिये !

(१) पांव को छोड़ कर अन्य प्रत्यङ्गों में जटिल भग्न हो जावे इस अवस्था में अङ्गच्छेद नहीं करना चाहिये।

(२) पेशी, रज्जु आदि सब कोमल अंश अत्यन्त छिन्नभिन्न हो जावे अथवा पिस जावे अथवा अस्थि हट जावे, तो अनेक समय अङ्गच्छेद किया जाता है। किंतु यदि उपयुक्त

चिकित्सा से प्रत्यंग की चिकित्सा की जा सके और वह अच्छा हो जावे, तब अँगच्छेद (एम्यूटेशन) नहीं करना चाहिये।

(३) प्रत्यंग की मुख्य धमनी छिन्न न होवे, केवल पिस गई होवे, तब अंगच्छेद नहीं करना चाहिये। अगर उसके साथ २ अस्थि स्नायु नाड़ी आदि आहत हो जावे, विशेषकर दुर्बल वृद्ध व्यक्ति के निम्न प्रत्यंग इस दुर्दशा से ग्रस्त हो जावे, तो शीघ्र ही अँगच्छेद करना चाहिये। इसका वर्णन स्वतंत्र रूप से आगे लिखा जायगा।

युक्ति युक्तता

अङ्गच्छेद करना निश्चित हो जाने पर जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अङ्गच्छेद करने में करनी चाहिये। विलम्ब होने से विपत्ति की सम्भावना है उस समय रोगी की अवस्था पर दृष्टि रखना चाहिये। अभिघात से उत्पन्न होने वाले ज्वर के पहिले अगर अङ्गच्छेद होसके तो बहुत ही अच्छा है। नहीं तो ज्वर आरम्भ होने पर कई बार ज्वर के विराम की अपेक्षा करनी होती है। यदि ज्वर से अधिक कठिन अवस्था होवे। तो ज्वर के रहते रहते अङ्गच्छेद करना चाहिये। इस अवस्था में अङ्गच्छेद करते ही ज्वर शान्त हो जाता हैं।

अस्थि भग्न के उपद्रव आदि

जिस भांति दूसरे अभिघात में, संक्षोभ (शक) प्रलाप, धनुष्टंकार आदि उपद्रव दिखलाई देते हैं ये ही सब उपसर्ग साधारण भग्न में दिखलाई देवे। तो उस को जटिल भग्न कहते हैं। अस्थि भग्न में निम्नलिखित उपसर्ग दिखलाई पड़ते हैं।
(१) अस्थि सन्धि का विश्लेष (डिसलोकेशन) (२) शोणित सञ्चय (३) मूल-धमनी, शिरा, अथवस्नायु का छेद (रपचर) (४) सन्धि में आघात (५) दृढ़ वन्धन से गैंग्रिन (६) कक्षदराड (क्रच) के व्यहार से पक्षाघात (७) शैरिक थ्रम्बोसिस (रक्तावरोध) (८) एम्बोलिजम् (रक्त में असात्म्य पदार्थ का संचार) (९) अस्थि समूह के कूर्च प्रदेश में क्षत की उत्पत्ति अथवा शय्याक्षत (१०) विसर्प (११) फैट एम्बोलिजम् (१२) अत्यन्त पूय की उत्पति, ऐसी अवस्था होने पर सामान्य भग्न जटिल भग्न हो जाता है।

अस्थि सन्धि का अभिघात

Iniuries of Ioints

निष्पषेण Contusion

कारण—आघात, अथवा अन्य किसी प्रकार के बल प्रयोग से अस्थि संधि अत्यंत

न्त पिस जावे तो उस में अत्यन्त पीड़ा होती है और सन्धि कड़ी पड़ जाती है। अधिक गुरु लक्षण हो जाते हैं। श्लैष्मिक कोष में (साइनो विएल) रक्त रस (सीरम) पहुंचने पर सब सन्धि फूल जाती हैं। इस अभिघात को उपेक्षा करने पर विशेष कर श्वेत सरसों के समान पिड़िकाओं से पीड़ित बालक के इस रोग की उपेक्षा करने से प्रदाह होने लगती है। अन्त में उस से सन्धि नष्ट हो जाती है।

चिकित्सा

आहत प्रत्यङ्ग को पार्श्व फलक (स्पिलिन्ट) से बांधे रक्खे, अथवा प्लैष्टर आफ पेरिस, से बांधे और आइसबेगर बरफ की थैली से शैत्य प्रयोग करे श्लैष्मिक कोष में अधिक रस पहुंचने पर, अत्यन्त पीड़ा और खिंचाव होता है। इस को दूर करने के लिये ऐसप्रिट, नामक शस्त्र से सन्धि वेधन करना चाहिये, बाद को दबाव देना आवश्यक है।

विग्रहन अथवा मोच आजाना Sprain

सन्धि का अभिघात—कोई एक सन्धि बल पूवक खिंच जावे, अथवा रगड़ खा जावे, उसको सन्धि विग्रहित कहते हैं। गुल्फ सन्धि कर्पूर संधि और जानु संधि में ऐसा अभिघात होता हैं यह अभिघात होने से बहुत पीड़ा होती है। संधि को हिलाने डुलाने में पीड़ा और बढ़ जाती है। आहत प्रत्यङ्ग किसी प्रकार भार सहन नहीं कर सकता हैं। संधि फूल जाती है, शिरायें काली पड़ जाती हैं, इसके बाद प्रदाह होने लगता है। अस्थि भग्न और स्थान के हट जाने पर भी ऐसे ही सब लक्षण दिखलाई देने लगते हैं, इसलिये अनेक समय में संधि फूल जाती हैं। स्वाभाविक अवस्था का निर्णय करना कठिन हो जाता है। फूलना कम हो जाने पर वह जाना जा सकता है, अथवा एक्सरेज यंत्र से उसको जाने। जितने दिन स्वाभाविक अवस्था न जानी जाय, उतने दिन अस्थि भग्न की चिकित्सा करनी चाहिये।

चिकित्सा

संधि में मोच आने के समय ही चिकत्सा करनी चाहिये, उपेक्षा करने से बड़ी भीषण पीड़ा होती है, वात रोगी को कंठमालिक संधि प्रदाह हो जाता हैं, और घुणाकार पिडिका वाले रोगीको घुणाकार पैडिक संधि प्रदाह (ट्यूबर्किल आर्थाइटिस)हो जाता है

छिन्न भिन्न हुये सद बन्धन जब तक प्रकृत अवस्था में न आवे उतने दिन तक आहत सन्धि को विश्राम देना चाहिये। जिस से प्रदाह न हो सके। ऐसा करना चाहिये और प्रदाह पैदा हो जावे तो उस का प्रतिकार करना चाहिये। सन्धि में कड़ापन आजावे तो प्लैष्टर आफ पैरिस और माटिन का बन्धन बांधे। अधिक फूल जाने पर

पार्श्व फलक (स्पिलिण्ट) बांध कर, अथवा सींका (श्लड़) से उस की रक्षा करे अथवा शीतल जल वा बरफ रक्खे। मोच सामान्य होने पर उस पर भीगा हुआ कपड़ा लपेट देवे और उत्तेजक मर्दन (लिनिमेण्ट) प्रयोग करने पर आहत प्रत्यङ्ग को विश्राम देना चाहिये। इस से अच्छा होजाता हैं। यह विशेष कर ध्यान में रखना चाहिये सब सधियों को सब अवस्था में अधिक दिन विश्राम नहीं करने देना चाहिये। इस से संधि कड़ी पड़ जाती हैं इसलिये प्रदाह के सब लक्षण अदृश्य होने ही सन्धि स्थल पर हलके हांथ से मर्दन करे। उस को धीरे २ हिलावै डुलावै। संधि यदि कड़ी पड़ जावे अथवा जकड़ जावे, तो संघर्षण, मर्दन, आदि से संधि को मुलायम करे। इस से कार्य सिद्धि न होवे तो स्पर्श ज्ञान हारक औषधि प्रयोग कर बल पूर्वक उस को एक वार घुमावै। किन्तु प्रदाह होने पर ऐसा नहीं करना चाहिये।

सन्धि विश्लेष Dislocation

किसी भाँति बल प्रयोग करने पर अस्थि, वा, अस्थि सन्धि अपने स्थान से हट जावे। तो उसको विश्लेषण (डिस्लाकेशन) कहते हैं। विश्लेष दो प्रकार का होता है। (१) आजन्म (कञ्जेनिटेल) (२) आगन्तुक वा, सङ्घात, (ऐकोपाइंड) यह विश्लेष और दो भागों में विभक्त हो सकता है। (१) स्वकृत, (२) अभिघातिक, ।

स्वकृत का लक्षण

सन्धि समूह में किसी प्रकार की पीड़ा होने से जो विश्लेष होता हैं। उसको स्वकृत विश्लेष कहते हैं। सन्धि पीड़ा में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया जावेगा।

अविघातिक वा आगन्तुक विश्लेष

Firaumaetic accidental dislocation

कारण— इसके कारण दो प्रकार के हैं। पूर्व प्रवर्तक और उत्तेजक, (१) किसी प्रकार की पीड़ा, अथवा किसी पूर्व विश्लेष से सन्धि स्थान के आच्छादक बन्धनों में दुर्बलता। (२) सन्धि की आकृति को रसान्धि Hingejoints की अपेक्षा उढूखल संधि, Balland Socketjoint शीघ्र आहत हो जाती है। (३) मध्य वयस। ये पूर्व प्रवर्तक कारण हैं स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के अधिक आघात लगता है। कारण यह है। कि पुरुष अनेक प्रकार के कार्गों को करते हैं।

उत्तेजक कारणों के मध्य में वाह्य बल प्रयोग और पैशिक कार्य ही प्रधान है।

चिन्हादि

सब प्रकार के सन्धि विश्लेष में निम्न लिखित कई चिन्ह दिखलाई देते है। सन्धि

की आकृत का परिवर्तन। (२) सन्धि के संचालन में कष्ट और असामर्थ्य होवै।

(३) सन्धि समूह के सम्बन्ध का विपर्यय। (४) स्थानच्युत अस्थि की अस्वाभाविक स्थिति। (५) आहत प्रतयङ्ग का छोटा पन, अथवा लम्बापन, दिखलाई देवै।

पुनः संयोजन Reduction

भग्न सन्धि की प्रधान चिकित्सा पुनः संयोजन ही है। दो उपायों से पुनः संयोजन का कार्य सिद्ध होता है। (१) कर कौशल) Manipulation (मेनीपुलेशन) (२) विस्तार (Extension) एकस्टेंनशन) ये दो उपाय है।

कर कौशल

विश्लेष की प्रकृति और स्थिति के अनुसार सन्धि को घुमा फिरा कर खींच लेवे। और करकौशलसे उसी स्थानमें फिर बैठा देवै, करकौशल के वास्ते चिकित्सक को शरीर ज्ञान होना आवश्यक है, संधि संयोजन के पहले यह जानना चाहिये। कि आहत सन्धि का स्थिति, प्रकृति और वह किस रूप में स्थान से हटकर किस तरह विस्तृत हो गई है, इसके बाद कर कौशल से सन्धि का पुनः संयोजन करे।

विस्तार Extention

कर कौशल की अपेक्षा, एक्सटेनशन, अच्छा है, क्यों कि इसमें शारीर विज्ञान का उतना ही प्रयोजन नहीं है, कर कौशल से पहिले कार्य सिद्ध करने के लिये चेष्टा करे उससे कार्य सिद्ध न होने पर विस्तार (एक्सटेनशन करना चाहिये प्राचीन शल्य चिकित्सक आहत प्रत्यंग को बल पूर्वक खींच कर उसकी सन्धि में ठीक २ संयोजित कर देते थे। किन्तु उससे अधिकतर अपकार होता था, मृदु कर कौशल की सहायता से कार्य का सिद्धि करनी चाहिये, बल लगा कर कार्य नही करना चाहिये एक्सटेनशन, करना होवै। तो प्रत्यङ्ग के दीर्घ अङ्ग की तरफ में हाथ, अथवा जैक टाओमेल (एक प्रकार की तौलिया) से आहत प्रत्यङ्ग को खीचना चाहिये। इस तरफ और दूसरा और दूसरा तरफ में इसके ऊपर वाले प्रत्यङ्ग को आकर्षण करना आवश्यक है। इस रूप से विश्लिष्ट सन्धि का माथा ठीक २ उसके उदूखल के ऊपर खिंच जाता है, तब चिकित्सक उसको यथा स्थान में बैठा देवै। क्लोरो फार्म के प्रचार के पहिले सब पेशियों के संकोचन से यह कार्य स्वयं ही सिद्ध होता था।

बल प्रयोग से हानि

इस बात का ध्यान रखना चाहिये, कि कभी विश्लिष्ट सधि की बल पूर्वक संयोजन नहीं करना चाहिये। बल पूर्वक संयोजन करने पर कई अनर्थ हो जाते हैं।

(१) मूल धमनी, शिरा सम्पूर्ण स्नायु का छेद अथवा विदीर्ण' हो जावे (२) पेशी और सब रज्जुओं का टेन्डन भेद हो जावे। (३) त्वचा और कोमल सब तन्तु छिल जावे तो सन्धि विश्लेष जटिलभग्न (कम्पाउड) हो जाता है, (४) अस्थिभग्न (५) सन्धि और उसके चारो तरफ के अंशों में प्रदाह होवे और पीव की उत्पत्ति हो जावै। पाश्चात्य (६) उसी प्रत्यङ्ग का उच्छेद हो जावै।

इस समय में यह भी प्रश्न उठाया जा सकता है, कि सन्धि श्लिेष होने पर कितने दिन के बाद पुनः संयोजन की चेष्टा करनी चाहिये। कोई २ प्रसिद्ध चिकित्सक तीन चार मास के अन्दर सम्पादन करने के लिये कहते थे। किन्तु क्लोरो फार्म के प्रचारकी अवधि से बिलम्ब में भी काय की सिद्ध सुनी गई है, पीडग बहुत समय की हो जाने पर रोगी की आयु, संधिच्युति की स्थिति, व्यथा की मूल व अभाव और आहत हुवे प्रत्यङ्ग की प्रयोजनीयता, का विशेष विवेचना करना चाहिये और शीतल प्रयोग से उसको दाह शान्त करे। छिन्न रज्जु बन्धन और अत्यन्त कोमल सब तंतुओं के आरोग्य विधान में जितना समय आवश्यक होवै। उसको उपेक्षा अधिक समय तक भी विश्राम नहीं देना चाहिये। क्यों कि अधिक विश्राम से संधि, अचल दृढ होने की सम्भावना है, इस लिये कई सप्ताह के बाद ही थोड़ा२ करके संधि को हिलावे डुलावे। क्षीण पेशी समूह में बल पैदा करने के लिये उस स्थान पर हांथफेरना, चाहिये मर्दन, घर्षण, वा तड़ित का प्रयोग करे। संधि दृढ़, अचल हो जावे तो स्पर्श ज्ञान हारक औषध के प्रयोग से उसको दूर करै। परंतु प्रदाह होने पर ऐसी चेष्टा नहीं करना चाहिये।

आजन्म सन्धि विश्लेष Congenitaldislocation

प्रकृति—जननी के जठर में शिशु की स्थिति के समय अङ्ग प्रत्यङ्ग की सन्धि की विश्लेष हो जावे। तो उसको आजन्म संधि विश्लेष कहते हैं। कभी कभी शिशु के पैदा होते ही संधि विश्लेष हो जाता है। किन्तु ऐसी अवस्था बहुत कम होती है। केवल ऐसी अवस्था जानु सन्धि में ही देखी जाती है।

चिकित्सा

जानु सन्धि के विश्लेष हो जाने पर दो वर्ष से लेकर उस सन्धि को समय समय पर विस्तृत करें। और उसके साथ साथ उर्वस्थि के शिखर को दबावे। इससे अनेक समय सफलता होती है। परन्तु दूसरे आक्रमण की शंका रहती है। शिशु को पांच बर्ष की अवस्था तक केवल कर कौशल से विश्लिष्ट सन्धि का पुनः संयोजन कर सकते हैं। उसके पाद बहुत से शस्त्र प्रयोग करने के लिये कहते हैं

सन्धि समूहका सद्योव्रण

प्रकृति— कोई एक सन्धि केवल विद्ध अथवा एक बार में उन्मुक्त हो सकती। अभिघात लगने पर छिन्न, भिन्न, विदीर्ण वा, पिच्छित होने की सम्भावना, रहती है। कभी चारों तरफ के कोमल तन्तु आहत और सब अस्थि भग्न, अथवा हटी हुई देखी जाती हैं। ऐसी अवस्था में व्रण कठिन हो जाता हैं। और हटी हुई हड्डी अथवा हड्डी के टुकड़े ऊपर को अथवा नीचे को हट जाते है।

दूष्यता

बड़ी बड़ी सन्धियों का सद्योव्रण अधिकतर दारुण हो जाता है। और अधिक विष होने से बहुत सी विपत्तियां पैदा हो जाती हैं। क्यों कि उसी रूप के व्रण का दूषित, पीव, रक्त आदि स्राव निकालने की अधिक सुविधा नहीं की जा सकती है। इससे उस व्रण का दोष दूष्य बढ़ कर पूय मिश्रित रक्त (पाइमिया) विषाक्त रक्त (सेप्टिसिमिया) आदि दारुण अवस्था पैदा कर देता हैं।

चिह्न आदि

आघात से सन्धि एक बार में ही उन्मुक्त हो जावे तो उस की अवस्था देखकर प्रकृति का निश्चय कर सकते हैं। किन्तु वह छिन्न, अथवा, भिन्न व्रण की प्रकृति धारण करने पर अथवा उस आघात से युक्त सन्धि के कुछ दूर होने पर, तो उस का चिह्न विना परिश्रम के निश्चय नहीं होता है। इस अवस्था में अस्त्र कितनी दूर प्रवेश करना चाहिये और किधर को उस की गति होवै। पहिले इस का निश्चय करना चाहिये।

चिकित्सा

सन्धि समूह के सद्यो व्रण की चिकित्सा एक सी नहीं होती है व्रण की आकृति प्रकृति, सन्धि की अवस्था, उपसर्ग की प्रकृति, और रोगी का बल, और अवस्था पर निर्भर है।

क्षुद्र अथवा विद्ध व्रण

(१) समय २ पर विषाक्त अस्त्र से सद्योव्रण पैदा हो जाता है। ऐसा होने से व्रण की प्रकृति कठिन हो जाती हैं। यदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण, पाया जावै तो चिकित्सा में सुविधा होती हैं। यदि प्रत्यक्ष प्रमाण न मिले, और विषाक्त का सन्देह होवै तो व्रण के चारों तरफ अच्छी तरह साफ करके देखै कि अस्त्र से सन्धि विद्ध हुई है कि नहीं। इस बात को निश्चय करने के लिये, व्रण को खोल देवै और उस

का मुख चौड़ा कर देव। सन्धि विद्ध हुई मालूम होवे। तो उस को खोल देवै। उस का दोष और विषाक्त भाव दूर करे और ऐसा करे। कि इस का स्राव, बिना रुकावट के निकले (२) विषाक्त, वा दूषित अस्त्र से आहतन होवे। तो उसके मध्य में आयडोफार्म से लिप्त वत्ती प्रवेश करे।

अथवा क्षत को अच्छी तरह से धोकर उसके ऊपर पचन निवारक पट्टी बांधै, उसके बाद पार्श्व फलक के साथ उसको बांधै। सन्धि स्थल को सम्पूर्ण रूप से विश्राम करावै, और आइस वेग (बरफ को थैलो) अथवा लिष्टर नामक सर्जन के नल से ठंढक पहुचावे, अगर तरुण प्रदाह मालूम होवे। तो उसके ऊपर चार, पांच जोंकै लगावै और शीतल परिषेक के बदले ऊष्मा प्रयोग करे। इसके बाद स्थानिक अथवा सार्वाङ्गिक पीडा को शान्त करने के लिये अफीम का प्रयोग करे और पीडा को शान्त करे, ऐसपिरेट यंत्र के मुख में अगर पीव दिखलाई देवे तो संधि को खोल देवै। उसके मध्य से सब स्राव बाहर निकाल देवे, और पचन निवारक बंधन बांध देवे और उसको यथा स्थान में संयोजित करना चाहिये। इससे अगर पीव कम न होवे, । तो पचन निवारक तरल पदार्थ से उसको सदा धोया करे। और सब प्रत्यङ्गों को गरम जल में डुबाये रक्खे, कभी २ रोगी को गरम जल में गले तक डुबाये रखना पड़ता है,

मलाक्त रक्त (सेप्रिमिया) दिखलाई देवै। विषाक्त शोणित जन्य ज्वर के लक्षण दिखलाई देवे तो अङ्गच्छेद करना आवश्यक होता है, ।

सद्योव्रण

आहत सन्धि का सद्योव्रण बढ़ जावे। तो पचन निवारक लोशन से उसको अच्छी तरह धोवे। बाद, पाक से बचाने वाले बन्धन का प्रयोग करे इसके बाद व्रण के दूसरी तरफ नीचे भाग में एक छेद करे उसके भीतर से एक नल प्रवेश करे यदि व्रण के चारों तरफ के कोमल तन्तु, छिन्न वो भिन्न हो जावै और अस्थि चूर २ हो जावै। ऐसी घटना रेल के आघात से अधिक तर होती है, अधिक तर उसके मध्य में दूषित पदार्थ प्रविष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) अनेक समय आवश्यक होता हैं, शल्य चिकित्सक अच्छी तरह विचार कर अङ्गच्छेद करै।



पेशी और रज्जुसमूह का अभिघात

Injuries of muscles and tendons

पेशी समूह का निष्पेषण Contusions of muscles

कारण:—पतन' आघात, पैरों का आघात, और अन्यान्य बल प्रयोग से पेशी, पिचित अर्थात अत्यन्त घिस जावे ।

इसमें आघात की न्यूनता, वा, अधिकता के अनुसार पेशी में सामान्य आघात, अथवा विषम आघात होता है। उससे पेशी छिन्न, भिन्न, होकर पिण्डाकार में परिणित हो जाती है ।

चिह्नादि

आघात सामान्य होने से थोड़ी २ पीड़ा होती है । अङ्ग के सामन्य संचालन करने पर भी पीड़ा बढ़ जाती है । आहत स्थान फूल जाता है अन्त में उसके मध्य में रक्त प्रवेश करने पर काली शिरायें हो जाती हैं । अङ्ग में दृढ़ता, कार्य में असामर्थ्य शक्ति हीनता पैदा हो जाती हैं ' कभी कभी प्रदाह और फोड़े दिखलाई देने लगते हैं । भारी चोट लगने से जारी चिह्न हो जाते हैं, अस्थि भगनके साथ२ बड़ी२ रक्त नालियोंका छेद, भेदहोजाताहै

चिकित्सा

आहत पेशियों को जितना हो सके, उतना शिथिल रक्खे । आहत अङ्ग को विश्राम करने देवें । और शीतल परिशेक और अफीम से युक्त लोशन से प्रदाह को दूर करना चाहिये ।

पेशी के सद्योव्रण

पेशी के सद्योव्रण अनेक प्रकार के होते है। । ये छिन्न, भिन्न, विदीर्ण पिच्चित लिप्पिष्ट हो सकते हैं । सद्योव्रण तिरछा होने पर प्रत्यङ्ग को ऐसा शिथिल रक्खे, जिससे पेशी शिथिल हो जावे, और उसके साथ भिन्न पेशियों के फैले हुये मुख, आपस में सामने कर के पचल निवारक उपाय से सिलाई कर देना चाहिये । गम्भीर व्रण, और तन्तु समुदाय का बराबर अन्तर होवे, तो स्राव के निकलने के लिये उसमें एक पूय नलिका (ड्रेनजट्यूब) प्रवेश कर देवे, ऐसा करने से पेशी और तन्तु आपस में संयुक्त हो जाते हैं ।

पेशी का विदार Rupture of muscles

अचानक तीव्र आक्षेप अथवा वमन, धनुष्टंकार, वा प्रलाप आदि के समय पेशी

छिन्न, वा विदीर्ण, हो सकती हैं। इनके उदाहरण मात्र लिखे जाते हैं। जैसे कष्टकारी प्रसव में शिशु की उरः कर्णमूली पेशी (स्टेर्नोमेस्टाइड्) प्रसव काल में उदर च्छदासरला पेशी, (रेक्टम ऐवडोमिनेल) भार को उठाने से द्विशिरस्कपेशी (बाइसेप्स) टेनिसआदि खेल में उत्तानक पेशी (सुपाइनेटरलंग्स) पिण्डिका पेशी, (गेस्टानिमियस) और फुटवाल के खेल में चतुशिशरस्का उरु प्रसारणी (कोयाड्रिसेप्स एकष्टेनसर) और घोड़े पर चढ़ने से उरुन्यूद्विबी (ऐवडाक्टर) सब पेशियां छिन्न, हो जाती है। विदार होने के समय एक छेदन के तुल्य यातना पैदा होती है। और साथ साथ में व्यथा दिखलाई देती है। विदार सम्पूर्ण होने पर प्रत्यङ्ग के कार्य की हानि हो जाती है। वह स्थान नीचा पड़ जाता है और उसी आहत अङ्ग के परिचालन में सब पेशियों का कार्य आरम्भ होते हुये ही छिन्न भिन्न पेशियां पिण्डाकार में सञ्चालित हो जाती हैं। उसके ऊपर हाथ के फेरने से सूजन नष्ट हो जाती हैं। और छिन्न, के समीप में स्थित गड्ढे में हाथ गिर जाता हैं। कभी कभी उसके मध्य में रक्त जम करके एक रक्तार्बुद का आकार धारण करता हैं। बाल्यावस्था में उरः कर्णमूली पेशी छील जावै। और ग्रीवा की पेशी सिकुड़ जावै, तो ग्रीवा स्तम्भ हो जाता है।

चिकित्सा

उपर्युक्त बन्धन, अथवा पार्श्वफलक से छिन्न हुये, सब प्रान्त आपस में सम्मुख करे और प्रदाह के दूर करने के लिये और रक्त स्राव को बन्द करने के लिये, बरफ आदि शीतल परिशेक करें। द्विशिरस्का पेशी, वा, चतुश्शिरस्का पेशी के छिन्न हो जाने पर ऊदविलाव के पूँछ के सूत्र से शीघ्र ही सीं देना चाहिये। रक्तार्बुद होने पर जब तक उसमें पूय पड़े। तब तक उसको खोलना नही चाहिये।

आच्छादन विदार

गद के खेल में समय २ पर दौड़ने वालों के उरूदेश में स्थित हुई धमनी का अच्छादन छिल जावे, अधिक तर उरुप्रसारणीबाह्यरेक्टस पेशी छिल जाती हैं, ऐसा होने पर आच्छादन के उसविदारपथ से कोई एक पेशी अर्बुद के आकार में बाहर आ जाती हैं, विदार सामान्य होने से ऊदविलाव पूंछ के सूत्र से सीं देना चाहिये।

कण्डरा का अभिघात Injuries of Tendons

सद्योव्रण—कण्डरा छिन्न भिन्न अथवा विश्लिष्ट हो जावे, अथवा अस्त्र के आघात से कण्डरा द्विधाविभक्त हो जावे, तो ऊद विलाव के पूंछ के सूत्र से सीं देना चाहिये। और उस प्रत्यङ्ग में पार्श्व फलक (स्पिलिन्ट) और बन्धन बांधे, छिन्न हुये दोनों ख एक में न मिल सके, तो तांत से दोनों को जोड़ देवे।

विश्लेष

आकस्मिक बल प्रयोग से, अथवा हठ से मोच लग जावे, तो कण्डरा का आवरण अलग हो सकता है, ऐसा होने से बड़ी वेदना होती है, और आहत पेशी का आंशिक, अथवा सम्पूर्ण कार्य नष्ट हो जाता है, । वह स्थान फूल जाता हैं, और उसकी शिरायें काली पड़ जाती हैं, टकना (गुल्फ) हाथ पीठ और ग्रीवा इन स्थानों में यह अभिघात अधिक लगता है, करकौशल से हटी हुई कण्डरा को उसी स्थान पर ठीक २ स्थापित करके बन्धन से उसकी रक्षा करे।

छेद, भेद

सहसा बल लगाने से, कठिन कार्य के करने से, अथवा, भार के ढोने से कण्डरा भिन्न हो जावे, और जंघा पिण्डिका की तृतीया पेशी और द्विशिरस्का पेशी (बाइसेप्स) आदि में समय २ पर ऐसा होने पर कण्डरा यथा स्थान में दूसरी बार स्थापित करके पचन निवारक बन्धनों से बाँधे।

सम्पूर्ण धमनियों का अभिघात Injuriesof arteried

कारण—धमनी पिचत, वा पिस जावे । अथवा छिन्न, भिन्न अथवा दूसरे प्रकार से आहत हो जावे धमनी के प्राचीर में प्रत्यक्ष भाव से किसी प्रकार का आघात लग जावे तो धमनी विश्लिष्ट होने की सम्भावना हैं । आघात की मृदुता वा कठोरता और आहत धमनी की पूर्व अवस्था के अनुसार अभिघात की लघुता, और गुरुता हो जाती है, धमनी का कर्कशत्व वा, पारुष्य (कैलसिफकेशन) होने पर सामान्य आघात से ही शिरा प्रदाह पैदा हो जाता हैं, अन्त में वह सूख जाती हैं, अथवा गलितक्षत पैदा हो जाता है, किन्तु धमनी स्वस्थ होने पर वह सामान्य आघात से ऐसी पीड़ से पीड़ित नहीं होती है,

आंशिक विदार

उसकी अपेक्षा अधिक भारी, अथवा अधिक बलवान आघात—से धमनी छिन्न भिन्न हो जावे और किसी कारण से पहिले की धमनी दुर्बल हो जावे । अथवा किसी प्रकार से उस का प्राचीर पीड़ित हो जावे और वह पूर्व प्रवर्तक कारण के रूप में कार्य कर सके कभी २ पुरानी हड्डी के विश्लेष को फिर स्थापित करने के समय यही विपत्ति पैदा हुई दिखलाई पड़ती है । विदार आंशिक होने से उस के अन्दर का, और मध्य का आवरण छिन्न हो जाता है उस से शोणित के संचालन में बाधा पैदा होती हैं । अन्त में थ्रोम्बोसिस रक्त का जमाट बंधना दिखलाई देता है और धमनी बँध जाती है ।

सम्पूर्ण विदार

कोई एक प्रत्यङ्ग एक वार में ही छिन्न हो जावे तो उस प्रत्यङ्ग में स्थित हुई धमनी का सम्पूर्ण विदार देखा जाता है। किन्तु इस में सामान्य ही शोणित स्राव होता है। कारण यह है कि अन्दर के और मध्य के आवरण की अपेक्षा ऊपर में छिन्न जाने से बाहर का आवरण सिकुड़ जाता है। किन्तु अस्थि भग्न में, अथवा अस्थि विश्लेष में कोई धमनी छिल जावे। तो उससे अधिक मात्रा में शोणित प्रस्तुत होकर एक स्थान में इकट्ठा हो जाता है। इससे उस स्थान में एक अर्बुद पैदा हो जाता है। ऐसे अर्बुद को, डिफ्यूजट्रमैटिक एन्यूरिज्म, कहते हैं।

लक्षण

रोगी का कोई स्थान छिल जावे उसी समय उस में अधिक पीड़ा पैदा हो जावे और उसी धमनी की गति के अनुसार उसी स्थान में पीडा उत्पन्न होवे और देखते २ वह स्थान फूल जावे और उस में एक अर्बुद दिखलाई देवे और उसी अर्बुद का आवरण पहिले से ही नीला मालूम होवे तो भारी होने से वह अर्बुद फट जाता है उस में साफ २ स्पन्दन अनुभूत होता है। देखते २ उस की अनुभूत शक्ति कम हो जाती है। उसी समय शरीर का ताप भी कम हो जाता है, इस में शोणितस्राव, और संक्षोभ के सम्पूर्ण लक्षण समान नहीं दिखलाई पड़ते हैं।

परिणाम फल

लगातार रक्त के बहने से उसी रक्तार्बुद का आयतन देखते २ बढ़ जाता है। अन्त में उसके ऊपर की त्वचा ऐसी फैल जाती है, कि वह फट जाती है, अथवा उसका पकना प्रारम्भ हो जाता है। शीघ्र ही इस का प्रतिकार न करने से, रक्त स्राव से रोगी की मृत्यु हो जाती है किन्तु उस के बाहर शोणित स्राव के कोई लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते हैं। समय २ पर पोथ के पैदा हो जाने से अथवा गलित क्षत (गैंग्रिन) होजाने से रोगी की अवस्था संकट में पड़ जाती है।

चिकित्सा

विच्छिन्न हुई धमनी के दोनों मुखों को छेद कर बांध देवे। ऐसा करने पर एक स्थित स्थापक बन्धन से शोणित सञ्चालन कुछ काल के लिये बन्द रक्खे, उसके बाद विच्छिन्न अंश को चीर कर सम्पूर्ण रक्त के जमाव को निकाल देवे। और उपयुक्त बन्धन बांध देवे। यदि पूय का प्रारम्भ होवे, तो धमनी के उस आहत हुवे, अङ्ग को छेदन करके पहिले के समान दोनों मुखों को बांध देवे। किन्तु उसी स्थानगत

के चारों तरफ में सूजन हो आने से धमनी का छेदन वा, मुख बन्धन असम्भव मालूम होवे, तो हृदय के अभि मुख में उसी धमनी का मूल अङ्ग बांध देवे। अथवा धीरे धीरे दबावें। यदि गैंग्रिन की उत्पत्ति मालूम होवे, और दूसरी बार रक्तस्राव का प्रारम्भ हो जावे। तो अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) अवश्य ही कर देना चाहिये।

धमनी समूह का सद्योव्रण Wounds of arteries

प्रकार भेद—धमनी छिन्न, भिन्न, वा विद्ध हो जाती है, किन्तु कभी कभी धमनी के केवल, आच्छादक, तन्तु, कला, आदि छिल जाते हैं। परन्तु प्रकृति धमनी स्वाभाविक अवस्था में होवे, तो इस आघातको अभिन्न सद्योव्रण (ननपेनिट्रेटिङ्ग) कहते है। धमनी के आच्छादन उक्त रूप में आहत होने से अधिक तर वे अच्छे किये जा सकते हैं। किन्तु कभी कभी वे अधिक छिन्न हो जाते हैं, तो उनमें एक अर्बुद पैदा हो जाता हैं।

धमनी छिन्न हो कर द्विधा विभक्त हो जावे, और उसके अंदर का भाग दिखलाई देने लगे, तो उसको धमनी का भिन्न, सद्योव्रण (पेनिट्रेटिङ्ग) कहते हैं। इस अवस्था में धमनी का आयतन और आघात की प्रकृति देखना आवश्यक है।

(१)—आदि कण्डरा, अथवा फुप्फुस गामिनी धमनी आदि बड़ी २ धमनी छिन्न वा विदीर्ण, हो जावे,, तो उस समय सांघातिकी अवस्था हो जाती है।

(२)—उरु धमनी और बाहु धमनी आदि द्वतीय श्रेणी की सम्पूर्ण धमनी छिन्न, वा विदीर्ण हो जावे। तो सद्य व्रण के अनुसार उसका फल मिलता हैं। धमनी सम्पूर्ण रूप से द्विधा विभक्त हो जावें। और व्रण का मुख शुपरिच्छन्न दिखलाई पड़े। और बारम्बार रक्त स्राव होने से रोगी की मृत्यु भी हो जाती हैं। ऐसा रूप न होकर केवल धमनी अत्यंत पिस जावे, तो शोणित स्राव नहीं होता है। उस से किसी प्रकार की विपत्ति नही होता है।

चिकित्सा

किसी कारण से धमनी छिन्न हो जावे। और उससे रक्तस्राव होने लगे। उस समय उसके जिस मुख से रक्त निकलता होवे, उसको एक बंधन से बांध देवै। उस स्थान को टूर्निकेट आदि यंत्रों से दबाना चाहिये। इससे विशेष लाभ होता हैं। धमनी अत्यंत पिस जावे। अथवा स्थान २ पर खण्ड २ हो जावे। तो आहत हुये अंश को छेदन कर के दोनों मुखों को सीं देना चाहिये।

धमनी और शिरा का सद्योव्रण

प्राचीन काल में शिराच्छेद (वेनिसेक्शन) करने का नियम प्रचलित था। इस

अस्त्रोपचार से समय २ पर एक में मिली हुई धमनी और शिरा दोनों एक स्थान में साथ २ आहत हो जाती थी। उनसे जो सद्योव्रण होते थे। उन को धामनिक शैर सद्योव्रण (आर्टिरियोविनवान्डस) कहते हैं। भिन्न सद्योव्रण के बाद, धामनिक शैर सद्योव्रण देखा जाता है। कूर्पर सन्धि के नमन स्थल में अन्तर्बाहु काशिरा (वासली का शिरा) और बाहु धमनी (ब्रेकिएल) की ग्रीवा की मन्याशिरा (इंटनेलजेगुलर) और मातृका धमनी केरोटिड धमनी) और वंक्षण स्थल की रक्त नालियों के मध्य में धामनिक शैर सद्योव्रण होता है।

एन्यूरिसमैलवेरिक्स

धमनी के, और शिरा के कहे हुये रूप वाले संयोग को एन्यूरिस मैलवेरिक्स, कहते हैं। कूर्पर सन्धि के नमन स्थल में बाहु धमनी के साथ बासलीक शिरा मिलती है। धमनी के रक्त का दबाव न सहन करके शिरा के सब प्राचीर विस्फारित होकर स्फीत (वेरिकाज) भाव को प्राप्त हो जाते है। इसी रूप का शिरा के शरीर में एक अर्बुद पैदा होजाता है। वह अर्बुद कुछ फड़कता है और उसका विस्फारित भावके ऊपर में और नीचे में बहुत दूर तक फैल जाता है ऐसा होने से हृदय के प्रत्येक संकोचन में, उस गह्वर से हिश २ शब्द सुना जाता है।

चिकित्सा

बंधन प्रयोग के सिवाय और कोई इस की चिकित्सा नहीं है। ऐसा बंधन बांधै जिस से फूली हुई (वेरिक्स) और न बढ़ै। यही बंधन बांधने का प्रयोजन हैं। फूली हुई (वेरिक्स) होने पर यदि कोई असुविधा न होवे तो धमनी और रक्तार्बुद के ऊपर में, और शिरा पर दृढ़ दबाव देवै। इस से कार्य सिद्ध न होवै तो सब अंश को काट कर अलग कर देवें। इस अवस्था में संयोग स्थल के ऊपर वा नीचे, शिरा, और धमनी, दोनों को बांध देना चाहिये। यदि शिरा के स्पर्श के विना ही धमनी पकड़ी जा सकै, तो उस छिद्र के ऊपर में अथवा नीचे में धमनी को बांध देने से अच्छा होता हैं। अत्यंत आवश्यकता न होने पर ग्रीवा की मातृ का धमनी (केरोटिड) ग्रीवा-शिरा (जेगुलर वेन्) के फूल जाने पर छेदन करना ठीक नहीं है।

वेरिकाज एन्यूरिज़्म

एन्यूरिसमैलवेरिक्स (धमनी की लचक न्यून होने धमनी प्लुती) के तुल्य धमनी और शिरा में और एक प्रकार का अस्वाभाविक संयोग हैं उस का नाम शिरा धमनी प्लुती (वेरिकोज एन्यूरिज्म) है। एन्यूरिसमैलवेरिक्स के साथ यही इसका भेद है। कि इस में, धमनी, और विस्फारित शिरा के मध्य में एक गड्ढा हो जाता है यदि

शोणित नाली, दो, अथवा एक दूर में होवे। अथवा दोनों के मध्य में शोणित प्रस्तुत होने पर दोनों को अलग कर देवे, तो यही वेरीकाज एन्यूरिज्म पैदा हो जाता हैं।

इसका गठन भी आदि से अंततक अप्रकृत ही होता है। अर्थात् यह विशेष-करनवीन तंतु कलाओं से बनता हैं जिस कारण से एन्यूरिस मैंलवेरिक्स धमनी की लचक न्यून होने से धमनी प्लुता उत्पन्न होताहै। ठीक उसी कारणसे वेरिका-एन्यूरिज्मा शिराधमनो प्लुती, पैदा होता हैं। उसके लक्षणभी समान ही होते हैं। केवल भेद यही हैं। कि साधारण करावर्तन से एन्यूरिज्म (रक्तार्बुद) जाता नहीं है।

चिकित्सा

इस अवस्था में अधिक तर शल्य चिकित्सक की आवश्यकता होती है। रक्तार्बुद (एन्यूरिज्म) के छोटे होने पर विस्फारित शिरा के ऊपर और नीचे में बन्धन लगा कर उस अर्बुद का छेदन कर देवै। उसके बाद धमनों को भी बांध देवें। कभी कभी उसी अस्वभाविक संयोग स्थल के ऊपर अथवा नीचे धमनी को बांधने से ही कार्य की सिद्धि हो जाती हैं। ऐसा करने से उस नली के मध्य में स्थित हुआ रक्त जम जाता है। उस समय धमनी के रक्त के सञ्चापन पाकर शिरा सिकुड़ जाती हैं, मामूली २ रक्तार्बुद अंगुलि से दबाने पर भी लोप हो जाते हैं।



धमनी प्रदाह

Inflammation of artereries

धमनी के प्रदाह को पाश्चात्य भाषा में आर्टराइटिस कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं। भेदों की उत्पत्ति के कारण के अनुकूल ही नाम रक्खा जाता है। जैसे—आभिघातिक धमनी प्रदाह, (ट्रमैटिक आर्टराइटिस) कृमि जन्य धमनी प्रदाह, (इंफैक्टिव आर्टराइटिस, सांक्रामिक धमनी प्रदाह (एम्बोलिक आर्टराइटिस)

धमनी प्रदाह और दो प्रकार का होता है (१) आंतरिक धमनी प्रदाह, (२) बाह्य धमनी प्रदाह।

आन्तरिक धमनी प्रदाह (एन्ड आर्टराइटिस)

जो प्रदाह धमनी के गात्र में उत्पन्न होती हैं। उसको (एण्ड आर्टराइटिस) कहते हैं।

बाह्य धमनी प्रदाह

जो प्रदाह बाहर से धमनी को आक्रमण करती है उसको (पेरि आर्टराइटिस) कहते हैं।

आभिघातिक धमनीप्रदाह ट्रमेटिक आर्टराइटिस

इसका दूसरा नाम सैप्टिक आर्टराइटिस हैं। धमनी में आँशिक अथवा सम्पूर्ण रूप से भेद छेद पेषण आदि आघातों से जो एक प्रकार प्रदाह होता हैं। इसको आभिघातिक धमनी प्रदाह कहते हैं, इससे समयरमें प्रदाह युक्त शोणित नाली बंद होजाती है

कृमिजन्यधमनी प्रदाह (इन्फेकटिव आर्टराइटिस)

पूय से युक्त, अथवा दूषित सद्योव्रण, अथवा व्यापक क्षत से उत्पन्न हुये प्रदाह से विषैले जैविक पदार्थ इधर उधर दौड़ कर के आक्रमण करने से इन्फैक्टिव आर्टराइटिस (कृमि जन्य धमनी प्रदाह) हो जाता है, इससे धमनियों के कोमल प्राचीर टूट जाते हैं और उनके सब तन्तुओं का संयोग नष्ट हो जाता है, अन्त में वे इतने दुबले हो जाते हैं। रक्त के दबाव से भी छिन्न जाते हैं। उनमें रक्त स्राव होने लगता हैं, छोटी २ धमनियों में इसी रूप का अभिघात होता हैं, बड़ी २ धमनियों में ऐसा रूप होने पर उनसे अधिक तर रक्त स्राव होता है,। जिससे रोगी की अवस्था बहुत खराब हो जाती हैं, तरुण स्फोट, और दूषित अर्बुद से भी धमनी में यही विपत्ति होने की सम्भावना हैं।

सांक्रामिक धमनी प्रदाह एम्बोलिक आर्टराइटिस

सामान्य रक्त का ढीला धमनी के अन्दर अटक जावै, और इससे जो धमनी में प्रदाह होता है, उसकी प्रकृति सामान्य होती है, किन्तु उसी रक्त के ढीले के साथ कोई उग्र पदार्थ मिल जावे। अथवा, पूय दूषित रक्त (पाइमिया) आभ्यंतरिक हृदय प्रदाह एन्डो कार्डाइटिस) के होने से फोड़ा हो जाता है, उग्रपदार्थ की शक्ति मामूली होने से नहीं होता है, तब भी केवल धमनी के प्राचीर के विकार में एन्यूरिज्म (रक्तार्बुद) हो जाता है।

पुरातन धमनी प्रदाह Chronic arteritis

प्रकृति, अधिक तर इसको, एथेरोमा, कहते हैं, धमनी की सब पीडाओं के मध्य में यह अधिक देखा जाता है, चालीस वर्ष की अवस्था के बाद यह आक्रमण अधिक देखा जाता है, आदि कण्डरा और अन्याश्य कण्डराओं में इसका आक्रमण देखा जाता है।

कारण

अधिक काल तक कठोर परिश्रम, अधिक मद्यपान, पुरातन वृक्क की पीड़ा मेदो वृद्धि उपदंश आमवात आदि इसके कारण हैं।

परिणाम फल

पुरातन प्रदाह से धमनी, फैल जाती है, अथवा, लम्बी, व टेढ़ी हो जाती है, प्रदाह युक्त स्थान भंग हो जावे। अथवा छिल जावे। तो उस स्थान में धमन्यर्बुद होने की सम्भावना हो जाती है, बल प्रयोग से धमनी स्थिर हो जाती है, इसके सिवाय थ्रोम्बोसिस (रक्त का जमाव बंधना) व, एम्बालिज्म होकर अन्त में गलित क्षत, रक्तार्बुद वा विदार भी हो सकता है।

उपदंशिक धमनी प्रदाह

उपदंश के शेष क्रम में अधिक तर धमनियों में एक प्रकार का तान्तव परिवर्तन देखा जाता है, मस्तिष्क की धमनियों में इसका अधिक आक्रमण देखा जाता है। इससे धमनियों में इसका गोल २ कोष पैदा हो जाते हैं। यह एक पुरानी पीडा है, इससे थ्रोम्बोसिस अथवा रक्तार्बुद पैदा हो जाता है, इसके अतिरिक्त धमनी प्रणाली रोधिनी दाह (अब्लिटरेटिव आर्टराइटिस) मेदोऽयजनन (फेटडिजेलरेशन) भी देखा जाता है।

धमन्यर्बुद Aneurysm एन्यूरिज्म

धमनी का कोई अंश रक्त से परिपूर्ण होकर अर्बुद का आकार धारण कर लेता है। उसको धमन्यर्बुद कहते हैं। यह दो प्रकार होता है, (१) स्वयम उत्पन्न हुआ। अर्थात, धमनी के गात्र को किसी पीडा में यह उत्पन्न होवे। २-अभिघात से उत्पन्न हुवा धमनी में चोट लगने पर, आहृत प्रदेश में रक्त इकट्ठा होकर एक प्रकार का अर्बुद पैदा करती हैं।

. कारण—अन्य रोगों की तरह धमन्यार्बुद के भी दो प्रकार के कारण होते हैं। (१) पूर्व प्रवंतक। (२) उत्तेजक

पूर्व प्रवर्तक कारण

पुरातन धमनी प्रदाह शिरावरोध, वा, उपदंश, ये पूर्व प्रवर्तक कारण होते हैं।

उत्तेजक कारण

वल प्रयोग, आघात, अभिघात' कठिन कार्य' ये सब उत्तेजक कारण है। रक्त स्राव मे धमनी का कोई पीडित अंश बिस्फारित होजाने परधमन्यार्बुद उत्पन्न हो जाताहै,

गठन

जिस समय धमन्यार्बुद उत्पन्न होता है। उस समय उसका स्थान तरल रक्त में भरा रहता है, धीरे २ उस रक्त से तन्तुजनक पदार्थ (फाइब्रिन) निकलते हैं। इस रूप में वह तरल रक्त क्रमशः जम जाता है। और स्तर स्तर, में तंतु जनक पदार्थ, और रक्त जम जाता है। इसलिये धमन्यर्बुद काटने के समय कई बार कटे हुये पलाण्डु (पियाज) के समान देखा जाता है।

परिणाम फल

आरोग्य लाभ, अथवा मृत्यु इन दोनों में से एक के साथ धमन्यर्बुद का अंत होता हैं कभी २ धमन्यर्बुद के रक्त से तंतु जनक पदार्थ (फाइब्रिन) निकल कर धरे २ जम जाता है। और उसी के साथ धमनी की सब पेशियाँ सिकुड़ कर चारो तरफ से उस के ऊपर दवाव देतीं रहती है और धीरे २ अर्बुद उत्पन्न हो जाता हैं। अधोलिखित कई एक कारणों से रोगी की मृत्यु होती है।

(१)—अर्बुद का आवरण फट जावे। (२) आवरण में प्रदाह और पाक प्रारम्भ होवै। और उसी के साथ उस से रक्त स्राव होवे। (३) मर्म स्थान में उससे दवाव पड़ै। (४) उसके वृह दायतन होने से किसी धमनी के शोणित सञ्चालन में बाधा पड़

ने से गैंग्रिन हो जावे। (५) सर्वाङ्गीण पोड़ा धर्बुद की पीड़ा से उसके चारों तरफ के अंशों में प्रदाह होवे, और वे सब अंश क्रमशः जमाट बाँध कर अथवा मोटे हो कर अर्बुद के आवरण के साथ मिल जाते हैं। बाहर की शिराओं में शोथ वा विस्फार हो जाता है। स्नायु मण्डल विह्वल हो कर फूल जाता है। उसकी सञ्चालन शक्ति कम हो जाती हैं इससे यातना, आक्षेप पक्षाघात हो जाता है। अस्थि समूह में विशेष कर सब उपस्थियां क्षय हो जाती है। और उसके संग में, अन्न वहा नाली ट्रेकिया (श्वास नली) अथवा वक्षोगह्वार का अवरोध उत्पन्न हो जाता है शोणित सञ्चालन की प्रणाली के उपर धमन्यर्बुद से विशेष हानि होती है। इसमें हृदय का बायाँ क्षेपक, कोष्ठ फूल जाता है। शोणित नालियों में अवरोध श्वाँस रोध और गलित क्षत गैंग्रिना हो जाता है।

बाह्य धमन्यर्बुद के चिह्न आदि

प्रथम अवस्था में पीड़ा स्फीति, और पेशिक दुर्बलता जान पड़ती है। अथव कोई एक अस्थि संधि कठिन मालूम होती है। परीक्षा करने पर प्रधान धमनी के ऊपर एक अर्बुद दिखलाई देता हैं। इसमें स्पंदन मालूम होता है। और वह स्पंदन चारों तरफ फैल जाता हैं। अर्बुद के दोनों तरफ दोनों हाथ रखने से स्पंदन मालूम होता है। हृदय के सामने उस आक्रांत धमनी को दबावे। इससे अनेक समय अर्बुद का स्पंदन बंद हो जाता हैं। और अर्बुद छोटा हो जाता हैं। धमनी का दबाव छोड़ देने से दो तीन प्रदाहमें और अधिक रक्त से भर जाता है। पहिले के समान फिर हो जाती है। उस प्रत्यङ्ग को उठाये रखने से स्पंदन का बल कम होता है लचाने से गड़ जाता हैं। इसके साथ साथ अर्बुद अधिक विस्तृत हो जाता है।

अन्तर अर्बुद आदि के लक्षण

अंदर के धमन्यर्बुद की आकृति कुछ जानी नहीं जाती है। इस के चिह्न आदि अधिकतर बड़ी कठिनाई से जाने जाते हैं। अतः रोग के निर्णय में भ्रम होने की सम्भावना है। उस समय उस अर्बुद से मर्म स्थान में दबाव, पड़ने से जो लक्षण प्रकाशित होते है। उन लक्षणों से रोग निश्चय करने में अनेक समय कुछ सुविधा मिलती है। जैसे वक्षोगह्वर में धमन्यर्बुद होने से व्यथा श्वांस कष्ट स्वर भंग कास, एक तरफ की अक्षिकनीनिका फैल जावे बाहर की सब शिरायें बढ़ जाती हैं। एक बाहु में सूजन हो जाती है। स्नायु ट्रेकिया (श्वास नली) ब्रेंकिया (क्लोम नल) अन्नवहा नली और वक्षोगह्वर की धमनी और सम्पूर्ण शिराओं के ऊपर दबाव, पड़ने से यह रूप होता है।

सुलक्षण

कोई २ अर्बुद स्वयं ही अच्छा हो जाता हैं। जो लक्षण प्रकाशित होते हैं। उनका

समुदाय अनेक समय साफ २ प्रकाशित हो जाता हैं अर्बुद का आयतन कम हो जाता है और धीरे २ अत्यन्त कठिन हो जाता है। उसका स्पंदन कम से कम होकर लुप्त हो जाता है। कभी कभी बहुत जल्दी अच्छा हो जाता है। इस अवस्था में स्पंदन एक बार भी लुप्त हो जाता हैं। और अर्बुद कड़ा पड़ जाता है। अर्बुद के कड़े पड़ने पर अत्यन्त वेदना होती है।

दुर्लक्षण आदि

धमनी के अर्बुद से रक्त, चारो तरफ के विधानों में प्रस्तुत होता है। उस समय अर्बुद का स्पन्दन धीरे २ निस्तेज हो जाता हैं। और अर्बुद का आयतन बढ़ जाता हैं। उसके सङ्घाप आदि लक्षण क्रमशः साफ २ दिखलाई देने लगते है। किसी कारण से धमन्यर्बुद फट जावे। तो अनेक प्रकार के दुर्लक्षण आदि प्रकाशित होते है। किसी-कला -(सिरस) के गह्वर में अर्बुद फट जाने पर अन्तः शोणित स्राव के चिह्न दिखाई देते हैं। उस समय रोगी का मृत्यु हो जाती है। ट्रेकिया (श्वास नली) अथवा पक्ष तरफ के वंक्षण में वह विदीर्ण हो जावे, तो फुप्फुस जरक्क पित्त (हिम्पटिसिस) दिखाई देता है। अन्नवहा नाली अथवा पाक स्थली में होने से रक्त का वमन होता है। अंत्र मण्डल में होकर यदि रोगी कई दिन तक बच जाता है। तो गुदा से रक्त पात (मेलिना) होता है, तन्तुओं (टिशू में रक्त प्रस्तुत होने से व्यथा मूर्च्छा स्पन्दन बन्द हो जाता है। अर्बुद का विघ्न, अङ्ग प्रत्यङ्ग में नाड़ी लोप, इसके साथ २ रक्त के क्षय से श्वासरोध बढ़ जाता है। और शीघ्र मृत्यु न होने पर गैंग्रिन हो जाता है। बाहर के अंश में अर्बुद कहीं पर फट जाता है। तो इसके लक्षण साफ मालूम होते हैं।

चिकित्सा

प्राचीन प्रथा—प्राचीन काल में धमनी के अर्बुद की चिकित्सा बड़ी विचित्र थी, उस समय के चिकित्सकों की धारणा थी। कि धमन्यर्बुद दूषित रक्त से परिपूर्ण होता है। इस लिये अर्बुद का रक्त निकालते थे। किन्तु उससे कोई विशेष फल नहीं होता था कारण यह था। कि अर्बुद का रक्त निकालने पर उसमें और रक्त भर जाता था। आधुनिक चिकित्सा प्रशंसनीय है। इस समय स्पष्ट जाना गया है। कि अर्बुद का रक्त अगर जमाट बाँध लेवे। तो वह स्वयं ही अच्छा हो जाता है। यह प्राकृतिक नियम हैं। आधुनिक वैद्य इस प्राकृतिक नियम की सहायता करतेहैं विश्राम अनुत्तेजक आहार, शयन, और कतिपय औषधियों की सहायता से उस उद्देश्य को सिद्ध करते हैं इससे अर्बुद के मध्य में शोणित सञ्चालन कम हो जाता है। आनमन आवर्तन, सङ्घाप, आदि विशेष हितकारी है।

चिकित्सा के भेद

धमन्यर्बुद की चिकित्सा दो प्रकार की होती है। औषधि साध्य अथवा साधारण, और शल्य साध्य अथवा स्थानिक।

साधारण चिकित्सा

एक मात्र साधारण चिकित्सा से आन्तरिक वा, वाह्य दोनों प्रकार का अर्बुद अच्छा हो जाता है। वास्तविक में अन्दर के धमन्यर्बुद में इस प्रकार की चिकित्सा के सिवाय अन्य उपायों से आराम नहीं पाया जाता है। वाह्य धमन्यर्बुद की चिकित्सा में अधिकतर स्थानिक प्रयोग आदि विशेष कर हितकारी हैं। शारीरक वा मानसिक सम्पूर्ण विश्राम एकान्त आवश्यक हैं। रोगी चारपाई पर ही शयन करावै। भोजन आदि के लिये भी उसको चार पाई पर से नहीं उठाना चाहिये। आहार का परिमाण निर्दिष्ट कर देवै। भोजन, अनुत्तेजक और पुष्टिकर होना चाहिये, तरल पदार्थ जितना कम होवे, उतना अच्छा है। रोटी और मक्खन, ४ औंस, मांस—२ औंस, आलू २ औंस, तरल पदार्थ, ८ औंस २४ घण्टा के लिये यह भोजन, पर्याप्त है। हृदय का अधिक कार्य होवे, और रोगीके शरीर में अधिक मेदा होवे। तो थोड़ा २ वार २ रक्त निकालने से विशेष लाभ होता है। औषधि से विशेष फल नहीं होता है। तब भी पोटाश आइयोडाइड अधिक मात्रा में एकोनाइट डिजेटेलिस और जलापा वा, एसिड टार्ट्रेट आफपोटाश देना अच्छा है। और रोगी के पहिले उपदंश हुआ होवे, तो आइयोडाइड आफ पोटेशियम् देना लाभ कर है। जिन रोगियों के शरीर में रक्त, कम, होवे, और शरीर भी निर्बल होवे। तो उनको पोटाश आयोडाइड के बदले में लोह भस्म देना चाहिये।

शल्य चिकित्सा

शल्य चिकित्सा में धमन्यर्बुद को दवाना ही एक प्रधान उपाय है वाह्य अर्बुद में जिस तरह से सुभीता होवे, । उसी तरह दबावे, अथवा हृदय के मध्य में दवावै। इससे अच्छा न होवे।

तो धमनी को बांध देवे। अथवा अर्बुद को छील देवे। अथवा अर्बुद को छील देवे। अथवा अर्बुद को सुई से छेद देवै। कोई २ कर कौशल का वाह्य प्रयोग करते थे। कोई २ विजुली के द्वारा वेधन करते थे। अथवा तार को प्रवेश करने के लिये उपदेश देते थे, कोई २ उपयुक्त औषधि से रक्त का जमाट बांधने का उपदेश देते हैं। किसी का सिद्धान्त है कि इन उपायों का अवलम्बन न करके एक मात्र साधारण चिकित्सा से कार्य सिद्ध करने की चेष्टा करै। किसी २ स्थल में, प्राचीन चिकित्सा का, अभिघातिक अर्बुद में, अवलम्बन करते है। इस अवस्था में अर्बुद को खोल कर के धमनी

के दो नों मुखों को बांध देते हैं । किन्तु ये सब उपाय एक साथ ही नहीं करना चाहिये। शरीर के अनेक स्थानों में धमन्यर्बुद पैदा होता है । उन के मध्य में मातृ का धमनी (केरोटिड) अक्षिकोटरी (अर्बिटेल) अभिश्रेणी धमनी (इलिएक) और उरुगामिनी (फिमोरेल) उरु जानु पृष्ठिका (पोपलिटयलइ) इन धमनियों में अधिकतर धमन्यर्बुद हो जाता। इन सब अर्बुदों की चिकित्सा में, सम्ताप (दबाना) और आवर्तन, और बन्धन आदि उपायों से विशेष लाभ होता है।

धमनी बन्धन lgoture of arteries

शास्त्र बोध—अनेक प्रकार की चिकित्सा में धमनी का बन्धन ही आवश्यक है। इस की कठिन प्रक्रिया है। व्यच्छेद गृह में गुरु के समीप सीखना चाहिये । बिना सिखे हुये वास्तविक ज्ञान नहीं होता है केवल विडम्बना मात्र होती है । इसलिये मातृ का धमनी (केरोटिड) अक्षकाधार गामिनी धमनी (Subclauian art ery) वाहत्री धमनी (asdillary attery) शांखिक धमनी (टेम्पोरैल) आदि जो प्रधान धमनी है। उन का वर्णन किया जायगा।

काण्ड मूला धमनी Innominate artery

ग्रीवा के मूल में अक्षाधरा, और मातृ का धमनी में धमन्यर्बुद होवै, तो काण्ड मूला धमनी (इननोमिनेट आर्टरी) का बन्धन करना आवश्यक है और अक्षाधरा धमनी (सब क्लेवियन आर्टरी) और वाहत्री धमनी (एक्सिलरी आर्टरी) से रक्त स्राव होने पर भी यही धमनी बांधना चाहिये । शोणित नाली के बांधने के समय उरः कर्ण मूलिका Sternomastoid । उरः कण्ठ का Sternohyoid उरोडवटुका Sternofhyraid ष्टेर्नोथाइराड पेशियों को विभक्तकर देवै । उररुफलकीया (कैविकल, कार्टिलेज का प्रान्त, और ऊर्ध्वगामिनी (मैन्यू ब्रियम ष्टर्नोइय) का कुछ अंश काट लेवै। इस व्यापार में, अनुमन्यासिरा (इन्टर्नल जेगुलर) गलमूलिका काण्ड सिरा (Innominate veins ये दोनों सिरा, और प्रणदा नाड़ी (वेगस) और कोष्ठ की नाड़ी, ये दोनों और फुफ्फुस धरा कला (प्लूरा) आहत न होवै। इस विषय में विशेष दृष्टि रखना चाहिये ।

मातृ का धमनी (केरोटिड आर्टरी)

किसी समय मातृ का धमनी में अभिघात, वा सद्योव्रण हो जावै अथवा हनु के कोने के समीप में अथवा, क्षुद्र को लास्थि प्रमाण गल ग्रन्थि (टन्सिल) में भिन्न सद्यो व्रण हो जावै धमनी के ऊपरी अंश में, अथवा इस की किसी शाखा में धमन्यर्बुद होवै। अक्षि कोटरी (अर्बिटेल शिरः संपुटान्तरी (इन्ट्राक्रेनियल) और कृकाटिका (का-

शॉइड) में धमन्यर्बुद होवै। अथवा ग्रीवा मूल में धमन्यर्बुद होवे तो महामातृ का धमनी (Commoncorotid) को बाँध देना चाहिये। गले की पेशी (ओमोहाइड) के ऊपर में अथवा नीचे में इस धमनी का बन्धन किया जा सकता है। सुविधा होने पर इस के ऊपर में बन्धन किया जा सकता है। इसलिये गले की पेशी का ऊर्ध्व बन्धन किया जा सकता है। इसलिये गले की ऊर्ध्व बन्धन अथवा निम्न बन्धन के नाम से दो प्रकार का बन्धन प्रसिद्ध है।

जिह्वा गामिनी धमनी (लिंगूएल आर्टरी

जिह्वा में कर्क व्रण (कैन्सर) होने से रक्त स्राव होवे। तो जिह्वा के छीलने का प्रयोजन न होवै। जिह्वा गामिनी धमनी लिङ्गूएल आर्टरी का बन्धन करना चाहिये।

अक्षाधरा धमनी (Sulclasian artery)

अक्षाधरा धमनी निम्न लिखित कई एक कारणों से बांधी जाती है। (१) वाहवी धमन्यर्बुद (२) ग्रीवा मूल का धमन्यर्बुद (३) विदीर्ण वाहवी धमनी (४) स्कन्ध सन्धि में अङ्गच्छेद करने पर यदि उस से द्वितीय वार रक्त स्राव होवे (५) अस्त्रोपचार करने के पहिले अक्षाधरा धमनी को बांधने से बड़ी विपत्ति होती है। नियम के सामान्य विपरीत होने पर, पार्श्व शूल की द्वितीयावस्था (प्लूरिसी द्वितीय रक्त स्राव, और स्थाली (सैक) में पूय पैदा हो जाता है।

वाहवी धमनी (ब्रेकिन्एल आर्टरी)

वाहवी—धमनी में सद्यो व्रण होवै और कर्पूर सन्धि के आनमन स्थल में धमन्यर्बुद होवे अथवा करतल की धातुषी धमनी में सद्योव्रण होवै तो ब्रेकिएल (वाहवी) धमनी बांधना चाहिये। इस के जिस किसी स्थान में बन्धन कियाजा सकता है।

कक्षा धमनी(ऐक्सिलरी आटरी)

कक्षा धमनी में सद्योव्रण होवै। अथवा, वह फट जावे। तब इसको बन्धन करना आवश्यक होता है,। सब स्थान में बांधने का प्रयोजन नहीं है, इसकी गति के, प्रथम द्वितीय, अथवा, तृतीय खण्ड में बन्धन किया जाता है,

शांखिक धमनी (टेम्पोरेल आर्टरी)

शाङ्खिक धमनी के कुकाटिका में धमन्यर्बुद हो जावै, अथवा इस रक्त नाली में किसी रूप का सद्य व्रण हो जावे। तब बांधना चाहिये, बाह्य श्रुतिनली—(अडिटरी मियटस के सामने इसको बिना परिश्रम के पकड़ सकते हैं। बहिः प्रकोष्ठीया (रे-

डिग्ल) अन्त: प्रकोष्ठिगा धमनी Ulnor arlery में धमन्यर्बुद हो, जावे कर तल धानुवी धमनी में किसी प्रकार का सद्योव्रण होवे तो इन दोनों धमनियों का वन्धन करना आवश्यक हैं, पहिले लिखा गया है. कि धमनी वन्धन अस्त्रोपचार में अत्यन्त कठिन है, इसलिये शारीर तन्त्र और शल्य तन्त्र, में विशेष ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है, और उपयुक्त गुरु के पास व्यवच्छेद गृह में सीखना चाहिये, नहीं तो नर हत्या के पाप का भागी होगा ।

शिरा की पीडा Diseases of thvcin

निरुक्ति—शिरा में रक्त जमाट बाँध लेवै । उसको थ्रॅम्बोसिस कहते हैं । यह रोग सामान्य होता है' प्राचीन चिकित्सक शिरा में जो प्रदाह होता है । उसको थ्रॅम्बोसिस कहते थे । और शिरा के अंदर जो रक्त जम जाता था उसको फिलवाइटिस कहते हैं। इस समय यह मत ठीक न समझ कर छोड़ दिया गया है । इस समय अधिक खोज करके यह निश्चय किया गया है' कि शिरा में प्रदाह न होकर भी उसके मध्य में रक्त जम सकता है किंतु प्रदाह से थ्रॅम्बोसिस नहीं होता है। थ्रॅम्बोसिस से शिरा में प्रदाह होता है ।

कारण

१—शिरा के गात्र को परिवर्तन अभिघात प्रदाह, अपजनन से यह पैदा हो सकता है, (२) शोणित का परिवर्तन विषाक्त रक्त (सेप्टो सिमिया) पूय दूषित रक्त (पाइमिया) आदि सब रोगों में रक्त की श्वेत काणिकाये नष्ट हो जाती हैं । इस लिये इन रोगों में रक्त कापरिवर्तन देखा जाता है, । (३) रक्त के साथ किस प्रकार रोग कीटाणु (माइक्रोअर्गेनिज़म) मिल सकते हैं । (४) रक्त प्रवाह की वाधा, अवरोध निम्न लिखित तीन कारणों से होती है ।

(क) शिरा कोबांध देने से (ख) दृढ वन्धन, अर्बुद अथवा, कठिन दवाव पड़ने से' (ग) वार्धक्य –ज्वर शोणित क्षय, अथवा शिरा की वेरिकाज Varicoje फुलाता अवस्था से हृदय की दुर्बलता से रक्त धीरे २ प्रवाहित होता है, (ख) कोई आगन्तुक पदार्थ रक्त में मिल जावे ।

फल

थ्रुम्बोसिस (रक्त का जमाट बंधना) होने से जो सब परिणाम फल पैदा होता है, उसके नीचे नाम लिखे जाते हैं । (१) स्फीति और शोथ (२ गलित क्षत (गैंग्रिन) शिरा प्रदाह फिलवाइटिस) शिरागत अत्यन्त पदार्थसंचरण (एम्बोलिज्म)

चिह्नादि

थ्रम्बोसिस होने से गम्भीर सब शिरायें अवरुद्ध हो जाती हैं. इस अवरोध के नीचे वाली शिराओं के रक्त सञ्चालन में बाधा पहुँचती है. इससे वे फैल जाती हैं, और शोथ से युक्त हो जाती हैं। बाहर की शिरा अवरुद्ध होने से शिरा कड़ी पड़ जाती है, और फूल जाती है, अंगुलियों से दबाने पर उसमें कोमलता और हिलाने से दृढ़ता मालूम होती है। थ्रम्बोसिस से शिरामें प्रदाह होता है। और लक्षणों के साथ त्वचा में संताप, और लालिमा आ जाती हैं।

चिकित्सा

रोगी को शयन करावे, नहीं तो रक्त के जमाव से कुछ अंश गिर जाता है। मास्तिष्क के तुल्य किसी प्रधान यंत्र में आबद्ध हो जावे। फुफ्फुसीया धमनी के अवरुद्ध हो जाने पर सहसा मृत्यु हो जाती है, अधिक शोथ होवे तो उस अंश को सीधा खड़ा करके रक्खे और उसमें दृढ़ बन्धन लगावें।

शिरा प्रदाह Phlibiitis

शिरा में प्रदाह होवे तो उसको अंग्रेजोमें फिलवाइटिस कहते है यह तीन प्रकारका होताहै सामान्यSimple.पूयजSepticसंक्रामक अथवा व्यापक Inpectivcorspreading

प्रकार भेद

पूर्वकाल में सामान्य शिरा प्रदाह (फिलवाइटिस) को, एटिसिव फिलवाइटिस' कहते थे। शिरागात्र में सामान्य प्रदाह होवे। तो उसको सामान्य शिरा प्रदाह कहते थे, इसके अच्छे न होने से शिरा का लोपहो जाता है। अथवा कहीं २ पर उसमें फोड़ा पैदा हो जाता है।

कारण

शिरा के प्राचीर में अभिघात, और चारों तरफ के विधानों में मामूली प्रदाह और शिरा के मध्य में असंक्रामक रक्त स्कन्दीभवन थ्रम्बस, उत्पन्न होवे। और आम बात होवे, तो कभी कभी शरीर की विशेष अवस्था कारण रूप से कार्य करती है। किन्तु वह अवस्था क्या है? आज भी जानी नहीं गई है।

निदान

शिरा गात्र श्वेत कणिकाओं (ल्यूकोसाइट) से आच्छन्न होकर फूल जावे। और

शीघ्र ही शिरा के शरीर में एक रक्त स्कन्दी भवन (थ्रम्बस) उत्पन्न हो जावे । और अं में शिरा का लोप हो जावे । अथवा रक्त स्कन्दी भवन (थ्रम्बस) शोषित होजावे । अथवा पहिले की अवस्था फिर प्राप्त हो जावे । तो कभी कभी पूयोत्पादक जीवाणु उसके मध्य में प्रविष्ट होकर उसमें पूय पैदा कर देते हैं अस्त्रोपचार से पूय निकालने पर (रक्त स्कन्दी भाव (थ्रम्बस,) आहत न होवे, तो शिरा की पूय वाली अवस्था और बढ़ती नहीं है ।

लक्षण

सामान्य (रक्त का जमाट बंधन (थ्रम्बोसिस, होने से शिरा का रज्जु के समान दृण कठोर रूप हो जाता है । बाहर की शिरा में प्रदाह होने से उसके ऊपर की त्वचा फूल जाती हैं । अङ्ग को दबाने से अथवा हिलाने से अधिक वेदना होती है । कोई एक बड़ी शिराके आक्रान्त होजानेपर शिराके सञ्चालनमें बाधा पड़ती है किसी किसी रोगीके पांवमें अथवा सब सन्धियोंमें, बातके लक्षण मालूम होने लगते हैं ।

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा (रक्त का जमाट बंधना (थ्रम्बोसिस) के अनुकूल है । अधिक पीड़ा होने पर शिरा के ऊपर गलित स्नेह (गिलसरीन) और वेला डोना मिला कर लगावे अथवा शीसा और अफीम का लोशन प्रयोग करे । अथवा बोरेसिक पुल्टिश प्रयोग करै । और फोड़ा हो जाने पर पवन निवारक क्रियासे उसको उन्मुक्त करे । उस समय रक्त का जमाट किसी रूप में आहत न होवै, वैद्य को इस विषय में विशेष ध्यान रखना चाहिये । पोटाश, लिथियां, और पिपरोजिन के साथ लावणिक विरेचक वस्तु देवै । और आम बात (गाउट) होने पर कल चिकम देना उचित है । रोगी को अनुत्तेजक, आहार खाने को देवै ।

पूयज और संक्रामक शिरा प्रदाह 'फिलबाइटिस'

इसमें शिरा के शरीर में और उसके चारों तरफ के तन्तु कला आदि में संक्रामक प्रदाह होती हैं ।

कारण

संक्रामक रक्त स्कंदी भवन (थ्रम्बस) कोमल होने से, अथवा शिरा की संक्रामक प्रदाह चारों तरफ फैल जाने से पूयज शिरा प्रदाह हो जाता है । और जटिल भग्न (कंपाउंड फ्रैकचर) तरुण अस्थि मज्जागत दाह (ओष्ट्यूमाये) लाइटिस व्यापक को मल धातु प्रदाह (सेल्यूलाइटिस) दोषी पूयपिडिका (मेलिगनेंट पश्च्यूल) मुखका विस्फोट

आदि भी इसके कारण है। फोड़ा में अस्त्र प्रयोग करने पर, अथवा सामान्य शिरा प्रदाह में अस्त्रोपचार करने से शिरा के अन्दर का रक्त का ढीला आहत हो जाने से भी यह हो सकता है।

लक्षण

बाहर की कोई शिरा आक्रान्त हो जावे, वह भी रज्जु के समान, दृढ़ और कठोर हो जाती है इसके बाद शोथ, और रक्त दूषित होता हैं। गम्भीर प्रदेश वाले शिरा के प्रदाह में सहसा कोई बाहर के लक्षण दिखलाई नहीं देते हैं। शरीर के भीतर में पूय पैदा हो जाता है। और पूय दूषित रक्त रोग (पाइमिया) प्रकाशित हो जाता है उस समय सन्देह होता है। किंतु उस में भी शिरा की प्रकृत अवस्था जानी नहीं जाती हैं। अंत में रोगी इस संसार से चल बसता हैं। बाद को शव परीक्षा (पोष्टमर्टम) से ठीक २ पता लगता हैं।

चिकित्सा

स्फोट, (एबसेस) मृत अस्थि (निक्रोसिस) अथवा अन्य किसी कारण से रोग पैदा हुआ होवें। तो खोज कर उस कारण को दूर करै। पूयज रक्त स्कंदी भवन (थ्रम्बस) होवे। तो उसको काट कर बाहर निकाल देवें। और नीचे में बंधन बांध देवे यथा काल में अस्त्रोपचार न करने से अनेक समय रोगी का आहत प्रत्यङ्ग काट कर अलग करना पड़ता है। आक्रांत शिरा बहिरङ्ग होने पर उसके अंदर का थ्रम्बस फट कर बाहर हो जाता है।

प्लुत शिरा Voricoseveins

निरुक्ति—कोई एक शिरा बहुत काल से विषम रूप से विस्फारित होजावै। और उसके आवरण में विकृत पदार्थ उत्पन्न हो जावे। उसको प्लुत शिरा कहते हैं। निम्न अङ्ग में सरलान्त्र **और** मुष्ककी शिराओं में सबसे अधिक प्लुत शिरा, देखो जाती हैं।

कारण

प्लुत शिरा का कारण दो प्रकार का होता है। (च) शिरा के अंदर में शोणित सञ्चाप (छ) शिरा के प्राचीर में परिवर्तन।

इन दो प्रधान कारणों के अंदर सब कारण आजाते हैं। इसके मध्य में हृदय की पीड़ा, अर्श, गर्भ, धमन्यर्बुद, मलावरोध मल वेगो- दीरण, पैशिक दुर्बलता और शिरा के प्राचीर में प्रदाह से कोमलता, अधिक हो जाती है। स्त्रियों की गर्भावस्था में यह रोग अधिक होता है।

लक्षण

प्लुत शिरा (वेरिकाज वेन्) विस्फारित और प्लुत, अथवा वक्रभाव को धारण करती है। ऐसा रूप देखने से ही शिरा जानी जा सकती है। वह टेढ़ी होकर पांव के ऊपर में दौड़ती है जिस के प्लुत शिरा (वेरिकाजवेन्) है। परिश्रम के बाद वे उस अङ्ग की क्लान्ति और भार बोध करते हैं। कभी २ उसमें आक्षेप होता है। ठंडा पाँव गुल्फ सन्धि में स्फीति और शोथ पैर की निश्चेष्टता, अथवा शिथिलता, ये लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। जिनको पैदल अधिक चलना पड़ता है। और जो अधिक काल तक खड़े होकर काम करते हैं उनके पैर की शिरायें। अधिकतर विप्लुत हो जाती हैं।

चिकित्सा

प्लुत शिरा की चिकित्सा दो प्रकार की होती हैं। जैसे-प्रशामक और आरोग्य साधक

चिपकने वाली पट्टी, (ष्टकिन) अथवा मार्टिन का बन्धन अथवा साधारण बन्धन से विस्फारित शिरा को दबाये रक्खे, इससे रोगग्रस्तावस्था में रहता है। उसके साथ २ क्षुद्र यन्त्र आदि की क्रियाओं में और रोगी के स्वास्थ्य के ऊपर विशेष दृष्टि रखना चाहिये। प्लुत शिरा की मुख्य चिकित्सा अस्त्रोपचार ही है। अस्त्रोपचार कई प्रकार का है। उनमें बहुत से विपत्ति जनक हैं। प्लुत शिरा के ऊपर और नीचे बांध कर श्रेष्ठ पचन निवारक उपाय से उसका छेदन करे। तो जड़ से पीड़ा नष्ट हो जाती है। अस्त्र प्रयोग के बाद रोगी को शयन करावे। जिससे क्षत के मध्य में पूय न होवे। यदि किसी भांति उसके मध्य में पूति विष प्रवेश कर जावेगा। तो शिरा प्रदाह (फिलबाइटिस होने की सम्भावना है। उससे अधिक विपत्ति होती है।



लसीका समूह की पीड़ा

Diseases of Lymphatics

कारण—लसीका अथवा उसके आशयों में जो प्रदाह होता है। उस को लसीका प्रदाह (लिम्फेंजाइटिस) कहते हैं। किसी सद्योव्रण से कोई संक्रामक पदार्थ अथवा पूति पदार्थ शरीर में प्रविष्ट हो जावे। तो लसीका समूह में पीड़ा हो जाती है। अति सामान्य कारण में जैसे सामान्य खुरच जाना, वेध हो जाना, त्वचा की सामान्य उग्रता, त्वचा में अत्यन्त संघर्षण आदि से यह पीड़ा होती है।

निदान

सम्पूर्ण लसीका नाली का गात्र कोष (सेल) से व्याप्त हो जाता है। और वह स्फीत होकर कोमल हो जाता है। चारों तरफ के विधान समूह विस्तृत हो जाते हैं। और निकट में जो ग्रन्थियां होती हैं, वे सब आक्रान्त हो जाती हैं। इस रोग का परिणाम फल दो प्रकार का होता है, प्रथम उपयुक्त चिकित्सा से रोगी अच्छा हो जाता है। द्वितीय पीडित स्थान के निकट की सब ग्रन्थियां स्फीत हो जाती हैं। कभी पूति विष ग्रन्थियों का अतिक्रमण कर के सब शरीर में फैल जाता है। इससे विषैला रक्त हो जाता है।

लक्षण

लसीका में अत्यन्त भारी प्रदाह होने से अधिक तर रोग के आक्रमण के पहिले ठंडक लगती है, अथवा शरीर काँपने लगता है, इसके बाद शरीर का ताप बढ़ जाता है। और साथ २ ज्वर भी आ जाता है। कभी २ विरेचन, व वमन होने लगता है, बाहर के सब लसीकाओं में प्रदाह होने से विसर्प के लक्षण प्रकाशित होते हैं। फूली हुई ग्रन्थियों के दबाने से पीडा होती है, कभी २ प्रत्यङ्ग फूल कर शोथ युक्त हो जाता है,

चिकित्सा

किसी सद्योव्रण से इसकी उत्पत्ति होवे। तो पहिले सद्योव्रण की चिकित्सा करनी चाहिए। प्रदाह विशिष्ट प्रत्येक को ऊंचा करके रक्खे। और विश्राम देवे। उष्ण स्वेद उष्ण बोरेसिक पुल्टिस अथवा गिलसरीन, और बेला डोना प्रयोग किया जा सकता है, और स्फोट (फोड़ा) होने से उसको शीघ्र ही चीर देवे। आरोग्य होने के बाद एक आधी फूल जावे। तो रुई का बन्धन, अथवा, ऐण्टीसेप्टिक, और, मर्करी प्लेष्टर से दबाव डालना चाहिये।

लसीका ग्रन्थि प्रदाह Lymphadenitis

लसीका ग्रन्थि प्रदाह की तीन अवस्था होती है, (१) तरुण (२) अर्धतरुण (३) पुरातन तरुणप्रदाह और अर्धं तरुण प्रदाह में थोड़ा भेद देखा जाता हैं। सब प्रदाहों में निकट की ग्रन्थियां मुलायम हो जाती हैं।

कारण

किसी प्रकार का विषेला अथवा उग्र पदार्थ शरीर में प्रविष्ट हो जावे तो लसीका ग्रन्थियों में प्रदाह हो जाता है, पूयोत्पादक जीवाणु शरीर में प्रविष्ट होकर प्रदाह को पैदा करते हैं। कभी २ प्रत्यक्ष कारणों के विना लसीका ग्रन्थियों में प्रदाह हो जाता है, जैसे अधिक पैदल चलने से इसकी उत्पत्ति होती है. अनेकों का यही विश्वास है, अनेक स्थल में वज्र प्रयोग से भी प्रदाह देखा जाता है, अधिकतर इस में पीब नहीं होता हैं, ग्रन्थि के अन्दर अधिक परिमाण में रक्त प्रस्तुत होकर उस का. गहरा वर्ण, अधिक बढ़ा हुआ आयतन, होती है, और कठिन पड़ जाती है.

चिकित्सा

प्रदाह में बाहर और अन्दर सब प्रकार की उग्रता का कारण दूर करे।
और आहत अंश को भली भांति विश्राम देवे. उसकी अभिघात आदि से रक्षा करे। ग्रंथि के ऊपर उष्ण स्वेद देवे और रोगी को विरेचन होने पर कुनैन वा लोह सेवन करावे पूय दिखलाई देने पर जितना जल्दी हो सके। उसको चीर देवे। उसके बाद ...पचन किया रक्त प्रक्रियाओं से उसमें बन्धन लगावे।

विशेष विशेष अवस्था

तरुण लसीका ग्रन्थियों के प्रदाह की कई विशेष २ अवस्था लिखी जाती हैं, हाथ में अथवा किसी अङ्गुलि में विषेला सद्योव्रण होवे। तो कक्षा की सब ग्रन्थियों में प्रदाह होता हैं, कक्षा (बगल) के नीचे भाग में बाहु में कितनी ग्रंथियों के होने पर इस अवस्था में उनके समुदाय में अस्त्र प्रयोग करना चाहिये जिससे वहां की रक्त नालियां भिन्न न हो जावें।

वंक्षण ग्रन्थि

लिङ्ग, अण्ड कोष, बस्ति प्रदेश, वलद्द र, कटि, निम्नोदर में पीडा होने से वंक्षण की निचली ग्रन्थी में प्रदाह होता हैं। यह निरा ग्रंथि पुरुष के बंधन के साथ समान्तर रेखा में अवस्थित है।

बाह्य अनुलम्बन श्रेणी (वर्टिकेल) लम्बी साफुन शिरा २ के साथ अधिक तर इनके नीचे वाले प्रत्यङ्गके सब बाहरके अंशसे लसीका शिराग्रहण करती है गम्भीर अनुलम्बन श्रेणी प्रत्यङ्ग की गम्भीर सबलसीका नालियां इसके साथ मिली रहती है, वंक्षण में फोड़ा होने पर उस को अनुलम्बभावासे चीर देवे ।

ग्रीवा

ग्रीवा की सब ग्रंथियों में दाह अत्यन्त साधारण है । मस्तक कान ओट बगल, इन स्थानों में पीडा होने से ग्रीवा की ग्रंथियों में प्रदाह होता है' ग्रीवा का कोई फोड़ा चीरना होवे तो इस भांति चीर लगावे । कि ग्रीवा को वाह्य ग्रीविका शिरा (जेगुलर वेन आदि मुख्य २ रक्त नालियां आहत नहोने पावै । व्रण का स्राव अच्छी तरह निकले इस लिये छेडिस मरके तंतुकला के ऊपर से छुरी चलाना चाहिये ।

पुरातन लसीका ग्रन्थि प्रदाह Chronic Lymphadenitis

साधारण अवस्था—लसीका ग्रंथियों में तीन प्रकार का पुरातन प्रदाह होता हैं, साधारण, उपदंशिक, टयूबार्कलर' ये तीन प्रकार का होताहै त्वचा में किसी प्रकार की उग्रता होने से
लसी का ग्रन्थियों में साधारण प्रदाह होता है । कभी २ आघात, बल प्रयोग, आदि कारणों से इस की उत्पत्ति होती हैं । अधिक मार्गके परिश्रम से, लसी का ग्रन्थियों का प्रदाह होता है और ग्रन्थियां फूलकर, कोमल और वेदना जनक हो जाती है । किन्तु कभी भी आपसमें चारों तरफके तन्तु कला आदिके साथ मिलती नहीं हैं और कहीं पर पक कर पूयवाली हो जाती है ।

चिकित्सा

आक्रान्त अंश को सम्पूर्ण रीति से विश्राम देना चाहिये । उसी के साथ स्थानिक उग्रता का सम्पूर्ण कारण दूर करना चाहिये । प्रदाह में, आयोडीन मेथाइल, अथवा आइयोडाइड आफ पोटा शियम, मलहम मर्दन करै । इस से शान्ति होती हैं । साधारण चिकित्सा के साथ रोगी के स्वास्थ्य का भी विचार रखे ।

उपदंशिक आक्रमण

उपदंश के आक्रमण में सब लसीका ग्रन्थियाँ अनेक प्रकार से आक्रान्त हो जाती है । (१) उपदंश के प्राथमिक क्रम में निकट की लसी का ग्रन्थियाँ वद (छन) खलाई देती है । वह धीरे २ कठिन हो जाती हैं । उस में पूय न होने पर थोड़ी ही सड़ा होती हैं । (ख) द्वितीय क्रम में विष शरीर में फैल जाता है । शरीर की सब

ग्रन्थियां इसी रूप से आक्रान्त हो जाती हैं (ग) तृतीय रूप में लसीका ग्रन्थियों में गांठ (गमा) पैदा हो जाता है।

घुणाकार पिडिका प्रकार (ट्यूबार्कल का प्रकार)

पुरातन ट्यूबार्कल से लसी का ग्रन्थियों में प्रदाह होता है। ट्यूबार्कल ग्रस्त बालकों के अधिकतर प्रदाह देखा जाता है। ग्रीवा में ट्यूबार्कल अधिक होता है। पिता माता, से ट्यूबार्कल का दोष, और विष प्राप्त होता है। गरीब बालक बालिकाओं के अधिक होता हैं। पूति कण, मस्तक के व्रण का प्रदाह, मुख का पामा (एकजिमा) जिह्वा की विवृद्धि, अथवा, दन्त प्रदाह, ये उत्तेजक कारण रूप से कार्य करते हैं। दूसरे स्थल ट्यूबार्कलस वैसिलस (जीवाणु) से इस की उत्पत्ति होती है।

निदान

धीरे २ ग्रन्थियां बढ़ जाती हैं और छोटे २ गोल कोष से परिपूर्ण हो जाती हैं यह वृद्धि कई दिन के बाद कम हो जाती है।

उन ग्रन्थियों में अथवा उनके चारो तरफ पूय पैदा हो जाता है। कभी २ ट्यूबार्कल का विष शरीर में प्रविष्ट होकर सब अङ्गों में Tuburculosis ट्यूबार्क्यूलोसिस पैदा कर देते हैं।

लक्षण

ग्रीवा की सब ग्रन्थियां आक्रांत हो जाती हैं। ये ग्रंथियां ग्रीवा के एक तरफ, अथवा, दोनों तरफ, बढ़े हुये आयतन को धारण करती हैं किंतु उन में व्यथा नहीं मालूम होती हैं। पहिले २ ग्रंथियां स्पष्ट स्वतंत्र होती है। उस समय उन को हिला डुला सकते हैं। इस के बाद वे आपस में मिल जाती हैं और उन की त्वचा फट जाती है और उन में से दधि के तुल्य पूय निकलता है।

चिकित्सा

दंत क्षत, Panceulca त्येनिक्यूली, आदि उग्रता कोई कारण है कि नहीं। इसकी पहिले खोज कर लेवें। यदि कारण होवे तो उस की उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये। ट्यूबार्कल ग्रस्त ग्रंथियां शीघ्र ही साधारण चिकित्सा से अच्छी नहीं होती हैं इसलिये अस्त्र से चीर देना चाहिये। पहिली अवस्था में चीरा देने से आक्रांत अंश में थोड़ा ही विकार होता है। एक छोटा चीरा देने से कार्य की सिद्ध हो जाती है। उसके बाद व्लाक मैन के ताल नामक शस्त्र से ग्रन्थि के कोष को खुरच देना चाहिये।

नाड़ीमण्डलका अभिघात

नाड़ी के अभिघातों में सब से सहज, वा साधारण अभिघात मोच आ जाना (कन्स्यूशन ,हैं। किसी नाड़ी में मोच आजानेसे उसमें भिन २ शब्द होताहै. किन्तु थोड़ी देर ही होता है, भारी मोच होने से अल्प परिणाम में, शक्ति और चेतना का लोप हु-जाता है, इस तरह वातापस्मार (हिष्टीरिया पीडित ओते उनसे अल्प वा अधिक प रिमाण में नाड़ी शूल (न्यूरैलजिया) की वेदना होने की सम्भावना है, उपदंश अथवा वात प्रस्त रोगी के भी नाड़ी शूल देखा जाता है. समय २ पर वह दुःसाध्य हो जाता है, स्वस्थ व्यक्ति के भी समय २ पर यह रूप देखा जाताहै, उत्तेजक मर्दन (लिनिमेन्ट) करने पर शान्ति हो जाती है।

विदार रैप्चर

अस्थि भग्न, वा अस्थि विश्लेष, के तुल्य कठोर अभिघात से समय २ पर नाड़ी समूह में विदार देखा जाता है, । किन्तु इससे कहीं २ पर नाड़ी के दो टुकड़े हो जाते है। नाड़ी में विदार होने के समय ही अधिक तर उस अंश में शिथिलता, और स्पर्श ज्ञान की शक्ति नष्ट हो जाती है। शीघ्र ही उसका प्रतीकार न करने पर वह भाव चिरस्थायी हो जाता है, घर्षण, अथवा तड़ित प्रयोग से लाभ होता है।

इससे लाभ न होवे। तो अस्त्रोपचार करना चाहिये कोई २ चिकित्सक उस अव-स्था में विदीर्ण नाड़ी की सिलाई करने के लिये उपदेश देते हैं।

सञ्चाप (कम्प्रेशन)

किसी प्रकार के अर्बुद से अथवा, धमन्यर्बुद से दबाव पड़े अथवा अस्थि के भ-ग्न, व, विश्लेष, से समय २ पर नाड़ी के ऊपर दबाव पड़े, तो कक्ष दण्ड के व्यवहार क-रने से अथवा पार्श्व फलक, उपयोग से नाड़ी पर और दृढ़ दबाव पड़ सकता है । करोटि (स्कर्व) के अन्दर जा सूक्ष्म २ नाड़ीं विस्तृत हैं। उसकी अस्थि के एक वार में जमाट बांध लेने पर अन्दर की नाड़ी दब जाती है, इससे नाड़ी जन्य वेदना प्रकाशित होती है, और पेशियों में आक्षेप भी हो जाता है, यह दबाव स्थाई होने से अवशता और स्पर्शज्ञान का लोप हो जाता है । सञ्चाप का कारण दूर करने पर, उसके साथ २ करावर्तन, त-ड़ित प्रयोग, नाड़ी में बल पैदा करने वाली औषधियों का सेवन करावे। क्रमशः पीड़ा की शान्ति हो जाती है।

वेधन

किसी अस्त्र, वा शस्त्र से नाड़ी विद्ध हो जावे, तो उसमें नाड़ी शूल अधिक होती है। वही पीड़ा, आहत प्रत्यङ्ग के ऊपर में उठती है। इससे दारुण कष्ट होता है, और उस अङ्ग में कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है।

नाड़ी का सम्पूर्ण छेद वा, भेद,

लक्षण—उन्मुक्त सद्योव्रण में कोई २ नाड़ी समय पर छिन्न अथवा द्विधाभिन्न हो जावे तो यह रूप होते ही (क) उस नाड़ी से पोषित पेशी समूह में पक्षाघात हो जाता है, (ख) उस नाड़ी से युक्त जो शरीर का भाग होता है, उसको स्पर्श शक्ति लुप्त हो जाती है।

चिकित्सा

छिन्न, या, भिन्न नाड़ी की चिकित्सा करने पर सबसे पहिले उस नाड़ी की आकृति और कार्य, की विवेचना करना चाहिये, छेद की प्रकृति सामन्य होने से विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। अनेक स्थान में वह स्वयं ही जुड़ जाती है, उस समय नीचे के अङ्ग की कोई नाड़ी छिन्न हो जावे। तो उसकी सिलाई कर देनी चाहिये छिन्न धमनी के दोनों मुख जिस तरह सिये जाते हैं छिन्न नाड़ी को भी उसी तरह सींना चाहिये इस समय अनेक स्थानों पर नाड़ी परिस्थापना। (नर्वग्राफटिङ्ग) प्रचलित हुआहै छेद, भेद में, जिस नाड़ी के जितने टुकड़े जिस परिमाण में नष्ट हुये हों तो ठीक २ उसी प्रकृति की उतनी ही नाड़ी किसी दूसरे प्राणी के शरीर से काट कर ले आवे। छिन्न भिन्न नाड़ीके साथ सिलाई करदेवे। किन्तु आज तक इस उपाय से कोई विशेष लाभ नहीं पाया गया है, नाड़ी की इस शल्य चिकित्सा के साथ २ उसकी स्थानिक चिकित्सा, करावर्तन, तड़ित प्रयोग प्रभृति करना आवश्यकीय है, उस समय में, अगूंठा, अगुलियाँ न जकड़ जावें, इस लिये बीच २ में हिलाते डुलाते रहना चाहिये।

नाड़ी प्रदाह Inelammationof nerues

चिकित्सा—नाड़ी प्रदाह को अंग्रेजी में न्यूराइटिस कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है, (१) तरुण, (२) पुरातन तरुण प्रकृति का प्रदाह अधिक तर देखा नहीं जाता है। किसी प्रकार का अभिघात, आमवात, या, वातव्याधि (स्यूमेटिज़म) से यह समय २ पर प्रकाशित होता है। और पूति भाव से युक्त सद्योव्रण के होने पर समय समयपर यह देखा जाता है, आहत नाड़ी फूल जाती है। और स्पर्श करने पर कोमल मा·

लूम होता है। उसके साथ नाड़ी शूल के तुल्य एक प्रकार की वेदना से बिकल हो जाता है। आहत प्रत्यङ्ग को सम्पूर्ण रीति से विश्राम करावे, । उस नाड़ी के ऊपर जोंक लगावे वा, शृङ्गी, लगावे,साथ २ में विला डोना, फामेन्ट और उपयुक्त औषध की व्यवस्था करे।

पुरातन नाड़ी प्रदह Chronicneuritis

प्रकृति—इसका दूसरा नाम परिन्यूराइटिस, है, तरुण प्रदाह की अपेक्षा यह बहुत साधारण है, इससे नाड़ी के संयोजक तन्तुओं की संख्या बढ़ जाती है। मोच, अथवा, दबाव से विशेष कर रोगी जिस समय में उपदंश आमवात अथवा वायुरोग से आक्रान्त हो जाता हैं। उसी समय इसका आक्रमण देखा जाता हैं। पश्चम नाड़ी मे और बाहुगत नाड़ी (ब्रेकिएल) जाल (प्लेक्सस) की शाखाओं में इस रोग का आधिक्य देखा जाता हैं, मद्यात्यय बहुमूत्र, मलेरिया (विषम ज्वर) आदि दुर्बलता करने वाले रोगों में सब से अधिक पुरातन नाड़ी प्रदाह अधिक देखा जाता हैं, इस रोग के आक्रमण से समय २ पर सब नाड़ियां मोटी हो जाता है, और दबाने से कोमल मालूम होती है, समय २ पर न्यून, वा, अधिक, परिमाण में नाड़ी शूल देखा जाता है। और इस प्रकार आक्रान्त नाड़ियों से सब पेशियों का पल क्षय हो जाता है।

चिकित्सा

रोग के प्रथम क्रम में आयोडाइड आफ पोटाशियम, का प्रयोग करे। कोई चिकित्सक इस के साथ मर्करी देते हैं। स्थानिक चिकित्सा के मध्य में छाल उठाने (ब्लिष्टर) से प्रत्युग्रता साधन करे, उसके बाद उपर्युक्त लिनिमेन्ट का मर्दन करे। पैशिक शक्ति कम होने पर तड़ित का प्रयोग करे। इससे उस की फिर उत्तेजना होती है। अधिक वेदना होने पर, अफीम सत्व (मार्फिया) को त्वचा के नीचे पिचकारी से प्रक्षित करे, इस से भी शान्ति न होवे, तो लम्बी सूची से नाड़ी वेधन एक्यू-पंक्चर करे।

नाड़ी शूल Neuralgia

प्रकृति—किसी नाड़ी में विपरीत भाव से युक्त व्यथा होवे। उस को नाड़ी शूल (न्यूरेलजिया) कहते हैं, नाड़ी शूल, सामान्य और उत्कट प्रकृति का हो सकता है। इस के कारण बहुत से हैं। अर्बुद अथवा धमन्यर्बुद से किसी नाड़ी पर दबाव पड़े, वा नाड़ी में कोई आगन्तुक पदार्थ मिल जावे, अथवा अभिघात, शैत्य आदि कारणों से किसी नाड़ी में प्रदाह होवे अथवा अन्य नाड़ी की उग्रता, वा अभिघात फैल, फैल

जावे। जिस से कृमि दन्त से (केरिज) अधिभ्रुव सुप्राअर्बिटैल नाड़ी में वेदना होवे। और जरायु में कोई पीड़ा होने पर पृष्ठ में व्यथा होवे। अधिक परिमाण में सन्तानोत्पादन, मानसिक अवसाद, योषापस्मार (हिष्टीरिया) श्लेष्मक ज्वर, विषम ज्वर, आदि कारणों से दौर्बल्य होकर नाड़ी केन्द्र में कोई पीड़ा होवे, और बहुत से अज्ञात कारण भी होते हैं।

लक्षण

आक्रान्त नाड़ी, और उसकी शाखा, प्रशाखाओं में अथवा दूसरी नाड़ियों में व्यथा होती है, और व्यथा ठहर २ कर प्रकाशित होती है, और रोगी बहुत अधीर होजाता है। समय २ पर पैशिक आक्षेप होता है। साथ २ लाल और स्वेत ग्रन्थियोंमें अधिक स्राव देखा जाता है। ओठ में व्रण प्रकाशित होता हैं और केश, और त्वचा में एक विचित्र वर्ण दिखलाई पड़ता है। नाड़ी शूल, नाड़ा प्रदाह से न हुआ होवे, तो दबाने से शान्त हो जाता है। पञ्चमनाड़ी, सायेटिक (गृध्रसी) नाड़ी और इन्टर कोष्टल (पर्शुकान्तरालिका नाड़ी) के समूह में यह अधिक परिमाण देखा जाता है। समय २ पर यह अन्त्र, वक्षःस्थल, और किसी एक अस्थिसन्धि में भी प्रकाशित हो सकता है।

चिकित्सा

पहिले कारण को खोज कर के उस को जड़ से नाश कर देवे, दांत में कृमि दंत (केरिज) होने पर उस दूषित दांत को उखाड़ देना चाहिये। नाड़ी में आगन्तुक पदार्थ होवें। उस को निकाल देवे।

बल कारक, औषधि, लोह भस्म, कुनाइन, से रोगी का बल बढ़ावे, विशुद्ध वायु का सेवन करावे। इस से बहुत लाभ होता है रोगी वायुरोग से पीड़ित होवे। अथवा किसी उपसर्गिक व्याधि से पीड़ित होवे, तो उस का उपयुक्त प्रतिकार करना चाहिये कोई कारण न मालूम होवे, तो उस का उपयुक्त प्रतिकार करना चाहिये। उस स्थल में एक औषधि न लाभ करे, तो दूसरी औषधि देवे। जैसे खाने के लिये कुनाइन अधिक मात्रा में देवे आर्सेनिक, ऐकोनिटीन् एका बटोदोसै ग्रेन से आरम्भ करे,स्थानिक प्रयोग के लिये वच्छनाग (एकोनाइट) का मर्दन, वेदना के स्थान पर करे। अथवा नाड़ी के ऊपर ऐकच्यूयलकटारी अथवा छोटे २ छाला उठाने के (ब्लिष्टर) प्रयोग करे। इस से लाभ न होवें तो मार्फिया का अन्तःक्षेपण (इञ्जकशन) देवे। कोई २ चिकित्सक नाड़ी च्छेदन करने के लिये कहते हैं। अथवा आक्रांत नाड़ी को कुछ अंश काटने के लिये कहते है,। नाड़ी विस्तार, भी एक श्रेष्ट उपाय है,। ये तीन

प्रकार की शल्य चिकित्सा चतुर शल्य चिकित्सक से करावे।

विशेष विशेष नाड़ियों की पीड़ा

दृष्टि (अपटिक) नाड़ी—करोटी के तल देश में चोट लगने पर दृष्टि नाड़ी आहत हो जाती है। नाड़ी के आवरण के मध्य में रक्तस्राव होने से, अथवा प्रदाह होने से, अथवा; मस्तिष्क में प्रदाह होने से, अथवा उस के ऊपर उपदंशिक ग्रन्थि होने से, दृष्टि नाड़ी आक्रान्त हो जाती है। इस से रोगी सम्पूर्ण अन्धा, वा आंशिक अंधा हो जाता है तृतीय नाड़ी में इन्हो कारणों से आहत होने की सम्भावना है। ऐसी अवस्था में पारद (मर्करी) और आइयोडाइड अफ् पोटाशियम् का प्रयोग करें, इस से अनेक समय लाभ देखा जाता है।

मौखिक नाड़ी

मौखिक नाड़ी मस्तिष्क की अनेक पीड़ाओं से अवश हो जाती है वे अनेक पीड़ायें जैसे अर्बुद से उत्पन्न हुआ सञ्चाप, वा रक्तस्राव, अपजनन, अभिघात, वा प्रदाह, हैं। इन से मुख मण्डल में पक्षाघात होती हैं। आयुर्वेद में इस को अर्दित कहते है। इस का दूसरा अंग्रेजी नाम, बेल्स पल्सी, है। सम्पूर्ण मुख मण्डल आक्रान्त होने पर, तालु और मूर्धा, में कोई क्षत नहीं होता है। इस रोग के आक्रमण से मुख मण्डल शिथल हो जाता है। उस से कोई भाव प्रकाशित नहीं होता है। कारण यह है। कि उस की सब पेशियां सिकुड़ती नहीं हैं। आक्रान्त की तरफ में चक्षु बन्द नहीं होती है। इस तरह चक्षु के बन्दन होने पर, कनीनिका में क्षत, अथवा, छेद हो जाता है। हास्य अथवा, दांत दिखलाने के लिये मुख खोलने की चेष्टा करने पर अधिक तर वह दूसरी ओर में खुलता हैं। सम्पूर्ण ओठ बंद नहीं होते है। ओष्ठ्य वर्णों के उच्चारण में बहुत व्याघात होता हैं।

चिकित्सा

अर्दित के कारण के ऊपर इन की चिकित्सा निर्भर है। अनेक स्थान में, पर क्लोराइड आफ मर्करी (रस कपूर) और आइयोडाइड आफ पोटासियम. देने से उपकार होता है। उस के साथ मृदु करावर्तन, और ताड़न का प्रयोग करें। अर्बुद आदि से दबाव पड़े, तो उस दबाव को दूर करने के लिये, शल्य चिकित्सा की आवश्यकता है।

मेरु दण्ड का नाड़ी समूह

ग्रीवा का नाड़ी जल—आघात ग्रीवा वलस्थी मेरु रज्जु का स्थान से हट जाना वा विश्लेष, और गोली, छुरी आदि तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रों के आघात, से अथवा अस्त्रोपचार

करने के समय ग्रीवा की नाड़ियां आहत हो जावें, और फ्रेनिक नर्व (कोष्ठ की नाड़ी) में आघात लगने से विशेष अनिष्ट होता है। किसी कारण से फ्रेनिक नर्व के विभक्त हो जाने से तत्काल मृत्यु होजाती हैं।

बाहुगत नाड़ी जाल

किसी कारण से बाहु गत नाड़ी जाल (ब्रेकियल प्लेकसस) आहत हो जावे। तो हाथ का पक्षाघात वहां के पेशी समुदाय में पक्षाघात, और स्पर्श हानि आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। आघात अधिक भारी न होवे, अर्थात् स्नायुकुचल जावे। अथवा मोच खा जावे, तो दारुण प्रकृति का पुरातन नाड़ी प्रदाह प्रकाशित होता है। कारण के जानने पर पहिले उसका ही उन्मूलन करना चाहिये। अन्यथा लक्षणों का प्रतीकार करे आइयोडाइड आफपोटासियम् और छाला उठ.नेके लिये ब्लिष्टर आदि हितकारी हैं। उत्कट प्रकृति का नाड़ी शूल दिखलाई देवे। बाहु गत नाड़ी जाल (ब्रेकियल प्लेकसस) को विस्तृत करना चाहिये। किन्तु यह अस्त्रोपचार अत्यन्त कठिन है। चतुर शल्य चिकित्सक का इसमें काम है।

गृध्रसी Sciaticica

कारण—कटि देश की शूल को गध्रसी कहते हैं। इस रोग के आक्रमण से अत्यन्त यातना होती है। समय समय पर यह दुरारोग्य हो जाता है इसके कारण अनेक हैं, (क) शैत्य आम वात, उपदंश प्रमेह आदि कारणों से नाड़ी में प्रदाह (ख) अर्बुद आदि से उसके ऊपर दबाव, (क) मेरु रज्जु की पुरातन पीड़ा।

लक्षण

यह व्यथा उरु के पश्चाद भाग से धीरे धीरे नीचे का पैर के अंगूठेकी तरफ जाती है। उस देश के सामान्य सञ्चालन से यह बढ़ जाता है, इसलिये रोगी उस प्रत्यङ्ग को हिलाना भी नहीं चाहता है, समय २ पर नाड़ी कठिन और दृढ़ हो जाती है। दबाने मोटी रस्सी के समान मालूम होता है।

चिकित्सा

कारण के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। पुरातन नाड़ी प्रदाह (न्यूराइटिस, अथवा नाड़ी कोष प्रदाह (पेरिन्यूराइटिस) उपदंश जन्य होवे, तो उपदंश और बात विरोधी चिकित्सा करना चाहिये। इस लिये छाला उठाना (ब्लिष्टर) और अवसादक औषधिका प्रयोग करना चाहिये। इसके साथ त्वचाके नीचे मार्फिया (अफीमकालत्व) का अन्तः क्षरण (इञ्जेक्शन) करना चाहिये। इससे अच्छा न होवे तो शल्य चिकित्सक से नाड़ी का विस्तार करना चाहिये।

नाड़ी का अर्बुद

प्रकृति—नाड़ी के अर्बुद का जिस प्रकार गठन होता था। पहिले उस समुदाय को—(न्यूरोमेट) कहते थे। किन्तु इस समय यह मत छोड़ दिया गया है। इस समय जो सम्पूर्ण अर्बुद केवल नाड़ी तंतुओं से गठित होते है। उस समुदाय को नाड्यर्बुद (न्यूरोमेट) नाम से कहते हैं। इनके सिवाय जो अर्बुद तंतु अथवा Sarcoma सर्कोमा आदि उपकरणों से कठिन होते हैं। उनको तान्तव अर्बुद (फाइब्रोमेट) मांसार्बुद (सार्कोमेट) आदि नामों से कहते हैं प्रकृत नाड्यर्बुद (न्यूरोमेट) अत्यंत कम दिखलाई देता हैं। इस लिये इसका विवरण नहीं किया जाता है।

तान्तव अर्बुद (फाईब्रोमेट)

प्रकृति—फाईब्रोमेट नामक अर्बुद अन्यान्य नाड़ी अर्बुदों की तरह बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं ये नाड़ी के आवरण के संयोजक तंतुओं में उत्पन्न होते हैं। प्रायः एक से अधिक नहीं देखा जाता है। इस लिये कभी २ वह एक नाड़ी में अथवा भिन्न २ नाड़ियों बहुत से इकट्ठा होकर पैदा होते हैं

चिकित्सा

अर्बुद को काट कर बाहर कर देवै, वह असाध्य मालूम होवे, तो उसके साथ आक्रान्त नाड़ी के भाग का छेदन कर देवै। इसके बाद नाड़ी के दोनों मुखों को सीं देना चाहिये। दोनों के प्रान्त यदि जुड़े न जासकें तो दोनों के मध्य में जितना अवकाश होवे उतना नाड़ी का टुकड़ा जोड़ देवै।

पाद क्षत (PERFoRATING ULCEROF THE FOOT)

पांव के तलवों में कदर हो जावै, और उस पर दबाव पड़ने से जो क्षत होता हैं। उसको पाद क्षत कहते है। कोई चिकित्सक कहते हैं। कि पांव के तल की नाड़ियों की दुर्बलता से अनेक स्थल में यह रोग हो जाता है। कभी कभी सुषुम्ना प्रतीचीमूल व्याधो लोको मोटर ऐटेकशियां वा बहुमूत्र, कुष्ठ, और छिन्न सुषुम्ना (स्पाइना बिफिडर) के साथ इस का सम्बन्ध देखा जाता है। कनिष्ठिका, वा पांव का अंगूठा, इन के पेट में यह कई स्थलों में देखा जाता है। इस से सामान्य प्रदाह होता है और उस क्षत के मध्य में कांटा चले जाने से बहुत कष्ट होता है। इस से अंगुलि की संधि एक वार नष्ट होजाती है। अस्थि में मृतास्थि (निक्रासिस) हो जाती है। अथवा सब पांव का तलधा खोखला हो जाता है। कभी २ इस पाद क्षत से गलित क्षत (गैंग्रिन) हो जाता है। आक्रांत

स्थान में सफेद दिखलाई पड़ता है। उसी भाँति शरीर का ताप कम हो जाता है और पांव की स्पर्श शक्ति नष्ट हो जाती है।

चिकित्सा

चिरकाल विश्राम कराने से क्षत अच्छा हो जाता है। इस से अच्छा न होवे तो मृत अस्थि को निकाम देना चाहिये।

कदर Corns

कड़ा जूता पहिनने से अथवा अन्य किसी कारण से चिर काल तक पाँव पर दृढ़ दबाव पड़े। इस से कदर पैदा हो जाता है, शरीर के अन्य स्थानों में भी देखा जाता है, और यह अधिक परिमाण में उत्पन्न होता है। यह दो प्रकार का होता है। जैसे कठिन और कोमल ये दोनों प्रकार का कदर पक कर समय २ पर व्रण में परिणित हो जाता है, कठिन कदर अधिक तर अगूंठा में पैदा होता है।

चिकित्सा

शल्य चिकित्सक कदर को शस्त्र से काट कर अलग कर देवे। सदा उस के ऊपर सेलिसिलिक ऐसिड, और कलोडियन लगाना चाहिये। इसके साथ २ उस पर दबाव न पड़ने पावे। कदर के नीचे पूय पैदा हो जावे, तो उसको चीर कर बाहिर कर देवे, वृद्ध, वा, बहुमूत्र वाले रोगी के यदि कदर होवे तो अनेक समय वह गैंग्रिन हो जाता है इस लिये उसको काटना अच्छा नहीं है,

विपादिका चिलब्लेन्स Chilblains

शैत्य वा जल के स्पर्श से, पाव, अथवा हाथ कीअंगुलियों में जो स्थानिक रक्त पूर्णता हो जाती है। सामान्य प्रकृति का होने से इसमें कुछ कष्ट नहीं होता है, किन्तु भारी होने से शुड़ २ शब्द होता है, और उसमें खाज पैदा हो जाती है,

चिकित्सा

व्यायाम और पुष्टि कर आहार से शोणित सञ्चालन की वृद्धि करे, उसमें उत्तेजक लिनिमेन्ट मर्दन करे, और पशमीने के मोजा और दस्ताना पहिने। वह फट जावे, तब आक्साइड आफ जिङ्क, को लगा कर बाँध देवे, इसके साथ रोगी को आर्सेनिक खाने को दिलावे

चिप्प Onychia

नख पक जावे तो इसको चिप्प कहते हैं, रोग के आक्रमण से नख पक जाता है,

और उससे दुर्गन्ध वाला मवाद निकलता है बालकों की अंगुलियों में आघात लग कर प्रदाह पैदा होने से चिप्प हो जाता है। उपदंश होने से भी यह चिप्प पैदा होता है। नख में खाज होने से अथवा सोरायसिस न-होने पर भी यह हो सकता हैं, किन्तु यह कम होता है। चिप्प होने से अँगुलियों का माथा सूज जाता है, इससे नख सिकुड़ जाता है; और उसके ऊपर में अथवा पार्श्व में अर्ध चंद्राकार क्षत हो जाता हैं। इसमें दुर्गन्धि से युक्त स्राव निकलता है। इससे अंगुलिका शेष खण्ड नष्ट होने की सम्भावना है।

चिकित्सा

नख काला हो जावे, अथवा सिकुड़ जावे, तो संदंश से पकड़कर उसको उखाड़ कर अलग कर देवे, और उसके ऊपर नाइट्रेट आफ लेड का चूर्ण डालना चाहिये। रोगी के शरीर में उपदंश का विष होवे तो क्षत स्थान में कैलोमिल का चूर्ण डाले, अथवा लेकवाश से धोया करे, और मर्करी और आइयोडाइड आफ पोटासियम उपयुक्त मात्रा में खाने को देवे रोग कष्ट साध्य हो जाने पर नख को छीलकर अलग कर देवे, अथवा कास्टिक से उसको नष्ट कर देवे।

विस्फोटक Curbuncle

प्रकृति—दूषित स्फोट (फोड़ा) को विस्फोटक कहते हैं। स्फोट के साथ इसका कुछ भेद है, इसका मुख चपटा होता हैं, किन्तु स्फोट का मुख पतला होता है। इससे आक्रान्त अंश में गैंग्रिन (गलित क्षत) हो जाता है। और वह गैंग्रिन ग्रस्त अंश पूतिमांस (श्लफ) से युक्त हो जाता हैं, इससे अनेक समय बड़े बड़े कठिन रोग प्रकाशित होते हैं।

कारण

अधिक गरीब होने से अथवा अधिक अमीर होने से शरीर की दुष्टि गठिया वायु बहुमूत्र, ऐल्ब्यूमिन्यूरिया टाइफस ज्वर और अन्यान्य ज्वर और घर्षण वा सन्ताप इसके उत्तेजक कारण रूप में कार्य करते हैं। इसलिये यह ग्रीवा, पीठ नितम्ब प्रदेश में अधिक होते हुये देखा जाता है। पूय को पैदा करने वाले जीवाणु सब विस्फोटकों (कारबंकलों) के कारण है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष के अधिक होता हैं और मध्य अवस्था के व्यतीत होने पर अधिकतर इसका आक्रमण देखा नहीं जाता है। बहुमूत्र (डायाबिटीज के साथ इसका अधिक सम्बन्ध देखा जाता हैं। मुख में और मस्तक में पैदा होने पर यह अधिक विपत्ति जनक है।

लक्षण

आक्रान्त स्थान पहिले कठिन हो जाता है, फिर फूल जाता है। साथ २ थोड़ा २ ज्वर भी हो जाता है। ज्वर की प्रकृति मृदु होने से अवसन्नता प्रकट होती है। फूलना धीरे २ बढ़कर फैल जाता है, उसका आयतन अत्याधिक परिमाण में गोलाकार होता है मुख चपटा होता है, वह कड़ा और लाल होता है। धीरे २ इसके वर्ण में परिवर्तन हो जाता है। देखते ही उसके ऊपर की त्वचा फट जाती है। स्फोट के ऊपर बहुत से छेद बाहिर दिखलाई देते हैं। इन सब छेदों से एक प्रकारका पीला पूति माँस दिखलाई पड़ता है इसके वे गड्ढे बंद हो जाते हैं, वही सड़ा हुआ मांस धीरे २ बाहर निकलता है। इस समय इसके नीचे एक अँकुर वाला व्रण दिखलाई पड़ता है, इस अवस्था में प्रदाह बढ़ जाता है, और रोगी देखते देखते ज्ञान हीन और अवसन्न होकर अत्यन्त निद्रा से अभिभूत हो जाता है।

चिकित्सा

तरल पुष्टिकारक आहार देवै, शरीर का ताप और नाडी की अवस्था के अनुसार उत्तेजक औषध देवै, रोगी को अधिक परिमाण में विशुद्ध वायु सेवन करावै। वेदना अधिक होवे, तो अफीम खिलावे, पहिले फोड़ा को टेढ़ा चीरे, किंतु ऐसे अस्त्रोपचार से अधिक मात्रा में रक्त निकलता है। रोगी बलवान् न होने से इसको सहन नहीं कर सकता है। विधान तन्तु जितनी दूर पक गये होवैं। उतनी दूर तक चीर देवै, उसके ऊपर बोरेसिक फोमेन्टेशन (सेंकना) करने से लाभ होता है। विस्फोटक का आयतन बड़ा होवे, तो मृत तन्तु आदि काटकर निकाल देना चाहिये। अथवा वकमैन के स्पून (ताल० शस्त्र) से छील देवै।

कोई कोई चिकित्सक उसके बाद विस्फोटक के ऊपर विशुद्ध कार्बोलिक एसिड लगाने के लिये कहते हैं। उसके बाद उस गड्ढे में आइडाफार्म की बत्ती प्रविष्ट कर देवें, इससे फोड़ा जल्दी भर जाता है। बहुत चिकित्सकों का सिद्धान्त है, कि रोग की प्रथम अवस्था में विस्फोट के चारों तरफ के विधान तंतुओं में कार्बोलिक एसिड लगाने से सब जीवाणु मर जाते है, इससे फोड़ा में पीव नहीं पडता है: स्थल विशेषमें इस चिकित्सा से लाभ होता है। किन्तु जीवाणुओं की प्रकृति कठिन होने से अधिकतर यह उपाय निष्फल हो जाता है।

मुख रोग Cancrum oris

प्रकृति और कारण—घनी बस्ती वाले बड़े बड़े शहरों में अथवा खराब मकानों में जो गरीब लोग वास करते हैं, उनके बालक बालिकायें इस रोग से अधिक आक्रान्त होते हैं। और जिनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और मसूरिका आदि स्फोट ज्वरों से जो पीड़ित रहते हैं, उनके यह रोग होता है। पहिले २ श्लैष्मिक झिल्ली कुछ छिल जाती है, फिर पीड़ित और दूषित दाँत के लगने से उसमें प्रदाह होता है। बाद को गलित क्षत (गैंग्रिन) पैदा हो जाता है। इसमें गाल के अन्दर पुल्टिस के समान घाव दिखाई पड़ता हैं, उस से अति दुर्गन्धिवाला स्राव निकलता है, वह गले में गिर कर उदर में पहुंच जाता है। इस लिये रोगी का निश्वास बहुत दुर्गन्धि से युक्त होता हैं, गैंग्रिन की अवस्था बाहर और भीतर बढ़ जाती है, गाल फूल कर मुलायम हो कर और फैल जाता है, भारी पीडा होने से मुख की सब अस्थियां आक्रान्त होकर मृत हो जाती हैं, जिह्वा, और, तालु में में भी गैंग्रिन फैल जाता हैं।

लक्षण

इसमें कठोर (मलाक्क रक्त सैप्रिमिया) के लक्षण प्रकट होते हैं। पूय, रक्त, आदि उदर में गये हुए पूति पदार्थ लसीकाओं में प्रविष्ट होकर समय पर (कीटाणु जन्य श्वसन कज्वर) से पाटक यूमोनिया हो जाता है, कभी २ विपाक रक्त (सेप्टिसिमिया) अथवा पूय दूषित रक्त जन्य रोग (पाइमिया) प्रकाशित हो जाता हैं, पीडा के पहिले अधिक ज्वर, और शरीर कांपने लगता है। अन्त में रोगी शिथिल होकर मृत्युके मुखमेंगिरजाता है

चिकित्सा

बालक के जीवन की रक्षा करना हो, तो शीघ्र ही चिकित्सा करनी चाहिये। रोगी का स्पर्श ज्ञानहारक औषधि से स्पर्श ज्ञान नष्ट कर व्लाक मैन के स्पून (ताल शस्त्र) से उस गाल के घाव को छील देवै। उसके बाद उस उपयुक्त स्थान में विशुद्ध, कार्बोलिक एसिड अथवा, तीक्ष्ण, नाइट्रिक एसिड लगा देवे, मुख की कोई अस्थि आक्रान्त हो गई होवे तो उसको काट कर निकाल देवे। यदि किसी दांत में खराबी होवे तो उस को उखाड़ देवे तरल पुष्टि कारक आहार देवे। पचन निवारक लोशनों द्रव से धोवै। जैसे सोल्युशन (१ औं० १० ग्रेन) बोरोग्लिसरीन (१औं० २० ग्रेन) परमेगनेट, आफ पोटाश क्लोरेट आफ पोटाश (१औं १० ग्रेन) कुल्लासे मुख केभीतर धोवै पहिले कईदिनकेलिये आफ पुटाश एसिड डाइल्यूटहाइड्रो क्लोरिकएसिड अथवा सिनकोनाका फान्ट एकत्र मिलाकर सेवन करने के लिये देवै और कठोर प्रकृति की व्याधि में यह चिकित्सा करनी चाहिये। उसके बाद, कुनेन और लोह भस्म का प्रयोग करे। इस रोग के शान्त हो जाने पर गाल के भीतर कड़ा पड़ जाता है, इससे हनु, चलाने मेंकष्ट होता है,

विशेष अस्थि भग्न प्रकरण

नासास्थि भग्न—लाठी, मुक्का, दण्डा आदि की चोट से नाक की अस्थियां भग्न हो सकती हैं। चोट मामूली होने से अस्थि के प्रान्त में अधिक तर मामूली ही अभिघात लगता है। किन्तु आघात भारी होने से नासा मूल के साथ २, ललाटास्थि, और करोटि में भी आघात लगने की सम्भावना रहती है। बालकों की केवल उपास्थि ही भग्न हो जाती हैं। इसलिये मुख का भाव बिगड़ जाता हैं और अधिक रक्त निकलना, त्वगधस्ताद् वायु प्रवेश (सर्जिकेल एम्फाईजिमा) और मस्तिष्क के सब लक्षण इस के उपसर्ग होकर समय २ पर प्रकाशित होते हैं, ऐसे आघात से समय २ पर पर प्राचीर (सेप्टम्) भग्न और नीचा हो जाता है। कभी २ दूसरे प्रकार के आघात में केवल टूटा हुआ देखा जाता है।

चिकित्सा

उपयुक्त ज्ञान हारक औषधि की सहायता से शीघ्र ही यह अस्थि ठीक २ बैठ देना चाहिये मुचुंडो Dressing Florcepssड्रेसिङ्गफर्सेप्स के तुल्य कोई मुड़ी हुई धार वाले अस्त्र से यह कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है। नासिका के छेद के अन्दर में स्थापन पूर्वक गटापार्चा (रबड़ जैसा) अथवा धातुओं का पट्टा (स्प्लिन्ट) उस के ऊपर बैठा देवे। उपयुक्त यन्त्र, वा अस्त्रोपचार से स्थानिक अङ्ग विकृति का प्रतिकार किया जा सकता है।

ऊर्ध्व हन्वास्थि का भग्न

लाठी, मुक्का, बन्दूक, की गोली की आघात से ऊर्ध्व हन्वस्थि भग्न हो जाती है। भग्न होने पर अधिक तर वह जटिल भग्न (कम्पाउण्ड) हो जाती है। इस से, वायु मन्दिर (ऐलव्यूल) का अंश, सम्पूर्ण रूप से, अथवा आंशिक रूप से विच्छिन्न हो जाता है। अथवा तिरछा फट जाता हैं। इस से सम्पूर्ण तालू और मुख के नीचे का भाग शिथिल होने की सम्भावना है। भयङ्कर आघात से मुख की सब हड्डियाँ चूर २ हो जाती है, इस से अधिक मात्रा में रक्त निकलने की सम्भावना है इस रोग की चिकित्सा करने पर रोगी को शान्त रक्खे और शीतल लोशन का प्रयोग करै। नल के द्वारा रोगी को आहार देवै, भग्न वायु मन्दिर (एलव्यूल) में, दन्त फलक (डेन्टल प्लेट) स्थापन करै,

निम्न हन्वास्थि का भग्न

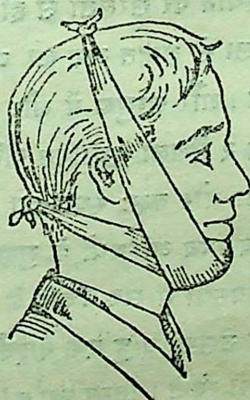
अधिक तर सामने की आघात से निम्न हन्वस्थि भग्न होती है। कभी २ अग्रा-

त्यक्ष आघात से भी भग्न हो जाती है। चिबुक संधि सिम्फिसिस, में अधिक बल-प्रयुक्त होने पर हन्वास्थि कभी कभी—दो स्थानों में भग्न हो जाती है। इसमें दांत का मसूड़ा छिल जाता है। और वहां की स्नायु और रक्त नाली, आहत हो जाती है। मुख से रक्त निकलता है। अथवा थूकके साथ रक्त निकलता है।

चिकित्सा

आघात सामान्य होने पर चतुर्लाङ्गूल बन्धन बाँधनाचाहिये। इससे अनेक समय कार्य सिद्ध हो जाता है। एक गज लम्बा, चार इंच चौड़ा वस्त्र का टुकड़ा लेवै। उसके दोनों किनारे दो २ इञ्च नाप करके चार इञ्च चीर देवे। और आठ इञ्च अखण्डित वस्त्र रक्खे। इसके बाद उस वस्त्र के मध्य में लम्बा चीर देवै। उस छेद में रोगी की ठोड़ी को रक्खे। इसके बाद नीचे के दोनों टुकडों को उठा कर माथा के ऊपर में और ऊपर के दोनों खंडों को उसके पीछे भाग में लेजा कर के गांठ बांधे। तीन सप्ताह तक यह बन्धन बांध रक्खे, उस समय में रोगी से बात चीत न करैं। और भी किसी कारण से मुख को न हिलावैं। जितने दिन बन्धन बंधा रहे। उतने दिन तरल पदार्थ देवै। दांतों की पंक्ति के मध्य से तरल पदार्थ को डाल देवै। पाक को दूर करने वाली औषधि पिचकारी से प्रयोग करके मुख के अन्दर सदा धोवै। पांच सप्ताह में भग्न अधिक तर फिर जुड़ जाता है। रोगी विह्वल होवे, और इस यंत्र से कार्यकी सिद्धि न होवे। तो गटापार्चा (रबड़) के धातु तुल्य अथवा चमड़े का पटरी (स्प्लिन्ट) स्थापन करै।

हन्वास्थि बन्धन चित्र



पर्शुका भग्न Hracture of Ribs

कारण—पसलियां दो प्रकार के कारण से भग्न हो जाती हैं। (क) प्रत्यक्ष बल प्रयोग से—जैसे आघात, अथवा छुरी का अघात, इसमें भग्नांश भीतर की तर्फ प्रक्षिप्त हो जाते हैं। और अन्दर की फूप्फुस परिवेष्टनी कला (प्लूरा) फुप्फुस यकृत. अथवा वक्षोदर मध्यस्थ महा प्राचीरक पेशी (डाया फ्राम) में विध जाते हैं।

(ख)-अप्रत्यक्ष बल प्रयोग में बाहर से दबाव पड़ता है। जैसे—गाड़ी का प. हिया छाती पर से निकल जावे। अथवा गाड़ी की जुअट से दीवाल के मध्य में दब जावे द्वितीय प्रकार की अपेक्षा प्रथम प्रकार से अधिक रक्त स्राव होता हैं। पसलियों के मध्य में पांचवी से आठवीं पसली तक अस्थि का अभिघात अधिक देखा जाता है।

लक्षण

इसके सब लक्षण साफ २ दिखलाई देते हैं। भग्न स्थान में दारुण वेदना होती है, निःश्वास, प्रश्वास में खांसी श्वास, में अधिक वेदना होती हैं कभी २ वह स्थान फूल जाता है। भग्न स्थान पर हाथ फेरने से वह साफ २ मालूम पड़ जाता है। कई पसलियां एक स्थान में भग्न हो जाने से उस स्थान में गढ़ा पड़ जाता है। किन्तु अस्थि वसा और पेशी से आवृत होने पर अनेक समय यह अवस्था सहज से नहीं जानी जाती हैं।

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा अनेक स्थान पर सरलता से ही हो जाती है। चिपक वाले पलस्तर (एटिसिव प्लष्टर) की मेखला से आहत अंश को आच्छादित रक्खे। एक २ मेखला १॥ इञ्च से २ इञ्च तक चौड़ी होवे। और सम्मुख में और पश्चात में मध्य रेखा को अतिक्रमण करे। नीचे से ऊपर में एक २ मेखला स्थापित करे। और प्रत्येक निम्न मेखला के मुख के ऊपर २ की मेखला और वक्षः स्थल को खुला रक्खे। सब के ऊपर पशमीने का दृढ़ बन्धन बांधें। सब भग्न अस्थियों के मुख अन्दर को होने से मेखला का बंधन असह्य हो जाता है। इस अवस्था में सब प्रकार के बन्धन को दूर कर देवें। रोगी को शय्या पर लिटाये रक्खे। और उसकी बाहु एक पार्श्वमें बाँध देवे। उसके दोनों स्कन्धों के मध्य में एक बालू की थैली रक्खे। निम्न पर्शुकाओं के भग्न होने पर दृढ़ बन्धन नहीं बांधना चाहिये, कारण यह है। कि उससे वक्षोदर मध्यस्थ महा प्राचीरकपेशी (डायाफ्राम) में उग्रता होने की सम्भावना है।

ऊर्ध्वांग का भग्न

जत्र्वस्थि—अनेक कारणों से जत्रु सन्धि प्रायः भग्न हो जाती है। केवल बहिः प्रकोष्ठास्थिरेडियस, को छोड़ कर शरीर की और कोई अस्थि इतनी शीघ्र और साधारण भाव से भग्न होती हुई देखी नहीं जाती है। घोड़े की पीठ से अथवा अन्य किसी ऊंचे स्थान से गिरने पर जत्रु अस्थि भग्न हो जाती है। यह अभिघात बालकों के अधिक होता है पुरुषों के कम होता है। और सबसे कम स्त्रियों के होता है। अस्थि प्रायः चार स्थानों में भग्न होती है।

उपसर्ग--जत्रु अस्थि के भग्न होने पर निम्न लिखित कई विपत्तियां देखी जाती हैं सब क्लेवियन वेन (अक्षाधरा शिरा) अथवा बाहु गत नाड़ी जाल (ब्रेकियल प्लेक्सस)

चिकित्सा

आघात सामान्य होने पर शय्या पर रोगी लिटावे, बाहु को स्थिर रक्खे। स्थल विशेष में अंग्रेजी भाषा ८ के अंक के समान बंधन बाँधै इस अवस्था में स्कंध के ऊपर बंधन स्थापित करे एक सींका में कोहनी को रक्खें।

अंस फलक Scapula

असफलक चार स्थानों में भग्न हो सकता है, अंस कूट (एक्रोमियन प्रोसेस) अंसतुण्ड (कोरेकाइड) अंसफलक का देह, अंसफलक की ग्रीवा, स्कन्ध के ऊपर प्रत्यक्ष बल प्रयोग से अंसकूट भग्न हो जाता है। इस अवस्था में बाहु में बल नहीं रहता है, कोहनी को उठा कर बाहु बन्धन करने पर इसका प्रतीकार हो जाता है, कभी २ अंसतुण्ड भी भग्न हो जाता है, भग्न होने का कारण केवल अंस के ऊपर प्रयोग ही है प्रत्यक्ष रूप में कठोर बल न लगे तो भग्न नहीं होता है। भग्न से इसकी स्थूल पेशियां भग्न हो जाती है,। उक्त रूप कावन्धन बाँधने से इसकी चिकित्सा होती है,।

प्रगण्डास्थि Humerus का भग्न

प्रकार भेद —प्रगण्डास्थि तीन स्थानों में भग्न होती है, वे तीन स्थान नीचे लिखे जाते हैं, जैसे इसका ऊर्ध्व प्रान्त इसकी भुजा और निम्न प्रान्त। प्रत्यक्ष बल प्रयोग से अथवा ऊंचे स्थान से गिर पड़ने पर ये स्थान भग्न हो जाते हैं, इसके ऊर्ध्व प्रान्त का भाग चार प्रकार का होता है जैसे अन्तान्तरिक (इन्ट्रा कैप स्यूलर) बाह्य कोष्ठ

कोष (एकष्ट्रा कैप्स्यूलर) ऊपर वाले तरुण प्रान्त — (एपिफाइसिस) का विभेद, और महा शिखर (ग्रेटर ट्यूबरोसिटि) का भग्न।

अंसान्तरिक इन्ट्राकैपस्यूलर

प्रथम प्रकार—अंसान्तरिक (इन्ट्राकेस्पूलर) के भग्न में प्रगण्डास्थि का माथा कोष के मध्य में ही होता है। किन्तु वह ऐसा अलग हो जाता है। कि सब तरफ घुमाया जा सकता है, ऐसा रूप न होकर कभी २ इसके ऊपर का अंश निम्न अंश के साथ मिल जाता है इसका कारण प्रत्यक्ष बल प्रयोग है,। अथवा माथा पर अथवा स्कन्ध के ऊपर गिर पडना भी होता है, इसके लक्षण बड़ी कठिनाइ से जाने जाते हैं। इस लिये वेदना, स्फीति, सञ्चालन में बाधा आदि साधारण चिह्न अधिक तर देखे जाते है,

चिकित्सा

पहिले बगल में एक गद्दी (पैड) रक्खे, बाहु के बाहर भाग में और स्कन्ध में चमड़े की गद्दी का प्रयोग करे, अंगुलियों से बंधन प्रारम्भ करके प्रगण्ड तक बांध देवे, ऐसा करनेमें हाथ और नहीं फूल सकता हैं। तीन सप्ताह के मध्य में मृदु सञ्चालन और कग वर्तन करना चाहिये कोई २ शल्य चिकित्सक पहिले करा वर्तन करने के लिये कहते है। प्रगण्डास्थि मस्तक स्थान से हट जावे तो उसको फिर बैठाने के लिये उद्योग करना चाहिये।

वाह्य कोष्ठकीय एकूस्ट्रा (कैपस्यूलर)

स्कन्ध के मध्य में वाह्यकोष्ठकीय (एकष्ट्राकैपस्यूलर) का भग्न अधिक देखा जाता है। इसके चिह्न, वेदना, स्फीति, वा, शोथ, और सञ्चालन में बाधा, आदि होते हैं। बाहु देखने में भी साफ २ छोटी मालूम होती हैं। बाहु को घुमाने पर उसका माथा, अंस पीठ (ग्लनइड गह्वर) में, स्थिर हो जाता है और फैलाने पर, चुड़ २ शब्द की पिटल, सुनाई पड़ता है। इस की चिकित्सा पहिले के समान है।

ऊर्ध्व तरुण प्रान्त (एपिफेसिस्) का विभेद

एक्कीस वर्ष के नीचे ही ऊर्ध्व, तरुण प्रान्त (एपिफेसिस) का विभेद देखा जाता है। इस के चिह्न और चिकित्सा, वाह्य कोष्ठकीय (एकष्ट्राकैपस्यूलर) के भग्न के समान ही है।

बृहत्तर शिखर, या, पिण्डा (ट्यूबरोसिटी) का भग्न

यह भग्न अत्यन्त कम होता है। अत्यन्त बल प्रयोग के बिना यह भग्न नहीं होता है, इस प्रकार के भग्न में स्कन्ध का विस्तार बढ़ जाता है, बृहत्तर शिखर

वरोसिटी) और अस्थि के माथा के मध्य में एक तिरछी दरार-प्रकाशित हो जाती है। भग्न खण्डों को इकट्ठा करने की कोशिश करे। बगल में एक गद्दी और बन्धनों से उस के संयोग की रक्षा करे। स्कंध के ऊपर पट्टी बांधे। बाहु के उसी तरफ रक्खे।

काण्ड भग्न

प्रगण्डास्थि का काण्ड जिस स्थान में भग्न हो जाता है। उस का प्रधान कारण प्रत्यक्ष बलप्रयोग है, कहीं २ पर पेशिक कार्यसे भी भग्न होजाता है, परन्तु ऊपर के भाग कीअपेक्षा नीचे का भाग अधिक भग्न हो जाता है। इसके चिह्नों के मध्य में वेदना बिशेष संचालन, और अधिकतर, विकृति, आदि है, चुड़ २ शब्द (क्रेपटिस) सहज में ही सुन पड़ता है ।

बाहु और हांथ की एकबार कोने वाली पटरी (स्प्लिन्ट) से अन्दर रक्षा करे साथ २ प्रगण्डास्थि के ऊपर तीनछोटे छोटे पार्श्व फलक (पटरा) स्थापित करे उनमें एक सामने एक पीछे एक बाहरकी तरफ होनी चाहिये अथवा, प्रगण्डास्थिके ऊपर छोटे२ पटरा बांधे कोहनी को फांक में रखकर, हाथ को एक सींका में झुलाता रहे। एक मास, से छः सताह तक स्प्लिन्ट (पटरा) बाँधे रक्खे शोथ दूर करने के लिये अंगुलियों को और हाथ का बाँधे रक्खै ।

भग्न भेद

प्रगण्डास्थि के निम्न प्रान्त में चार प्रकार का भग्न देखा जाता है।

(च) तिर्यग्भग्न

(छ) तरुण प्रान्त (एपिफेसिस) का बिभेद

(ज) प्रगण्ड के अर्बुद का टूटना (कण्डाइल का भग्न)

(झ) T, के आकार में भग्न

प्रथम प्रकार का भग्न, अर्बुद (कंडाइल,) के ऊपर में, और नीचे में हो सकता है। इस से हाथ छोटा पड़ जाता है और बाहु के ऊपर का भाग समकोण में आनत हो जाता है. विशेष कर, लकोनन्, पीछे की तरफ बाहर हो जाता है। द्वितीय प्रकार के सब चिह्न प्रथम प्रकार के तुल्य ही हैं। भेद यही है, कि इक्कीस वर्ष की अवस्था के ऊपर ऐसा भग्न नहीं होता तृतीय प्रकार में अर्थात् के आकार वाले T भग्नमें दोनों अन्तरार्बुद बाह्यार्बुद (कडाइल,) के ऊपर एक तिरछा चिह्न देखा जाता है चतुर्थ प्रकार में दोनों अर्बुद (कंडाइल) भग्न हो जाते हैं। विशेष कोई लक्षण स्वतन्त्र प्रकाशित नहीं होते हैं ।

चिकित्सा

अधिक फूला होवे तो प्रत्यङ्ग को एक तकिया के ऊपर अथवा स्ट्रमियर Strmiyar की गद्दी के ऊपर होने से और अच्छा है। इसलिये उसके ऊपर रक्खे और शीशे का द्रव

(लेड़ लोशन) अथवा वर्फ के तुल्य शीतल परिषेक करे। जब तक सूजन कम न होवे तब तक यही चिकित्सा कर इसके बाद भग्न का फिर सन्धान करे। बाहु और हाथ एक काने वाले स्प्लिन्ट (फलक) पर रक्खे। सन्धि भग्न होने पर जितनी जल्दी हो सके बाहु हिलावे।

वहि प्रकोष्ठास्थि और अन्तः प्रकोष्ठास्थि का भग्न

वहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) और अन्तःप्रकोष्ठा स्थि (Ulna) प्रत्यक्ष बल प्रयोग से भग्न हो जाती है। कभी २ प्रत्यक्ष बल प्रयोग में, जैसे हाथ के ऊपर भार होने से गिर पड़ने पर अन्तः प्रकोष्ठास्थि, और वाह्य प्रकोष्ठास्थि का दुर्बल अंश भग्न हो जाता है, ये दो प्रत्यङ्ग भग्न होने पर साफ २ अङ्ग विकार दिखलाई पड़ता है. चुड़ २ शब्द (क्रेपिटस) सुनाई पड़ता है, पेशिओं को शिथिल रखने के लिये कोहनी के ऊपर कपड़ा लपेट देवे, भग्न संधान करने के लिये मुलायम गद्दी वाला पार्श्व फलक सम्पूर्ण अँगूठे के ऊपर रख करके हाथ को बांध देवे, चौविस घण्टे के मध्य में एक वार और रोगी परीक्षा करे हाथ को फूला हुआ देखे, तो बन्धन को शिथिल कर देवे। अधिक तर एक मास तक पार्श्व फलक बाँधना आवश्यक होता है, सब अंगुलियां जिससे शिथिल न पड़े, इस लिये मध्य २ में थोड़ा २ करके अङ्गुलियों को हिलावे।

निम्न अङ्ग का भग्न

यहां पर केवल जान्वस्थि, अग्रजंघास्थि, पांव, पार्ष्णि का भग्न संक्षेप से वर्णन किया जावेगा।

जान्वस्थि का भग्न

जान्वस्थि—पैशिक बल और प्रत्यक्षबल प्रयोग से एक बार में द्विधा भग्न हो सकती है प्रत्यक्ष बल प्रयोग से यह तिरछा अथवा ताराकार में भग्न हो जाती हैं, । उसके साथ २ त्वचा के नीचे तन्तु कला आदि भग्न हो जाते हैं, भग्न सम्पूर्ण होने पर चुड़ २ शब्द (क्रेपिटस) सुनाई पड़ता है, इसकी चिकित्सा में कोई विशेष आडम्बर नहीं है, एक पृष्ठ फलक स्थापन करके रोगी को विश्राम करने देवे। और प्रयोजन होने पर उड्डायी लोशन का प्रयोग करे; सन्धिस्थल में अधिक रक्त इकट्ठा हो जाने पर शीघ्र ही उसके ऊपर हल्के २ हाथ फेरना चाहिये। पेशिक बल से यदि जान्वस्थि भग्न हो जावे तो वह अधिक तर कठोर भाव को धारण करती है, और भग्न प्रत्यङ्ग का विषम ही विश्लेषण होता है. जान्वस्थि के भग्न होने से उसके चिह्न साफ २ मालूम पडते है। सम्पूर्ण प्रत्यङ्ग की शक्ति कम हो जाती है, कालीशिरा, और वेदना सन्धि स्थान का बिस्तार हो जावे उस में रक्त इकट्ठा हो जावे, और सब भग्न खण्ड अलग २ दिखलाई पड़े।

चिकित्सा

यंत्र प्रयोग और अस्त्र प्रयोग इन दो उपायों से जान्वस्थि के भग्न की चिकित्सा हो सकती है, भग्न सामान्य होवे । अर्थात दोनों खण्ड अत्यन्त पृथक न हुये होवें, तो यंत्र से कार्य सिद्ध हो सकती हैं. इसी उद्देश्य से कोई, प्लैष्टर आफ पेरिस अथवा कोई पृष्ठ फलक, कोई २ उड महोदय का पार्श्वफलक (स्प्लिण्ट) व्यवहार करने के लिये कहते हैं, किन्तु इन सब उपायों से भग्न और विभक्त तन्तुओं का ही फिर संयोजन साधित हो सकता है, अस्थि दूसरी बार में कभी २ जुड़ जाती है, सदा नहीं जुड़ती है । इस लिये त्वचा के नीचे अनेक प्रकार के अस्त्रोपचार किये जाते हैं । डाक्टर बर्कर, भग्नअस्थि का पश्चात भाग पहिले सीने के लिये कहते हैं, परन्तु ये व्यापार अत्यन्त कठिन है, इस लिये धन्वन्तरि वैद्यों को ही यह काम है ।

अग्र जंघास्थि और अनु जंघास्थि का भग्न

अग्रजंघास्थि और अनु जंघास्थि एक साथ२ अथवा एक २ भग्न हो जावे, परन्तु दोनो अस्थियों का एक ही साथ भग्न हो जाना साधारण हैं, ये प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष बल प्रयोग से भग्न हो जाती हैं । किन्तु जिस स्थान में बल लगता है । ठीक उसी स्थान में दोनों अस्थियाँ भग्न हो जाती हैं । किन्तु अप्रत्यक्ष बल प्रयोग से भग्न होने पर सबसे पहिले अग्रजंघास्थि का दुर्बल अंश भग्न हो जाता है । उसके बाद अनुजंघास्थि भग्न होती है ।

अग्र जंघास्थि

पांव के आघात से अथवा अन्य किसी आघात से प्रत्यक्ष बल के द्वारा अग्र जंघास्थि भग्न हो जाती हैं । और गिर पड़ने से जो भग्न होता है । उसको अप्रत्यक्ष बल से भग्न हुआ कहते हैं । केवल अग्र जंघास्थि के भग्न होनेपर उसके नीचे का तीसरा भाग भग्न हो जाता है, इसभग्न का आकार तिरछाहोता है, इसमें थोड़ा ही अस्थि विश्लेषण होता हैं । अनुजंघास्थि "स्प्लिन्ट के समान भग्न हुये दोनों खंडों को पकड़ता है ।

अनुजंघास्थि

केवल अनुजंघास्थि का भग्न अग्रजंघास्थि की अपेक्षा अधिक देखा जाता है । यह भग्न अप्रत्यक्ष बल प्रयोग से अधिक होता है । पांव को पकड़ करके मरोड़ देवै, अथवा जोर से खींच लेवै, तो अनुजंघास्थि भग्न हो जाती है । इस अस्थि भग्न के साथ २ पाँव बाहिर की तरफ हट जाता है, उसको जंघास्थि गुल्फोर्ध्वभाग भग्न (पोटस फ्रैक्चर) कहते हैं ।

चिकित्सा

अग्रजंघास्थि और अनुजंघास्थि, भग्न हो जावे, और उसके साथ कोई उपद्रव न होवे, तो भग्न हुए पैर को पेरिस के पलस्तर के फलक (स्प्लिन्ट) से जल्दी ही बांध देवे, रोगी को कई दिन तक शय्या पर लिटाये रक्खे, इसके बाद कक्ष दण्ड (क्रच) के ऊपर भारदेकर चल सकता है। अधिक फूला होवे, तो पृष्ठ फलक के ऊपर पैर के आगे का भाग कई दिन तक बांधे रक्खे। उसके बाद सूजन कम होने पर पेरिस का पलस्तर प्रयोग करे। दोनों अस्थियों में सीधा भग्न (सिम्पल फ्रैक्चर) होवे, और अधिक फूला न होवे और अस्थि विश्लेष न होवे, तो इसी चिकित्सा से अनेक स्थलों पर लाभ देखा गया है। स्प्लिन्ट प्रयोग करने के पहिले भग्न अस्थि का संधान अर्थात् यथा स्थान में सन्निवेश (Reduction) करना आवश्यकीय हैं।

सन्धि च्युति

गुल्फ सन्धि होकर स्थान से हट जावे इसमें अधिकतर पांव बाहर की तरफ में स्थान से हटता है, इसका नाम पटस फ्रैक्चर है पांव पिस जावे। अथवा मोच खा जावे तो सन्धि का भग्न हो जाता है। कभी २ पांव भीतर की तरफ भग्न हो जाता है। इसका नाम डुपूइट्रेनिक भग्न (डुयूइट्रेनका फ्रैक्चर) है। आकर्षण और आवर्तन से इसभग्न को सन्धान करके डुपूइट्रेनका फलक (स्प्लिन्ट) बांधे।

मस्तक का अभिघात

प्रकृति—अस्त्र शस्त्र, अथवा लाठी के आघात से अथवा बंदूक की गोली के प्रहार से अथवा नीचे को शिर होकर गिरने से और भी अनेक कारणों से माथा में अभिघात लगता है। करोटि के ऊपर में त्वचा, मांस आदि अधिक हैं। इसलिये दण्ड से आघात लगने पर एक सुपरिच्छन्न सद्योव्रण देखा जाता है, उसके देखने से मालूम होता है। कि कोई तेज धार वाले अस्त्र से माथा काटा गया है, सद्योव्रण गहरा न होने से कोई विपत्ति की आशंका नहीं है कारण यह है, कि वह सहज में ही अच्छा हो जाता है। किन्तु सद्योव्रण गम्भीर होवे, अर्थात् कपाल पोषणी कला (पेरिक्रेनियम्) तक आहत हो जावे। तो अवस्था भारी हो जाती है। इसलिये उसमें उत्कट प्रकृति का— मस्तिष्क परिवेष्टनी कला प्रदाह मेनिञ्जाइटिस होकर रोगीके प्राणभी नष्ट हो सकते है।

नोट— पटट्रेनिक एक शल्य चिकित्सक का नाम हैं। इसी के नाम से भग्न प्रसिद्ध है।

चिकित्सा

मस्तक के सद्य व्रण की चिकित्सा अनायास ही साध्य है। भलीभाँति क्षत को धो कर साफ करे, छिन्न हुये दोनों मुखों को सींकर के आपस में जोड़ देवै, प्रयोजन होने पर श्वाँस आदि के बिना बाधा के निकलने के लिये एक नल प्रवेश कर देवे व्रण के चारों तरफ से बालों को कटवा देवे, उसके बाद पाक से बचाने वाले बंधन को बांधें, मस्तक की कोई धमनी छिन्न, भिन्न हो जावे, तो उससे अधिक रक्त निकलता है। ठीक ठीक उपाय से उसका प्रतिकार करें।

करोटिका भग्न Feractures of The Skull

वर्णन के सुविधा के लिये करोटि का भग्न साधारण रीति से तीन भागों में विभक्त किया जाता है।

(च) गोलार्द्ध के फांट से युक्त भग्न।

(छ) तल देश का भग्न।

(ज) निमग्न, अथवा विदीर्ण भग्न।

प्रथम प्रकार--प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अधिक बल प्रयोग से करोटिको गोलार्द्ध भग्न हो जाता है। आहत स्थान में यह भग्न होता है। और, तला से कुछ दूर तक एक दरार फैल जाती है, दरार (Flissure) सामान्य होने पर कोई लक्षण प्रकाशित नहीं होते हैं मस्तिष्क के ऊपर में एक काली शिरा पड़ जाती है, उसके साथ मस्तक में संघात होने की सम्भावना है। जटिल भग्न होने पर उसके ऊपर एक लाल रेखा पड़ जाती हैं। अंगुलि भग्न स्थान में प्रवेश करने से विषम गढ़ा मालूम होता है।

अन्यान्य प्रकार

करोटिके तल देश के भग्न हो जाने से उस में दरार हो जाती हैं समय २ पर अस्थि विदीर्ण, वा, निमग्न हो जाती हैं। किन्तु यह घटना अत्यन्त कठोर है, बहुत कम होती हैं। प्रत्यक्ष, वा अप्रत्यक्ष बलयोग से यह घटना संघटित होती है। ऐसे भग्न की गति, तिरछी, उल्टी, टेढी, होती हैं। करोटिका भग्न अधिक तर जटिल होता है।

उपद्रव

करोटिका, तल भग्न, कठोर होनेसे सदा सांघातिक नहीं होता है इस समय शल्य चिकित्सा के प्रभाव से इस में और कोई विपत्ति नहीं देखी जाती है।

(१) मस्तिष्क के तल देश में आघात, साथ २ सेतुस्थान (विरोलाई) और, मध्य भाग (मेडल) आहत हो जाते हैं।

(२) मस्तिष्क की शिरा, और धमनी, से रक्त स्राव, होता है।

(३) मलाक्त शिरोवरोय कला दाह (सेप्टिक मेनिञ्जाइटिस) होता है।

चिह्नादि

समय २ पर कोई चिन्ह दिखलाई नहीं पड़ते हैं। सामान्य २ चिन्ह दिखलाई देने पर रोगी उन में कुछ ध्यान नहीं देता है।

इसलिये जो चिन्ह मालूम होते हैं। उन में से पांच लिखे जाते हैं।

(१) कान, नासिका, अथवा मुख से अथवा कोई सद्यो व्रण होवै तो उस से शिरोवर सौषुम्नो (सेरिब्रोस्पाइनेल) का स्राव निकलता है। यह जल के समान पतला होता हैं, जल के साथ कुछ २ अंश, क्लोराइड आफसोडियम, द्रव का मिश्रण होने से यह प्रस्तुत होता है, इस में बहुत कम परिमांण में क्षार द्रव्य मिले रहते हैं।

(२) इन सब अंशों से रक्त निकलता है, यह सामान्य आघात से भी हो सकता हैं।

(३) चक्षु के श्वेत मण्डल सेरक्त निकलै और शंखास्थि सम्बन्धी, गोस्तन प्रबर्द्धन (मैष्टाइड प्रोसेस) के निकट में हाली शिरा, चिह्न उससे भारी नहीं होते हैं।

करोटिका भग्न और बन्धन



(४) मस्तिष्क की एक, अथवा, अधिक स्नायुओं में आघात, होवै तो इन से युक्त अंश में, पक्षाघात, अथवा क्रियां का अभाव हो जाता है। जैसे, कनीनिका का विस्तार मुख की पेशियों का आक्षेप, अथवा, पक्षाघात, किन्तु अनेक समय ये सब चिह्न साफ २ जाने नहीं जाते हैं।

भावी फल

इस रोग के भावी लक्षण अधिक तर भयदायक होते हैं। मस्तिष्क प्रदाह से और उस के झिल्ली समूह के प्रदाह से अनेक समय मृत्यु भी हो जाती है।

चिकित्सा

जिससे मस्तिष्क में, अथवा उसकी झिल्ली में प्रदाह न होवे, इस विषयमें सबसे पहिले दृष्टि रखना चाहिये मस्तिष्क के अभिघात में स्थानिक औषधि से कोई सुबिधा— नहीं होती है, आहत स्थान को साफ कर उसके ऊपर बरफ, अथवा शीतल जल का परिषेक करे। लिष्टर के नल से यह कार्य अच्छी तरह से हो सकता है। विरेचन केलिये कैलोमेल देवें, खाने के लिये अनुत्तेजक आहार देवे, अंधरे घर में उसको रक्खे। रोगी को ६ सप्ताह तक विश्राम देवे, यदि श्रुतिपटह (मेम्ब्रोनाटिम्पेनाई) छिल जावे, तो उसमें दुर्गन्धि पैदा करने वाला पदार्थ न पैदा होवे, इसलिये कार्बोलिक और :साबलिमेट लोशन, से श्रुति नली (अडिटरी मियाटस) को धोवै, और कान के चारों तरफ और कान के ऊपर पवन निवारक बंधन बांधै।

निमग्न और विदीर्ण भग्न

बन्दूक की गोली से मस्तिष्क के गोलार्द्ध में छेद होकर फट जाता है, अथवा भग्न हो जाता है। प्रत्यक्ष बल प्रयोग से वा गिरने से, अथवा अन्य रूप के आघात में भी इस रूप का अभिघात हो सकता है, बंदूक की गोली से आहत होने पर, अधिक तर सब दारुण लक्षण प्रकाशित होते हैं। समय २ पर ये सामन्य भी होते हैं, कोने वाली गोली होवे, और बड़े वेग से छुटी होवे, तो मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर करोटी के दूसरे पार्श्व को भेदन करके बाहर निकल जाती है, इससे बहुत विपत्ति होती है। अल्प वेग से छुटी हुई गोली लगने पर कुछ अनिष्ट नहीं होता हैं, केवल आहत स्थान पिस जाता है।

गोली का आघात

बन्दूक की गोली के आघात से (गनशटवॉन्ड) सीधा (सिम्पल) और जटिल (कम्पाउड) ये दो प्रकार के सद्यव्रण पैदा होते हैं। भग्न सामान्य होने पररोगी मस्तिष्क संघात से कष्ट पाता हैं। किंतु इसका प्रतीकार न करनेपर शीघ्र ही रोगी मृत्युकेमुख के गिर जाता। जटिल भग्न (कम्पाउड फ्रैक्चर) का इतनी जल्दी अनिष्ट फल नहीं होता हैं। यहां तक कि अनेक समय रोगी के सामान्य संघात तक नहीं होता है। तब भी इसका प्रतीकार करना अत्यन्त आवश्यकीय है। करोटिकी अस्थि भग्न हुई बैठी हो

जावे, तो मस्तिष्क में और उसकी झिल्ली में प्रदाह होने की बड़ी सम्भावना है, अतः निमग्न खण्डों के विषय में विशेष दृष्टि रखना चाहिये।

चिकित्सा

इस प्रकार के मस्तिष्क के आघात को और सद्योव्रण की चिकित्सा बड़ी कठिन है। अनेक चिकित्सक एक बार में, इससे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं, किंतु पचन निवारक चिकित्सा प्रणाली को प्रचलन अवधि से शल्य चिकित्सक इस विषयमें अधिक परिमाण में साहसी हुये हैं, इस समय चक्राकार कर्तरी (ट्रेफाइन) का व्यवहार अथवा झिल्ली के जाल को खोल देते हैं। ऐसा कि (Brainsubstonce) मस्तुलुङ्ग के टूटने में भी विपत्ति नहीं होती है। इसलिये इस चिकित्सा की प्रक्रिया नीचे लिखे हुये तीन भागों में बांटी जा सकती है।

(१) सब प्रकार के छिद्र और विदीर्ण भग्न में, शस्त्र प्रयोग करें।

(२) सब प्रकार के जटिल निमग्न भग्न में शस्त्र प्रयोग करें।

(३) सामान्य निमग्न भग्न होने पर युवा व्यक्ति के मस्तक में शस्त्र प्रयोग करें, बालकों के होने से विशेष विवेचना करना चाहिये।

पहिले शस्त्र प्रयोग करना निश्चय कर लेवें, बाद को जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी शस्त्र प्रयोग करे, माथा के ऊपर के बालों को कटवा देवें, और अच्छी तरह से धो देवें। रोगी की अवस्था के अनुसार स्पर्श ज्ञान हारक औषध के प्रयोग के विषय में युक्ति पूर्वक निश्चय कर लेवे, करोटी मामूली भग्न हुई होवे, तो उसको बैठा देवे, उस सद्योव्रण के ऊपर में चिकित्सक भी चीरा नहीं लगावे, केवल उसके ऊपर का एक फ्लाप उठा लेना चाहिये भग्न के ऊपर रक्त जम जावें, तो उसको उसी समय निकाल देवें. और उस भग्न स्थान को साफ करके रक्खे, उसके बाद अस्त्र प्रयोग करके कुछ गरम कारबोलिक लोशन उसके ऊपर प्रयोग करे, सिद्धान्त यह है कि मस्तक के सब तरह के सद्योव्रण की चिकित्सा बड़ी कठिन है। शल्य चिकित्सक ही इसमें हस्तार्पण करें।

मस्तिष्क और उसकी झिल्ली समूह में अभिघात

प्रकृति—पतन, आघात, आदि प्रत्यक्ष और अनेक तरह के अप्रत्यक्ष कारणों से मस्तक में आघात लगते ही रोगी बेहोश होकर गिर पड़ता है, इसका पहला कारण आघात द्वितीय कारण मस्तिष्क का संघात पाया जाता है। इसमें रोगी की संज्ञा क्षण मात्र के लिये लुप्त हो जाती है, अथवा=चिरकाल तक अज्ञान में पड़ा रहता है। मस्तिष्क में संक्षोभ होने पर ठीक ऐसे ही लक्षण प्रकाशित होते है, इसलिये अनेक समय संक्षोभ (शक) और संघात में भेद जाना नहीं जाता है।

लक्षण

रोगी को सामान्य मूर्च्छा होवै तो सामान्य उपाय से ही चेतना आ जाती हैं भारी मूर्च्छा होने से तीव्र तड़ित प्रयोग करने पर भी चेतनता नहीं आती है, रोगी चित पड़ा रहता हैं । उसकी पेशियां शिथिल हो जाती हैं, आंखें बन्द हो जाती हैं । दोनों कनीनिकायें सिकुड़ जाती हैं । शरीर ठंडा पड़ जाता हैं, मुरझा जाताहैं. उसकी श्वास मृदु और अगम्भीर चलती हैं । नाड़ी क्षीण हो जाती है, पाखाना पेशाब बेहोशी में ही निकलता है, अवस्था कठोर होने पर अनन्त निद्रा में पड़ा रहता है, मृदु होने से प्रतिक्रिया शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाती है ।

चिकित्सा

रोगी को शीघ्र ही चारपाई पर लिटावे । उसके शरीर की अपेक्षा, माथा को नीचा रक्खे और सब अङ्ग कपड़े अथवा कम्बल से ढका रक्खे । हाथ पैरों पर गरम पानी वाली बोतल रक्खे और शरीर के ऊपर भी फेरै । उत्तेजक औषधि देना चाहिये । रोगी में निगलने की शक्ति होवे तो एक चम्मच चाय, पिलावे, अवस्था खराब होवै तो सरलान्त्र (रेक्टम्) से, सुरा, अथवा ईथर, का प्रयोग करे अथवा, त्वचा के नीचे स्ट्रिकनाइन प्रक्षिप्त करे । प्रति क्रिया आरम्भ होने पर विरेचन के लिये ५ ग्रेन, कैलोमिल, देवै । रोगी का आहार अनुत्तेजक, और पुष्टि कर होवे । उस का कोष्ठ सदा साफ रक्खें, उसको सब प्रकार की उत्तेजना से दूर रक्खें । मूर्च्छा चिरकाल तक रहे और उस का कोई कारण न जाना जावे तो रोगी के मस्तक के बाल कटवा देवे और उस पर बरफ रक्खे । अथवा लिग्टर ट्यूब (लिग्टर की नाली) का प्रयोग करे । अन्त्र, और मूत्राशय साफ रक्खे, अंधेरे घर में रक्खे । वहां पर शब्द नहीं होना चाहिये । पिचकारी से उसको पुष्टि कारक आहार देवै ।

शिरोवरिकांत्र वृद्धि (हर्निया सेरिब्राई)

करोटी में आघात होने से कोई छेद हो जावे । उस छेद से झिल्ली के सहित मस्तुलुङ्ग (Brain Substonce) बाहर निकल आवै । इसलिये इस को, शिरोवरिकांत्र (हर्निया सेरिब्राई) कहते हैं ।

मस्तिष्क के किसी भी विकार से, अथवा, अङ्ग हानि से, मस्तु लुङ्ग बाहर निकल आवै । उसका नाम, मस्तिष्क चन्द्रकलाप्रदाह (एन्सिफ लोसिल,) हैं । मस्तिष्क के ऊपर सन्ताप (कम्प्रेशन्) पड़े तो प्रकृति की चेष्टा से मस्तुलुङ्ग अपने

से ही बाहर निकल आता हैं। यह पीडा अधिक तर सांघातिक होती हैं परन्तु समय समय पर उपयुक्त चिकित्सा से अच्छा फल भी हो सकता है।

चिकित्सा

चिकित्सा से इस रोग के प्रशमन करने की अपेक्षा इस का निवारण करना अच्छा हैं। मस्तिष्कोयान्त्रवृद्धि, हर्निया, जिससे प्रकाशित न होवै। ऐसा करना चाहिये। एक बार प्रकाशित हो जाने बाद उसके ऊपर शुष्क बन्धन, और स्थिति स्थापक सञ्चार (कम्प्रेशन) का प्रयोग करै। हर्निया में प्रदाह के सब लक्षण प्रकाशित होने पर बन्धन का प्रयोग नहीं करना चाहिये इस अवस्था में उस के ऊपर, अबसोल्यूट अलकोहल, का प्रयोग करै। इस चिकित्सा से अच्छा फल होने पर अर्बुद धीरे २ शुष्क हो जाता है। उसके ऊपर कड़ा पड़ जाता है किन्तु यह चिकित्सा भी विरक्ति रहित नहीं है कारण यह है। ऐसी अवस्था से अभिघातिक मृगी रोग (ट्रमेटिक ऐपिलेप्सी) पैदा हो सकता हैं।

मेरुदण्ड अभिघात Injuries of The Spine

मेरुदण्ड शरीर के अंदर बहुत प्रयोजनीय हैं,। इससे शरीर के दूर स्थित भिन्न २ अङ्गों की रक्षा होती है, इस लिये इस का गठन भी अत्यन्त जटिल है। इसमें जो कशेरुकायें Uertepras निविष्ट हैं, उनसे मेरुदण्डका सब कार्य सिद्ध होता है, अनेक कारणों से मेरुदण्ड में अनेक प्रकार के अभिघात होते हैं। इनमें से मुख्य अभिघातों का वर्णन नीचे लिखा जाता है,

मोच Sprains

प्रकृति--मेरुदण्ड में अनेक प्रकार की पेशी हैं। और बन्धन हैं, इस लिये सामान्य आघात से इस में मोच लग जाने की सम्भावना है, घोड़े की पीठ से अथवा अन्य किसी कारण से आघात लगे तो अथवा बोझा के उठाने से मेरुदण्ड में मोच लग जाती है उसमें मेरुदण्ड के सब चलने वाले अंश जैसे ग्रीवा कटी स्थान के बन्धन, वा सब पेशी, इनके आहत होने की अधिक सम्भावना है, इसका मुख्य चिह्न व्यथा कोमलता, कभी २ स्फीति है। इसको हिलाने डुलाने से व्यथा और बढ़ जाती हैं। इस लिये रोगी मेरुदण्ड को सदा दृढ और स्थिर भाव से रखता है।

चिकित्सा

रोगी को शान्त भाव से शय्या पर रक्षा करे। आहत अंश में उष्ण स्वेद देवे। प्रदाह के लक्षण न दिखलाई देने पर उसके ऊपर उत्तेजक लिनिमेन्ट मर्दन करे आघात भारी

होने से रोगी को छः अथवा आठ सप्ताह तक शय्या पर लिटाये रक्खे। और ग्रीवा के भार की यंत्र आदि से रक्षा करे। मस्तिष्क वेष्ट (Meninges) तक प्रदाह फैल जावे। त रोगी का माथा ऊंचा करके अर्ध शयन की अवस्था में रक्खे। उसके मेरु दण्ड के ऊपर बरफ की थैली रक्खे सर्वांङ्गिक पक्षघात (पैराप्लिजिया) की सूचना मालूम होवे तो अनेक स्थल पर अस्त्रोपचार की आवश्यकता होती है। मूत्र में रक्तागम (हिमैस्च्यूरिया) प्रकाशित होने पर विश्राम करावे इससे लाभ न होने पर बलकारक अम्ल (टानिक एसेड) कई मात्रा में अथवा टार्पेनाइन प्रयोग करे।

मेरुदण्ड का भग्न Fractures of the Spine

कारण—प्रत्यक्ष बल प्रयोग से जैसे दीवाल लकड़ी पत्थर की चट्टान आदि ऊंचे स्थान पर चित होकर के गिर पड़े अथवा गोली आदि की आघात से मेरुदण्ड भग्न हो जावे। परंतु जिस स्थान में आघात लगता है। ठीक वही स्थान भग्न होता है, कठोर परिश्रम अथवा साहस आदि अप्रत्यक्ष बल प्रयोग से भी मेरुदण्ड भग्न हो जाता है। मेरुदण्ड भग्न प्रधानतः दो भागों में विभक्त हो सकता है। जैसे असम्पूर्ण भग्न (Incomplete) अथवा सम्पूर्ण भग्न (Complete)

असम्पूर्ण भग्न

अनेक प्रकार का असम्पूर्ण भग्न है, अधिकतर यह चार प्रकार का देखा जाता है पृष्ठ कंटक (Spinus process) का भग्न पत्रक (लेमिनिया Laminae) तिर्यक प्रवर्धन (प्रोसेस का भग्न और आंशिक भग्न ये चार प्रकार के भग्न हैं। अधिकतर स्थानिक सब चिह्न साफ २ दिखलाई नहीं देते हैं, आघात स्थान में वेदना होती है। अनेक समय रोगी को विश्राम देने से शान्ति हो जाती हैं। सर्वाङ्ग में पक्षाघात होने से अस्त्रोपचार करना चाहिये।

सम्पूर्ण भग्न

सम्पूर्ण भग्न होने पर अनेक स्थल में करोरुका सन्धि का विश्लेष होते हुये देखा जाता है। इसलिये सम्पूर्ण भग्न (कम्प्लीट फ्रैक्चर) सर्वदा भग्न और विश्लेष (Frac turebislocation नाम से कहा जाता है। प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष बल प्रयोग से सम्पूर्ण भग्न होता है, आघात मामूली होनेसे मेरु दण्ड की सम्पूर्ण झिल्ली अल्प परिमाण में छिन्न हो सकती है अथवा उसी झिल्ली के अन्दर में अथवा बाहर में रक्त स्राव व होता है, कठिन अप्रत्यक्ष बल प्रयोग से मेरु दण्ड के साथ २ वक्ष, स्थल भी भग्न हो जाता है।

लक्षण

इस प्रकार के भग्न के चिह्न अनेक स्थान पर साफ २ दिखलाई पड़ते हैं व्यथा, फूल जाना और अल्प परिमाण में मेरु दण्ड को विकृति होने पर कर कराहट (क्रेपिटस) सुनाई पड़ता है। आहत अंश के नीचे में सार्वाङ्गिक पक्षाघात) दिखलाई पड़ता है, मेरु दण्ड के टूट जाने से आस्थ मज्जा दाह (मायेलाइटिज के सब लक्षण शीघ्र ही प्रकाशित होते हैं। इससे अनेक समय शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है,

चिकित्सा

पीड़ा की अवस्था के अनुसार चिकित्सा करना चाहिये रोगी को दृढ अथवा कोमल शय्या पर सुलावे रोगी को उठाने हिलाने डुलाने में सावधान रहना चाहिये। उष्ण स्वेद और उत्तेजक औषधि से चिकित्सा करनी चाहिये।

ऐसे अभिघात के कुलेस्थल में अस्त्रोपचार करना चाहिये। कशेरु का समूह का विक्षेप चिरकाल तक रहने पर स्पर्श ज्ञान हारक औषधि को सहायता से उस का पुनः सन्धान (Reduction) करना चाहिये। उस समय एक बात का ध्यान रक्खे कि ग्रीवा स्थान में ऐसा अभिघात होवे और सार्वाङ्गिक पक्षाघात (पैराप्लिजिया) होवें तो अस्त्रोपचार नहीं करना चाहिये, ये. भग्न सन्धान करने पर खूब सावधान रहना चाहिये। क्योंकि सामान्य असावधानता से पीड़ा बढ़ने की सम्भावना है, अनेक स्थानों पर रोगी को सीधा लिटाने से ही अङ्ग विश्लेष ठीक हो जाता है, इन स्थलों में लक्षण आदि देख कर चिकित्सा करना चाहिये। रोगी को शय्या पर सीधा लिटाने के समय उस का माथा शरीर की अपेक्षा नीचा रक्खे। पेरिस का पलस्तर अथवा, चमड़े की जाकट् लेई रजा केट, से अनेक समय शरीर के भार की रक्षा करनी चाहिये किन्तु सब स्थलों में विशेष कर रोग की प्रथम अवस्था में, इस से उतना अच्छा फल नहीं मिलता है। लघु, और पौष्टिक आहार देवै।

सतर्कता

पीड़ा की चिकित्सा के समय में रोगी की त्वचा और अन्त्र मण्डल और मूत्राशय की तरफ विशेष दृष्टि रखनी चाहिये नितम्ब (चूतड़) गुल्फ (टकना) इनमें शय्या क्षत होने की अधिक सम्भावना है, जिससे यह न होवे इस लिये चिकित्सक और परिचारक इस विषय में विशेष सावधान रहैं। शय्या क्षत की एक अत्यन्त प्रतिषेधक औषध है, लाइकर प्लम्बाई, सब ऐसिटेटिस डिस्चार अडकोटिक्यू इन को सम भाग में मिला कर सब स्थान में लेप करने से शय्याक्षत नहीं होता है, रोगी को शय्या पर घुमाने फिराने

की आवश्यकता होवे, तो धीरे २ सावधानी से शरीर को घुमा लेना चाहिये। इस रोग में मूत्राशय जकड़ जाता है, इस लिये शलाका डाल कर मूत्र निकालें। इस रोग में अभिघातज मूत्राशय प्रदाह (सीष्टक सिष्टा इटिस) हो जाता है अनेक समय वही प्रदाह वृक्कों तक फैल जाती हैं। यह एक बड़ी भयंकर अवस्था है. अधिकतर यह सम्पूर्ण स्थान में बाहर से प्रवेश करती हैं। शिश्न इस प्रदाह का प्रवेश करने का द्वार है, इस लिये लिङ्ग को सदा साफ रक्खे। पचन निवारक औषध से इसको सदासिक्त रखखे मूत्र निकालने के लिये सदा कोमल रबड़ कीशलाका व्यवहार में लाना चाहिये। उस शलाका को ५ पर्सेन्ट कर्बोलिक लोशन से धो लेना चाहिये पाक आरम्भ होने पर मृदु पचन निवारक औषधियों से मूत्राशय को दिन में दो बार धो देवे। उसके साथ सैलोल अथवा बारिक एसिड १० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार सेवन कराने के लिये देवें। इन सब उपायों से शान्ति न होवे तो दोनों वृक्कों की प्रदाह से मृत्यु होने की सम्भावना है। पिचकारी से अथवा विरेचन से अन्त्र मण्डल को साफ रक्खे।

मृत्यु का कारण

चौथी ग्रीवा कशेरुका के ऊपर में मेरुदण्ड भग्न हो जावै। तो सर्वथा में डाला के श्वास केन्द्र से कोष्ठको (फ्रेनिक) सम्पूर्ण स्नायु विच्छिन्न हो जाती है, इस लिये उसी समय मृत्यु हो जाता है, ग्रीवा के नीचे का भाग अथवा ऊर्ध्व पृष्ट वंश भग्न होने पर रक्त स्राव अथवा फुप्फुस की पीडा से मृत्यु हो सकती है. शय्या क्षत अथवा दोनों वृक्कों का प्रदाह से मृत्यु होने की सम्भावना है, किन्तु विलम्ब से होती है।

मेरु दण्डके अभिघात से शोणित स्राव

(Traumatic Spinal Hoemorrhage

प्रकृति—किसी प्रकार के आघात से मेरु दण्ड आहत होवै। अथवा न होवे। तो इसके अन्दर के पदार्थ में शोणित स्राव हो सकता है। अथवा मेरु दण्ड के चारों तरफ शोणित प्रस्तुत हो सकता है। यही घटना अधिक देखी जाती है। मिडैला बाह्य—(इन्ट्रा मेडलरी) शोणित स्राव कहते हैं। किन्तु मेरु दण्ड के अन्दर में शोणित स्राव होवे। तो उसको मिडैला आभ्यान्तर (इन्ट्रो मेडलरी) कहते हैं। काण्ड (कार्ड) के जिस खंड से शोणित स्राव होता है। मिडैला अभ्यान्तर (इन्ट्रा मेडलरी) शोणित स्राव से वह खंड नष्ट हो जाता है। इस लिये उसके नीचे के सब अंश में गति अनुभूति का लोप हो जाती है। रक्त स्राव अल्प परिमाण में होने से पक्षाघात अल्प मात्रा में होता है।

चिकित्सा

रोगी को विश्राम करावे। उसके मेरु दंड के ऊपर बरफ का प्रयोग करै। और उसकी त्वचा के नीचे अर्गटिन का प्रक्षेप करे, मेरुदंड के बाहर भाग में शोणित स्राव

होवै । तो लेमिनेकमी नामक अस्त्रोपचार से रक्त को बाहर निकाल देने से अनेक समय रोग की शान्ति हो जाती है ।

मेरु दण्ड का विघट्टन

Concussion of The Spinal Cord

प्रकृति--पतन-आघात, संघष आदि कारणों से मेरु दण्ड का; संघात, वा विघट्टन होता है । इससे मेरु दण्ड की आकृति में कोई विलक्षणता नहीं होती हैं । किन्तु उसके कार्य में दारुण विलक्षणता होती है मेरु दंड के जिस स्थान में आघात लगता है । उसके नीचे के अंश में पक्षाघात होता है ग्रीवा कशेरुका में अनेक समय आघात लगने से, रोगी शीघ्र ही मर जाता है । उसके सिवाय पृष्ठ वंश, अथवा कटीवंश आहत होने पर, भयङ्कर अवसाद और स्तंभित्य, हो जाता है ।नाड़ी क्षीण हाथ पांव, शीतल, नीला वर्ण और श्वास अगम्भीर चलने लगती है ।

चिकित्सा

रोगी को अर्धशयन, करके उसके मेरु दण्ड के ऊपर बरफ रक्खे । उसके लिये एकान्त में विश्राम करावे । अन्त्र मंडल और मूत्राशय की विशेष दृष्टि रखना चाहिये । अन्य कोई औषधि विशेषका प्रयोजन नहीं है । उस समय स्थानिक अभिघात वा सद्योव्रण होवै, तो उसकी उपयुक्त चिकित्सा करे ।

सुषुम्ना परिवेष्टनी कलादाह (स्पाइनेल मेनिन्जाइटिस)

तरुण प्रदाह मस्तिष्क और मेरुदंड का झिल्ली समूह में प्रदाह होवे, तो उसको पाश्चात्य भाषा में निंजाइटिस कहते हैं । मस्तिष्कीय झिल्ली प्रदाह का वर्णन आगे किया जायेगा । यहां पर मेरुदण्डी झिल्ली प्रदाह का वर्णन लिखा जाता है । यह अधिकतर दो तरह का होता है । एक तरुण, दूसरा पुरातन । दोनों प्रकार का प्रदाह मस्तक से नीचे में फैल सकता है, अथवा आहत स्थान मे ही उत्पन्न हो सकता है । तरुण प्रदाह में प्रधानता से रक्षणी कला (ऐराकनाइड)और पोषणी कला (पायामेटर) ही आक्रान्त होती हैं । छुरिका कटारी आदि तीक्ष्ण अस्त्र से अथवा बन्दूक की गोली से मेरुदण्ड छिन्न और विदीर्ण होने पर तरुण प्रदाह होते हुये देखा जाता है । समय २ पर सामान्य आघात से भी पैदा हो जाता है, कभी २ यह मस्तिष्क के झिल्ली समूह में भी फैल जाता है ।

लक्षण

पीठ में पीड़ा होती है. हिलाने पर वह पीड़ा और बढ़ जाती है । अंग के नीचे भाग में वह फैल जाती है । अङ्ग प्रत्यङ्ग और मेरुदण्ड

जकड़ जाता है, कभी २ धनुष्टंकार के तुल्य आक्षेप और अङ्गों में उत्क्षेप होता है। मस्तिष्क के आक्रान्त होने पर रोगी की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। अथवा रोगी कभी २ अच्छा भी हो जाता है, किंतु वह थोड़े दिन के लिये ही है, कारण यह है, कि अन्त में पक्षाघात आदि कारण होकर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

मेरु दंड के भिन्न और विदीर्ण होने पर रोगी की रक्षा करना बड़ा कठिन होजाता है। कारण यह है, इसको विशेष कोई चिकित्सा नहीं है, इसलिये मेरुदण्डीय झिल्ली प्रदाह (मेनिञ्जाइटिस) सामान्य प्रकृति का होने से मेरुदंड के ऊपर बरफ का प्रयोग करे बेलाडोना और आर्गट का अन्तः प्रयोग करे। प्रदाह निवारक औषध से उपकार दिखलाई देता है। रोगी को अर्धशायित अवस्था में रक्खे, उसके अन्त्र मण्डल और मूत्राशय को साफ रक्खे, निद्रा न आने पर ब्रोमाइड और क्लोरेल का प्रयोग किया जा सकता है।

पुरातन प्रदाह

पुरातन मेरुदंड की झिल्ली में प्रदाह अधिकतर सीमाबद्ध रहता है। सारांश यह है, प्रदाह जिस स्थान में पैदा होता है उसी स्थान में रहता है, किसी तरफ नहीं फैलता है। अधिकतर यह तरुण प्रकार का परिणाम स्वरूप पैदा होता है, इससे रक्षणी कला (एरकनइड) और पोषणी कला (पाया मेटर) अथवा केवल अस्थ्याभ्यन्तरी कला (ड्यूरामेटर) ही आक्रान्त हो सकती हैं। इसके आक्रमण में झिल्ली समूह मोटा हो जाता है, और मेरुदंड के साथ वह मिल जाता है, उस समय उस सम्पूर्ण झिल्लीमें रक्ताधिक्य हो जाता है, इसके लक्षण तरुण प्रकृति के तुल्य होते हैं।

चिकित्सा

चिरकाल तक विश्राम करावे और उस साथ, छाला उठाने (ब्लष्टर) से प्रत्युग्रता साधन करे। पारद के अन्दर प्रयोग करने पर अनेक समय अच्छा फल मिलता है।

अस्थि पत्र कर्तनम् Saminectamly

विवरण—अभिघात, अर्बुद, स्फोट, रक्त स्राव, आदि कारणों से मेरु दण्ड के ऊपर दबाव पड़े तो उस दबाव को दूर करने के लिये समय २ पर मेरु दण्ड की, कशेरुका की मूल और, कण्ट कर (प्रोसेस) समूह को छील देना आवश्यक होता है। इस अस्त्रोपचार का नाम, लैमिनेकमी, है। इस में पृष्ट वंश के ऊपर दीर्घता से युक्त एक छेद करे। अस्त्र, कशेरुका कण्टक प्रवर्धन, (स्पाइनस प्रोसेस) तक प्रवेश किया जाता है। उस के बाद, कशेरु पार्श्विक प्रवर्धन (ट्रान्सवर्स प्रोसेस) समूह तक, प्रवेश करे

कशेरु का समूह के ऊपर में जितनी पेशी और रज्जु है। उन को क्रमशः साफ रक्खे। इन से अत्यन्त रक्त स्राव होने की सम्भावना है। रक्त स्राव होने पर गरम जल की स्पञ्ज Slnge से धोवै। उस के बाद मेरु दण्ड का सम्पूर्ण कशेरु का चक्र (न्यूरेल आर्च) परिक्षा करके देखे। उस के मध्य में जो आहत दिखलाई देवे। उस को छुरी से चीर कर के, वा छील करके लॅमिने क्टो फसप्स, से अन्तर्गत करना चाहिये। एक समय में इस अस्त्रोपचार को आदर था, किन्तु इस समय यह अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है

अस्थि पीड़ा प्रकरण

प्रदाह—अस्थि में अनेक प्रकार की पीडा होती है, उसके मध्य में प्रदाह पतन वा मृत्यु वा अर्बुद आदि से पैदा हुई वृद्धि का उल्लेख किया जायगा पहिले प्रदाह का वर्णन लिखा जाता है, अस्थि में प्रदाह होने पर इसके सम्पूर्ण कोमलाँश जैसे आवरक झिल्ली Periostum इसकी मज्जापरिवेष्टनी (मेडलरी झिल्ली) इसके कोमल संयोजक सम्पूर्ण तन्तु और इसके सम्पूर्ण अस्थि सौषिर्य (कॅनसेलाई) में प्रदाह होता है, यह प्रदाह अनेक प्रकार का होता हैं, जैसे सहज और स्थानिक अथवा व्यापक और पूयज अथवा सांक्रामिक और उपदश गठिया वायु वात व्याधि (र्‍ह्यूमेटिजम) अथवा स्क्यूवाकल आदि से इन सब प्रदाहों को घटती वढती होती रहती हैं।

अस्थ्यावरक झिल्लि प्रदाह Periostitis

प्रकार भेद—अस्थि की आच्छादक झिल्ली में प्रदाह आरम्भ होवे। अथवा प्रदाह से वह झिल्ली सबसे पहिले आक्रान्त हो जावे, तो इसको पेरिआॅष्टाइटिस कहते हैं यह दो प्रकार की हैं, अथवा अन्य किसी प्रकार का आघात लगने पर तरुण प्रदाह पैदा होता है, अधिक तर अग्र जंघास्थि में यह प्रदाह पैदा होता है।

लक्षण

व्यथा और झन झनी होती है, दबाव से वह वढ जाती है, और रात्रि में भी उसकी वृद्धि होती है, आक्रान्त अंग में शोथ लाली संताप और समय २ पर पूय की उत्पत्ति देखी जाती है।

चिकित्सा

विश्राम शीतल परिषेक और जोंक लगावे अथवा आहत अंश को ऊंचा करके रक्खे। इससे कभी २ रोग की शान्ति हो जाती है। प्रदाह में पूय होवे तो उसके ऊपर गरम बोरेसिक पुल्टिश प्रयोग करे और प्रदाहयुक्त अंश का चीरकर पूय वाहर निकाल देना चाहिये, वेदना की शान्ति के लिये अफीम प्रयोग करे।

पुरातन अस्थि परिवेष्टनीकला प्रदाह

ऐसी प्रदाह में झिल्ली के नीचे की अस्थि भी कुछ परिमाण प्रदाह से युक्त हो जाती है। यह अधिक तर सामा बद्ध रहता हैं। साधारण रीति से इसको जोड़ कहते हैं,

कारण

इस का अधिक भाग उपदंश जनित है। इसलिये, वायु, ट्यूबार्क्यूलोसिस, अथवा अभिघात से भी यह उत्पन्न हो सकता है। अथवा, कोमल अंश में किसी रूप का क्षत हो जावे तो उस का प्रदाह फैल जाता है। अस्थि को आक्रमण कर लेना है कभी आन्त्रिक ज्वर (टाइफाइडफीवर) आदि के परिणाम फल स्वरूपमें प्रदाह उत्पन्न होजाता,है

लक्षण

गम्भीर, अथवा, मनुष्यवेदना, दिन की अपेक्षा रात्रि में अधिक होती है। परीक्षा करने पर, अस्थि का आक्रान्त अंश फूला हुआ मालूम पड़ता है।

चिकित्सा

पुरातन अस्थि परिवेष्टनी कला प्रदाह में, आइयोडाइड आफ् पोटासियम, से अच्छा फल पाया जाता है। अधिकतर यह १० ग्रेन से २० ग्रेन, की मात्रामें प्रयुक्त होता है। पीड़ा के मूल में उपदंश होने पर यह मंत्र के तुल्य कार्य करता हैं। वातज्य होने पर आयोडाइड आफ पोटासियम् मर्करी (पारद) और, बेलाडोना एक मैं मिला कर इस मलहम का प्रयोग किया जा सकता है ट्यूबर्कल जन्य होने पर, सिरप फेरि, आयोडाइड के साथ में, काडलीवर आइल (मछली का तेल) देने से लाभ होता है। अधिक वेदना होने पर अफीम का प्रयोग करें। करोटी के ऊपर कोमल व्रणकार्बुद (गोड़) होवे तो उस को खोलना नहीं चाहिये। वह पक कर फूट जावे तब औषध प्रयोग नहीं करना चाहिये इस स्थल में, आयोडाइड आफ पोटासियम, अच्छा फल पाया जाता है।

पुरातन अस्थि प्रदाह Chronicosteitis

प्रकृति—अस्थि की प्रदाह को, ओस्टाइटिस, कहते हैं। साधारणतः इस की पुरातन प्रकृति देखी जाती है इसलिये इस स्थल में पुरातन अस्थि प्रदाह, के नाम से वर्णन की गई है। अस्थि प्रदाह के साथ २ अस्थिच्छ दा कला Periosteum और मज्जापरि वेष्टनी कला में भी प्रदाह होता हैं इसलिये अनेक स्थल में, इस की प्राकृतिक अवस्था जानना बड़ा कठिन हो जाता है अस्थि प्रदाह जिस किसी अस्थि में, अथवा अस्थि के किसी अंश में प्रकाशित हो सकती है। अधिक तर यह अंगुलियों में, पृष्ठ वंश की कशेरुकाओं में पैदा होती है उपदंश, ट्यूबर्कल, अभिकास्थर और वायु, इस पूर्व प्रवर्तक कारण हैं और स्थानिक अभिघात, ठंडक, आर्द्रता और सम्पूर्ण विषमज्वर (मलेरिया फीवर) जन्य दोष इसके उत्तेजक कारण हैं।

चिह्न आदि

अस्थि प्रदाह के लक्षण, अस्थि परिवेष्टनी कला प्रदाह के तुल्य ही हैं। ज्वर, मान

कनकनी, टन टनी, आदि की रात्रि में वृद्धि हो जाती है। फूल भी जाता है, कहीं कहीं पर लालिमा नहीं दिखलाई पड़ती हैं।

चिकित्सा

रोगी को विश्राम करावै। और दो अथवा एक जोंक लगावै, उपदंश से पैदा होवै। तो आयोडाइड आफ पोटासियम् अथवा पारद (मर्करी) का प्रयोग करे, कभी कभी ब्लिष्टर से भी लाभ पाया जाता है। वेदना दूर करने के लिये, अफीम का अभ्यन्तरीण प्रयोग करे। और वेलाडोना का वाह्य प्रयोग करे, आक्रान्त प्रत्यङ्ग को ऊंचा करके रक्खे, रोग कष्ट साध्य होने पर अस्त्रोपचार, करना चाहिये।

अस्थिक्षय Caries

कारण-अस्थिके उपादान धीरे २ गल जावै, उसको केरिज कहते हैं। इससे अस्थि का क्षय हो जाता है, ट्यूवार्कल और उपदंश इसके प्रधान कारण है। कभी २ इन दोनों रोगों के न होने पर भी एक मात्र शारीरिक दुर्बलता से भी अस्थि क्षय (केरीज) हो जाता है। समय २ पर अभिघात से भी अस्थि क्षय (केरीज) कहते है। वहुत से चिकित्सकों का सिद्धान्त है कि अस्थि क्षय (केरीज) अस्थि प्रदाह का परिणाम फल है

लक्षण

पुरातन अस्थि प्रदाह और अस्थिपरिवेष्टनी कला प्रदाह के सम्पूर्ण लक्षण दिखलाई देते हैं। आहत अस्थि के ऊपर वेदना स्फीति और खिचाव मालूम होता है। प्रदाह धीरे २ मांस आदि कोमल वस्तुओं का आक्रमण करके बाहर में प्रकाशित होता हैं। उस स्थान में नाड़ी व्रण भी प्रकाशित होता एक ही समय में एक स्थान में बहुत से नाड़ी व्रण पैदा हो जाते हैं। उन नाड़ी व्रणों के मुख बादाम के तुल्य पपड़ी से ढके रहते हैं। उन व्रणों से दुर्गन्धि से युक्त पतला स्राव निकलता है। इस स्राव में अस्थि काल व्रणांश मिला रहता है। उस नाड़ी व्रण के मध्य में शलाका चला करके अथवा उसका विस्तार करके उसके मध्य में अंगुलि प्रविष्ट करके अस्थि की कोमलता और भंगुरता को जानना चाहिये।

चिकित्सा

रोग की स्थित के अनुकूल चिकित्सा करनी चाहिये। सुविधा होने पर अस्थि के

मृतास्थि Necrosis

प्रकृति—सम्पूर्ण अस्थि, अथवा, उस का कुछ अंश मर जावै। तो उस को, निक्रोसिस कहते हैं। इसकी प्रकृति सम्पूर्ण रूप में कोमल अंश वाले गैंग्रिन (गलित क्षत) के तुल्य है, किन्तु इस में मृतास्थि (निक्रोसिस) अधिक होती है। यह अधिक तर अग्रजंघास्थि, उर्वस्थि, निम्नहन्वस्थि, करोटी की सम्पूर्ण अस्थि, और अङ्गुलि की करभास्थियों में होती है।

लक्षण

प्रदाह, उपदंश, घुणाकार (स्यूवार्कल) सब प्रकार के वैशेषिक ज्वर, विशेष कर स्कार्लेटिना, इसी तरह, पारद और स्फुरित (फास्फरस) से विषीकरण, आदि सब कारणों से अस्थि के शोणित संयोजन में, अथवा, पोषण में बाधा पहुचती है ये मृतास्थि (निक्रोसिस) का प्रत्यक्ष कारण है। कभी २ जटिल भग्न (कम्पाउंड फ्रेक्चर) अंगच्छेद (एम्पूटेशन) के बाद मृतास्थि (निक्रोसिस) होते हुये देखा जाता है। इस के और सब लक्षण अस्थिक्षय (केरीज) के तुल्य ही हैं। इसमें भी नाड़ी व्रण प्रकाशित होता है. उस सम्पूर्ण नाड़ी व्रण से एक प्रकार का पीब निकलता है उस से अस्थि मोटी हो जाती है और चारों तरफ के त्वचा मांस आदि लाल हो जाते हैं, उस सम्पूर्ण नाड़ी व्रण के छिद्र में शलाका डालें तो, अस्थि, उन्मुक्त और कठिन मालूम होगी।

मृतास्थि का चित्र



अस्थि क्षय (केरीज) मृतास्थि (निक्रोसिस)

प्रभेद

अस्थि क्षय, (केरीज़) और मृतास्थि (निक्रोसिस) ये दोनों कुछ परिमाण में समान ही होते हैं, परन्तु तब भी भिन्नता साफ २ प्रतीत होती हैं निक्रोसिस, मृत-अस्थि, कठिन और चिकनी होती हैं, केरीज़ में, कोमल, विषम, और भंगुर होती है। निक्रोसिस में नाड़ी व्रण के चारों तरफ अंकुर (ग्रैनूलेशन) देखे जाते हैं, वे सब अंकुर सहज और स्वस्त होते हैं और वहां की त्वचा अधिकांश में स्वाभाविक होती हैं। केरीज़, में अंगुल नहीं होते हैं।

आक्रान्त अंश को दबा कर बाहर निकाल देवै। नाड़ी व्रण के अन्दर बकमैन के स्पूत से छील देवै। और आइडोफार्म, और ग्लिसरीन (गलित स्नेह) के इल्लशन से धोवै। बाद को आइडोफार्म, की बत्ती से व्रण भर करके पट्टी बाँध देवे। अस्थि क्षय (केराज) विस्तृत होने पर कभी २ अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) करना चाहिये।

यदि अंकुर होवे, तो सृजन से युक्त होते हैं। और उसके चारो तरफ की त्वचा बैठ जाती है. और उसमें दाह पैदा हो जाती है निक्रोसिस का पीला स्राव होता है। केराज का जल के समान पतला स्राव होता है निक्रोसिस में नई हड्डी पैदा हो कर मोटी हो जाती है, केरीज में यह कुछ नहीं होता है, यहाँ पर यह वर्णन करना आवश्यक है कि केराज के साथ निक्रोसिस हो सकता है, निक्रोसिस,के आक्रमण करने में कभी २ पहिले पाव उत्पन्न नहीं होता है।

इस प्रकार की मृतास्थि (निक्रोसिस) शान्त मृतास्थि (कोया पेन्ट कहते हैं किन्तु मृत अस्थि के ऊपर नई हड्डी उत्पन्न होने पर वह मोटी हो जाती है,

चिकित्सा

मृतअस्थि शिथिल पड़ जावे तो उसको शीघ्र ही निकाल देवै। अस्थि अगम्भीर अंश में होवै। तो सन्देश से नाड़ी व्रण के अन्दर से सहज में ही पकड़ कर निकाल लेवै। प्रयोजन होने पर नाड़ी व्रण चौड़ा लम्बा किया जा सकता है, किन्तु मृत अस्थि गम्भीर प्रदेश में होने पर अस्त्रो उपचार बड़ा ही कठिन हो जाता है, ऐसी अवस्था में अस्थि के दीर्घांश में नाड़ी व्रण के ऊपर चीरा देवे। उससे नाड़ी व्रण विस्तृत हो जाता तब उसके मध्य में संदंश प्रवेशित कर मृत अस्थि का खींच कर बाहर निकाल लेवे, इस अस्त्रोपचार में हाफ मैन काफसेप्स (संदंश) और हे महोदयका कर यंत्र छुरी आदि अस्त्रों का प्रयोजन होता है। कर पत्रसे नवीन हड्डी को काटे। किन्तु जितना ठीक होवे उतना ही टुकड़ा काटना चाहिये इसके लिये एक प्रकारकी कैंची भी काममें लाई जाती है, इसके बाद उस गढ़ा को पर क्लोराइड आफ मर्करी (२००० ए।) से धोवै। इसके बाद पचन निवारक साइये नाइड पत्ता से उस को भर देवे उसको ऊपर पचन निवारक बन्धनों से बांध देवं। इस तरह से वह गड्डा भर आता है, बल कारक औषध और पौष्टिक आहार से रोगी के बल की रक्षा करे कभी २ अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) को भी आवश्यकता होती हैं,

अस्थि का व्रण शोथ और पूयोद्ग

Suppurati and abscess in bone

प्रकृति— व्यापक अस्थि मज्जागत प्रदाह (ओस्टियो मैलाइटिस) और अस्थि परिवेष्टनी कला प्रदाह (पेरिओस्टाइटिस) के फल स्वरूप में फैलने वाला पूय उत्पन्न होता है, दीर्घास्थि के प्रान्त में विशेष कर अग्र जंघास्थि (टिबिया) के ऊपरी और नीचे प्रान्त में और जान्वस्थि के नीचे प्रान्त में व्रण शोथ पैदा होता है, समय पर अन्यान्य अस्थियों में भी यह उत्पन्न होते हुये देखा जाता है, अस्थि प्रदाह के साथ ट्यूबार्कल वेसिलस (जीवाणु) और अन्यान्य दूषित जीवाणु वर्तमान होने पर अस्थि में पूय की उत्पत्ति और व्रण शोथ पैदा हो जाता है, किसी २ अभिघात से इसकी उत्पत्ति हो जाती है।

लक्षण

इसके लक्षण अधिक तर कठिनता से जाने जाते है, रुक २ कर पीडा पैदा होती है, रात्रि में अधिक पीड़ा बढ जाती है, जिस स्थान में स्फोट का मुख फूट जाता है' उसमें अधिक तर शोथ दिखलाई पड़ता है' समय २ पर आक्रान्त अस्थि का प्रान्त बढ जाता है' अन्त में त्वचा लाल हो जाती है। मध्य २ में और समीप का अस्थि सन्धि में प्रदाह होने लगता है।

चिकित्सा

पहिले एसमार्च का बन्धन प्रयोग करे; और वहां के कोमल अंश के ऊपर दीर्घच्छेद करें अस्थि धरपाली (पेरियोस्ट्यूम) हटा करके अस्थिको काटकर अलगनिकाल देवै। इसका पूय बाहर न निकले तो उसको ढूढ़ने के लिये चारों तरफ पार्फोरेटर अन्दर करे। व्रण के अन्दर का भाग खुरच कर कार्बोलिक एसिड और क्लोराइड आफ जिक से धो देवे। यदि रोग ट्यूबार्कल से पैदा हुआ होवे तो उसके मध्य में आइडोफार्म का चूर्ण डाले। पचन निवारक पट्टी से व्रण को बांध देवे, किसी अस्थि संधि में व्रण का मुख बाहर दिखलाई देवे, तो सम्पूर्ण अस्थि संधि खोलकर पर क्लोराइड आफ मर्करी लोशन से उसको धोवे, उसमें स्राव के निकलने के लिये रास्ता खुला रक्खे। इस पीड़ा की शान्ति न होवे, तो अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) करना चाहिये।

अस्थि की अन्यान्य पीड़ा

क्षय और विवृद्धि वृद्धावस्था में अस्थि का क्षय होता है। सङ्कोच और अव्यवहार से इसका क्षय होता है। जिस तरह अर्बुद अथवा धमन्यर्बुद से कशेरुकाओं पर दबाव

पड़ने से उनका क्षय होता है। ऐसे ही अङ्गच्छेद के बाद कोई अधिक व्यवहृत न होवे, तो वह धीरे २ क्षय को हासिल हो जाती हैं। क्षय (ऐट्रफी) के साथ में सदा अत्याधिक परिमाण में मेदोवृद्धि (फैटीडिजेनेरेशन) का स्राव देखा जाता हैं। पुष्टि की अधिकता से किसी अस्थि की विवृद्धि हो जावे, तो उसको धातुवृद्धि (हाईपरट्रफी) कहते हैं। किन्तु प्रदाह होने पर उक्त नामसे नहीं कहा जाता है। किसी प्रत्यङ्ग के अधिक सञ्चालन करने से, वा व्यायाम से उसकी पेशी आदि के साथ २ उसकी अस्थि भी बढ़ जाती हैं। इसके सिवाय आजन्म विवृद्धि (Congenital Hypertrophy) नाम से जो एक पीड़ा हैं, उसमें भी अस्थि की विवृद्धि देखी जाती है।

अस्थि कोमलत्व Rickets

प्रकृति—यह रोग बाल्यावस्था में होता है, इस रोग में प्लीहा, यकृत बढ़ जाता है और सम्पूर्ण अस्थियां कोमल और विवृत हो जाती हैं। इसलिये पहिले से ही शरीर पुष्ट नहीं हो सकता है।

कारण

अयोग्य आहार, गर्भावस्था में माता की दुर्बलता, गीली भूमि पर रहना, विशुद्ध वायु का अभाव, शौच का अभाव, पिता माता का उपदंश ये अप्रत्यक्ष रूपसे अस्थिकोमलत्व (रिकेटस) के कारण होते हैं।

लक्षण

डेढ़ और अढाई वर्ष के मध्य में यह रोग बालक के होता है। पहिले लक्षणों के मध्य में बालक के ललाट में और ऊपर के अँग में स्वेद दिखलाई पड़ता है, बालक विह्वल हो जाता है। और शान्ति पाने के लिये चारपाई के वस्त्रों को फेंकता है, उसका शरीर अत्यन्त कोमल हो जाता है, उसको हिलावे डुलावे तब भी वह चुपचाप रहता है। कभी कभी उसके मूत्र में अधिक मात्रा से फास्फेट चूर्ण पाया जाता है। उसका पेट फूला रहता है, उसमें आध्मान के लक्षण मिलते हैं, सम्पूर्ण अस्थियों का प्रान्त भाग विशेषकर बहिःप्रकोष्ठ (रेडियस) और अग्रजंघास्थि का नीचे का भाग फूल जाता है। सब पसलियां टेढ़ी हो जाती हैं। करोटि अस्थि के सीवन स्थान मोटे हो जाते हैं। उसके बाद अन्यान्य अस्थियां भी टेढ़ी हो जाती है, वक्षः स्थल की अस्थियां कबूतर के वक्ष के आकार के समान हो जाती है। पृष्ट वंश टैढ़ा हो जाता है। वस्ति चौड़ी होने से चपटी हो जाती है। मस्तक चार कोने वाला और प्रशस्त ललाट मालूम होता है। सम्पूर्ण रन्ध्र

(फन्टीनेली) विलम्ब से मिलते हुये देखे जाते हैं। बालक के दाँत देर में निकलते हैं, और दांत बाहर निकलने पर अधिकतर वे क्षय होकर नष्ट हो जाते हैं। श्वास, कास, अतिसार, आक्षेप शिरस्तोय (Hybrocephalus) आदि अनेक उपद्रव सदा बने रहते हैं।

चिकित्सा।

शुद्ध जगह में रखकर उपयुक्त आहार विहार सेवन करावे, इससे रोगी कभी २ अच्छा हो जाता है। शिशु को अधिक मात्रा में मांस रस देवे. और दूध पिलावे, जिससे वायु विशुद्ध रहैं, पाखाना ठीक आवे। इस विषय में ध्यान रखना चाहिये। इस रोग की पहिली औषध कांडलीवर आइल (मछली का तेल) है इसके सांथ २ आधा ड्राम की मात्रा में शर्वत (सिरप फेरिफास्फोट मिलाकर देवे, विशेष उपकार होता हैं। पहिली आयु में रोगी बालक को न खड़ा होने देवे, न चलने देवे,इससे दोनों पैरों की विकृति ठीक होजाती है। एक तरह का फलक (स्पिलिन्ट) स्तेमाल किया जाता है। उससे इस कार्य को सिद्धि बहुत अच्छी तरह हो आती हैं। यदि सम्पूर्ण प्रत्यंग एक बार में ही विकृत हो जावे, तो उसमें अस्त्र स्तेमाल करना चाहिये।

रक्त पैत्तिक कोमलास्थि (स्कार्विरिकेटस)

बालकों के एक और पीड़ा होतीहै उसका नाम स्कार्विरिकेटस है। जब यह तरुण अवस्था में प्रकाशित होती है। तब इसका नाम तरुण रिकेटस, और शिशु रक्त पित्त रोग (इन्फैन्टाइल स्कार्वि) होता हैं। इसमें सम्पूर्ण लक्षण पहिले के समान होते हैं इसके आक्रमण में कोई २ अस्थि विशेष कर उर्वस्थि फूल जाती है। अस्थि धरा कला के अन्दर रक्त प्रस्तुत होने से वह भी फूल जाती है। इस रोग के प्रधान चिह्नों के मध्य में आक्रान्त अङ्ग की कोमलता, शोथ, और दांत के मसूड़ों की शोफावस्था है। इसकी चिकित्सा यह है कि रोगी को विश्राम करावै। और पहिले रोग की उपयुक्त औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

अति कोमलास्थि Osteo malacia

प्रकृति—यह पीड़ा अधिकतर देखी नहीं जाती है। इसके आक्रमण से सम्पूर्ण अस्थि अति कोमल हो जाती है यह पीड़ा तरुण व्यक्ति के होती है अधिकतर स्त्रियां गर्भावस्था में इस रोग से आक्रान्त रहती हैं। कभी कभी इसमें शूल भी होता है। इसका कारण अपरिज्ञात है।

लक्षण

रोग की पहिली अवस्था में सहसा इसको वायु, अथवा स्नायु शूल समझ कर भ्रम होने की सम्भावना है। कारण यह है। कि उस समय अस्थि की वेदना के सिवाय और कोई साफ २ लक्षण प्रकाशित नही होते हैं अचानक कोई हड्डी भंग हो जावे, और दूसरी हड्डियां लच जावें, अथवा विकृत हो जावें। तो सहसा कोई उत्तेजक कारण जाना नहीं जाता है। इस अवस्था में वस्ति, वक्ष, स्थल पृष्ठ वंश और हांथ पांव,में विकृति हो जाती है वस्ति चौड़ी हो जाती हैं। स्त्रियों को वस्ति इस भांति विकृत हो जाने से प्रसव काय में बहुत विघ्न उपस्थित होता हैं। इस लिये अनेक गर्भिणी स्त्रियों का जावन भी संकट में पड़ जाता है। मूत्र में एक विचित्र ऐलबूमेन उसके साथ २ अधिक मात्रा में, फास्फेट और लैकटिक ऐसिड मिले रहते हैं इस रोग से रोगिणी अधिकतर प्रसव काल में मर जाती हैं। कोई दो एक इससे अच्छी भी हो जाती है।

चिकित्सा

इस रोग में अन्दर प्रयोग करने के लिये औषधि आज तक कोई प्रकाशित नहीं हुई है। बल कारक औषध, और पौष्टिक आहार से बल की रक्षा करे, अफीम से वेदना शान्त करे। हिलाने डुलाने से हड्डी टूट जाती है। इसलिये सदा विश्राम करावै। रोगिणी का गर्भ संचलित न होवे, इस लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। गर्भिणी होने पर अकाल प्रसव और पुनर्गभा होने पर कपाल का काटना (क्रेनियटमी) अथवा पेट चीरना (सिजीरियन सेक्शन) युक्ति युक्त है। कि नहीं इसकी विवेचना कर लेवें।

अस्थि में अर्बुद

जितने प्रकार के अर्बुदों का वर्णन किया जाचुका है। वे सब अस्थि में पैदा हो सकते हैं। अस्थि के वे अर्बुद अस्थि परिवेष्टनी कला, (पेरी आस्टयूम) अस्थि मज्जा मेडला अथवा अस्थि में पैदा होते हैं। और समय पर स्वभाविक अस्थि में परिणत हो जाते हैं।

प्रकृति

जो अर्बुद अस्थि में अथवा अस्थि परिवेष्टनी कला में अथवा अस्थि की मज्जा में उत्पन्न होते हैं वे काल पर प्रकृत अस्थि की प्रकृति को धारण कर लेते हैं। तब उनका

नाम अस्थ्यर्बुद (ओष्ट्यूमा) कहा जाता है। ये सम्पूर्ण अर्बुद अधिकतर दो प्रकार के होते हैं एक सीमाबद्ध, दूसरा व्यापक सामाबद्ध अर्बुद दीर्घास्थियों में और अंगूठे में उत्पन्न होता हैं। व्यापक अर्बुद मुख की अस्थियों में पैदा होता है।

अस्थि सन्धि समूह की पीड़ा DISEASES OF JOINT

अस्थि सन्धि समूह में अनेक प्रकार की पीड़ा उत्पन्न होती हैं। उनमें से मुख्य २ का वर्णन नीचे लिखा जाता है।

कोष्टु शीर्षक Synouitis

कोष्टु शोर्षक दो प्रकार का होता है एक तरुण दूसरा, अर्ध तरुण अथवा पुरातन पहिले तरुण प्रकार का बर्णन लिखा जाता है।

तरुण के कारण

सामान्य अभिघात, मोच आजाना अथवा सन्धि का अधिक परिचालन, अथवा शैत्य संयोग, अथवा, गठिया वायु, अथवा बात व्याधि से पीड़ित रोगी के आर्द्रता का संयोग अथवा प्रमेह के आक्रमण से अथवा उपदंश के प्रथम क्रम में जानु सन्धि में कोष्ट शोर्षक (साइनोवाइटिस) देखा जाता है।

चिन्ह

सन्धि गरम हो जावे उसमें अत्यन्त वेदना होवे। अङ्ग सञ्चालन से अथवा दबाव से वेदना बढ जाती है। प्रदाह अधिक होने पर ऊपर की त्वचा लाल हो जाती है। उसमें सूजन दिखलाई पड़ती है। बाह्य सन्धि होने पर सूजन साफ २ मालूम होती है।

जानु सन्धि ही इसका दृष्टान्त है। जानुसन्धि के तुल्य कूपर सन्धि, स्कन्ध संधि गुल्फ सन्धि भी आक्रांत देखी जाती हैं। कोष्ट में स्फीति दिखलाई पड़ती हैं। जो कोई संधि आक्रांत होती हैं उस में ज्वर के लक्षण प्रकाशित होते हैं। प्रदाह के अनुसार ज्वर के लक्षण घटते बढ़ते रहते हैं। प्रदाह में पूय पैदा हो जाने पर उसके साथ सम्पूर्ण शारीरिक विधान आक्रांत हो जाते हैं। पोड़ा और शोथ बढ़ जाता है। और

गहरे लाल वर्ण वाली त्वचा हो जाती है। प्रदाह के अधिक होनेपर समय २ पर गुरु कम्प (राइगर) प्रकाशित हो जाता है।

चिकित्सा

पार्श्व फलक (स्प्लिन्ट) से आक्रान्त सन्धियों को बाँध देवे उसको सम्पूर्ण विश्राम देवे। वंक्षण जानु गुल्फ सन्धि आक्रान्त होने पर रोगी को शय्या पर लिटाये रखे। सन्धि स्थान में पार्श्व फलक (स्प्लन्ट) बहुत सावधानता से बाँधे जिस से संधि सञ्चालन में आगे को कोई बाधा न होवे इस विषय में विशेष ध्यान रखना चाहिये। पीड़ा सामान्य होने पर लिटर की नली (लिटरस्यूब) अथवा, उद्वेचलोशन (द्रव) से शैत्य का प्रयोग करे। किन्तु प्रदाह अधिक होने से, तीन, चार जोंकें लगावे। उष्ण परिषेक। और पीड़ा की निवृति के लिये, बेलाडोना और अफीम का मर्दन करे। सन्धि अत्यन्त विस्फारित हो जावे। और सन्धि आभ्यन्तरी कला जाल, (साइनोविएल) छिन्न हुआ मालूम होवे, तो एनपरेट, शस्त्र को प्रवेश करे और स्थापक बन्धन को बांध देवे अथवा उसके अन्दर पूय होवे तो अस्त्र से उसको खोलकर पूय निकाल देवे। पवन निवारक बन्धन से बांध देवे। बहुत काल से पूय होवे तो अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) करना चाहिये।

पुरातन क्रोष्टु शीर्षक

कारण—इस के सब कारण पहिले के समान ही है। यह तरुण प्रकार के परिणाम फल रूप से प्रकाशित होता है।

तरुण आदि

तरुण प्रकार के तुल्य इस प्रकार में भी सन्धि फूल जाती हैं। और वहां की सन्ध्याभ्यन्तरी कला कुछ मोटी हो जाती है, इसलिये ललाई भी कम होती हैं। और पीड़ा भी अधिक नहीं होती है। त्वचा का कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता है। सन्धि दुर्वल और कड़ी पड़ जाती है।

चिकित्सा

सन्धि में लकड़ी की पट्टी (स्प्लिण्ट) अथवा पेरिस का पलस्तर, स्थापित करे। ऊर्ध्वाङ्गमें होवे। तो हाथ एक सींके में झुलाये रक्खें। नीचे के अङ्ग में रोग होनेसे यदि रोगी बैठ न सके तो सन्धि की स्थिति के अनुसार जानु पार्श्व फलक (स्प्लिन्ट) का प्रयोग करे। कक्ष दण्ड (क्रच) के ऊपर भार देकर चल फिर सकता है। ऐमोनिएकम, और मर्करी, प्लेष्टर से सन्धि स्थल में सङ्काप दे सकते हैं। इस उद्देश्य के लिये मार्टिन का वन्धन प्रयुक्त हो सकता है। आयोडीन लिनिमेण्ट के छोटे २ प्लिष्टर प्रयोग करें। इस रोग में विश्राम देना वहुत आवश्यकीय है। कुछ काल ठहर कर रोगी को विश्राम देना चाहिये। कारण यह हैं कि आक्रान्त सन्धि कड़ी पड़ जाती। हैं इसलिये मध्य २ में थोड़ा २ सञ्चालन करना अच्छा है। हाथों से धीरे २ दवाना भी आवश्यक है। रोगी के स्वास्थ्य पर भी दृष्टि रखना चाहिये। गठिया वायु आदि के लक्षण प्रकाशित होनेपर शीघ्र ही उसका प्रतिकार करे। रोग अच्छा न होवे तो सन्धि स्थान में अस्त्र प्रयोग करके सन्ध्याभ्यन्तरी कला को काटकर अलग कर देवे।

तरुण सन्धि प्रदाह

निरुक्ति— किसी सन्धि के सम्पूर्ण विधानों में प्रदाह होवे तो उसको तरुण सन्धि प्रदाह कहते हैं। सन्धि श्लेषक आभ्यन्तर कोष (साइनोविएल मेम्ब्रेन) क्या अस्थि समूह का संयोग प्रान्त, क्या उसके चारों तरफ के विधान तन्तु, इनमें से जिस किसी स्थान में यह प्रदाह आरम्भ होता है। उस समय सब सन्धि आक्रान्त हो जाती हैं।

कारण

तरुण सन्धि प्रदाह, तरुण वायु के स्थानिक प्रकाश रूप में परिस्फुट होता है। इसमें अधिक तर पूय नहीं होता है। वायु से भिन्न पूय से पैदा हुआ अथवा संक्रामक किसी दोष के पीड़ा से यह उत्पन्न हो सकता है। वही पूयज और संक्रामक पीड़ा में विष बीज, किसी क्षत वा सद्योव्रण से शरीर के अन्दर में प्रवेश करता है। प्रमेह के बाद भी तरुण सन्धि प्रदाह हो सकता है।

साधारण आक्रमण

क्रोष्टु, शीर्षक के साधारण आक्रमण में इस रोग का प्रथम आरम्भ हो सकता है। किन्तु सामान्य अङ्ग संचालन से ही आक्रान्त संधि की यातना क्रमसे अत्यन्त कठोर हो जाती है।

क्रम से उत्ताप बढ़ जाता है। त्वचा लाल हो जाती है। उस समय वह सहज में फैल नहीं सकती हैं। उसके साथ ज्वर बढ़ जाता है। शरीर का ताप बढ़ जाता है। नाड़ी जल्दी २ चलने लगती है। मल से युक्त जिह्वा मालूम होती है। सामान्य कम्प, गुरु कम्प, प्रकाशित होता है।

निदान और चिह्नादि

इस रोग के कारण और उत्पत्ति के तुल्य इसकी गति घटती बढ़ती रहती है। स्वाभाविक पूय जन्य, और संक्रामक प्रदाह में निम्न लिखित परिवर्तन होता है। सन्धि श्लेषक आभ्यन्तर कोष (साइनोविएल मेम्ब्रेन) से अस्थि और चारों तरफ के विधान तन्तुओं में प्रदाह बहुत जल्दी फैलता हैं। उस समय पूय होवे तो सम्पूर्ण तरुणास्थि नष्ट हो जाती है। सब बन्धन कोमल हो जाते हैं। सम्पूर्ण अस्थि का संयोग प्रांत स्थान से हटा हुआ और परिमाण में वह सन्धी एक व्रण शोथ के गह्वर में परिणित हो जाती है। सन्धि का टोप (कैपस्यूल) भङ्ग हो जाता है। और प्रदाह जन्य सब पदार्थ कोमल और तन्तु समुदाय फैल जाता है। इस रूप में यह सब अंश प्रदाह से आक्रान्त और शोथ से ग्रस्त होकर पूय से भर जाता है।

क्रम से वह पूय कई मुखों से बाहर निकल कर प्रत्येक मुख में एक २ नाड़ी व्रण प्रकाशित होते हैं। वे सब नाड़ी व्रण एक बार में उस सन्धि तक फैल जाते हैं। इस रोग के परिणाम में मलाक्त रक्त रोग (सैप्रिमिया) पूय दूषित रक्त रोग (पायिमिया) प्रकाशित होता है। वा तीसरे पहर आनेवाला ज्वर (हेक्टिक् ज्वर) प्रकाशित होता है, उस समय में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

पहिले पहिले तरुण क्रोष्टुक शीर्ष के तुल्य चिकित्सा करनी चाहिये। किन्तु पूय (पीव) होनेपर सन्धि को दो तीन स्थल में खोल देना चाहिये। पत्रन निवारक लोशन से धोवे। इसी प्रक्रिया से बांधे। उस सन्धि के चारों तरफ जहांतक व्रण शोथ होवे अस्त्र से उस सब को खोल देवे। पत्रन निवारक बन्धनों से बांधे पूय जन्य विषीकरण अथवा अवसाद के लक्षण प्रकाशित होवें तो अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) करना चाहिये॥

अङ्गविकार समूह प्रकरण

मन्या स्तम्भ

उरः कर्ण मूलिका पेशी (Sterno mastoid muscle) केसंकुचित हो जाने पर यह रोग उत्पन्न होता हैं। यह आजन्म और सम्प्राप्त होता हैं। इसका दूसरा नाम राइनेक है।

कारण

आजन्म प्रकार के अधिकतर तीन कारण देखे जाते हैं।

१—जन्म काल में अभिघात जैसे शिशु का माथा आगे न बाहर होकर श्रोणी बाहर होजावे। उससे उरः कर्ण मूलिका पेशी छिन्न हो जाती है।

२—जरायु के मध्य में शिशु का विकृत आसन।

३—स्नायविक पीड़ा से उरः कर्ण मूलिका पेशी का संकोचन।

संप्राप्त प्रकार

सम्प्राप्त प्रकार में भी तीन कारण होते हैं।

१—शैत्य, वात, अभिघात, अथवा ग्रीवा की ग्रन्थियों में प्रदाह होने से ग्रींवा बहुत दिन तक जकड़ी रहे।

२—योषा पस्मार (हिस्टीरिया)

३—मेरु दण्ड की स्नायु की उग्रता से आक्षेप।

पीड़ा चिरकाल की होने से कटी का अवलम्बन करने वाले मेरु दण्ड में वक्रता हो जाती है।

चिकित्सा

आजन्म मन्यास्तम्भ में रोगी की बाल्यावस्था में ही चिकित्सा करनी चाहिये। ऐसा रूप होने पर अधिकतर उर, कर्ण, मूलिका, पेशी, का छेदन करना चाहिये। पीडा सामान्य होने पर थोड़े २ व्यायाम से भी इसका प्रतिकार हो सकता हैं। इस रोगके प्रतिकार के लिये एक प्रकारका यन्त्र व्यहार में लाया जाता है। अति कठोर प्रकृति की पीड़ा होने पर यन्त्र का उपयोग करना चाहिये। आक्षेप से युक्त इस रोग की चिकित्सा के लिये कोनाइम (Conium) गांजा, पोटास, ब्रोमाइड आदि औषधियों की व्यवस्था की जा सकती हैं। इससे उपकार न होवे तो स्पाइनेल ऐक्सेसरी एकादशनाड़ी का विस्तार करना चाहिये। रोग कष्ट साध्य होनेपर इस नाड़ीका कुछ अंश छील देना चाहिये। योषापस्मार (हिस्टीरिया) ग्रस्त रोगिणी को हिस्टीरिया के तुल्य ही चिकित्सा करनी चाहिये।

जानु स्तम्भ

इस पीड़ा का दूसरा नाम (जेनू वेलगम) है, इसमें दोनों जानु सूज करके विस्तृत हो जाते हैं। दोनों पांव भिन्न २ दिशा में फैल जाते है। एक अथवा दोनों जानु आक्रान्त हो सकते हैं। इसका प्रधान कारण अस्थि कोमलता (रिकेटस्) हैं। दूसरे अथवा सातवें वर्ष के मध्य में जो अस्थि कोमलता रोग (रिकेटस्) होता है इसके दो कारण हैं। गुरु भार वहन, और अधिक काल तक खड़ा रहना।

चिकित्सा

बालक के रोग कम मात्रा में होवें। तो उसके जानुपर पार्श्व फलक (स्प्लिन्ट) प्रयोग करना चाहिये। और उपयुक्त औषधि की व्यवस्था करना चाहिये। रोग चिरकाल का होने से स्प्लिन्ट से अथवा अन्य किसी यन्त्रसे मामूली लाभ होवे, तो अस्त्र प्रयोग करना चाहिये।

द्वितीय जानुस्तम्भ (जेनूवेरम)

जेनूवेलगम, की विपरीत अवस्था को जेनूवेरम कहते हैं अंग्रेजीमें इसको (वोलेग्स अर्थात् धनुष्पादक कहते हैं। इसमें पांव ठीक धनुष के तुल्य टेढ़ा होजाता है।

उत्तानपाद

इस रोग में पांव की हड्डियों के साथ पादकूर्च की अस्थियों का सम्बन्ध अनेक प्रकार से परिवर्तित होजाता हैं, यह रोग दो प्रकार का होता है। आजन्म, और सम्प्राप्त आजन्म, उत्तान पाद का कारण, जरायु के मध्य में आसन दोष, और स्नायु दोष गुल्फ में कोई पीड़ा होने से यह रोग पैदा होता हैं।

प्रकार भेद

सर्व सम्मति से उत्तानपाद पांच प्रकार का होता है १—घोड़े के तुल्य, अंगुलियों पर चलना (टेलिपस इकूनस्) २—दाहिने पांव पर चलना (टेलिस वेरस) ३—पार्ष्णि के बल चलना (टैलिपेस् कैल केनियस) ४—अन्दर के पाद के किनारे के बल चलना (टैलिपस् वलगम) ५—तोरणाधिक्यपाद (टैलिपस् केवस्) इन पांच प्रकारों के मध्य में आपस में मिल जाने से अनेक प्रकार का उत्तानपाद होता है जैसे अंगुष्ठ के बल चलना (इकूइनावेरस) इत्यादि।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा करना होवे, तो दो विषयों में विशेष दृष्टि रखना चाहिये। १—विकृति पांव को स्वाभाविक अवस्था में लाना। २—जितने दिन उसका सम्पूर्ण स्वाभाविक कार्य प्रारम्भ न होवे, तब तक उसी अवस्था में रखना चाहिये। उसके बाद जब जाने, कि दूसरे आक्रमण को कोई आशंका नहीं है। उस समय पांव को छोड़ देना चाहिये। आजन्म प्रकार को चिकित्सा में जितनी जल्दी हो सके उतना ही अच्छा है। पाश्चात्य देश के प्रधान २ चिकित्सकों का मत है, कि बालक पैदा होते हुये ही उसके उत्तानपाद का प्रतिकार करना चाहिये। इस रोग की चिकित्सा में कर कौशल अस्त्रकौशल, और भैषज्यविधान इन तीन प्रकारों की आवश्यकता होती है। करकौशल से विकृत पांव को मरोड़ करके सीधा करे, प्लेष्टर आफपैरिस के बन्धन से उसी अवस्था में पांव को रक्खे। सप्ताह में एक वार अथवा दो वार मरोड़ देना चाहिये। अस्त्रकौशल से, कितनी रज्जु, स्नायु, और समय २ पर पादकूर्च (टर्शल) की अस्थि काटी जाती है निम्नलिखित अस्त्रोपचार भी समय २ पर आवश्यक होते हैं। फेल्प का उन्मुक्त छेद (Phelps open incision) बूकानन का सबक्यूटैनियस सेकशन, फिट जालैन्ड का अस्त्रोपचार केन्ट ह्यूज का अस्त्रोपचार, अथवा बलपूर्वक परिशोधन ये सब अस्त्रोपचार बड़े कठिन हैं। परम प्रवीण शल्य चिकित्सक ही इस कार्य में हस्तार्पण करें।

मुख मंडल का पीडा समूह.

शशोष्ठ वा खंडोंष्ठ (हेयर लिप)

प्रकृति—शशक (खरगोश) के ओष्ठ के साथ इसका अधिक सदृश्य मिलता है। इसलिये इसका नाम शशौष्ठ प्रचलित हुआ हैं ! यह ओष्ठ की एक आजन्म पीड़ा है। इस रोग में ओठ की मध्य रेखा में एक छेद हो जाता हैं। कभी २ पार्श्व में भी ऐसा छेद देखा जाता हैं। वह छेद नासा तक फैल जाता है। कभी २ नासिका के छेद तक, कभी कभी चक्षु के प्रान्त तक वह छेद फैल जाता है। ओठ छेद के साथ २ कभी कभी तालु छेद भी देखा जाता है। और पंजे जैसा मुड़ा हुआ (क्लाब फूट) छिन्न सुषुम्ना (स्पाइना विफाडा) आदि भी अङ्ग विकार देखे जाते हैं। कभी ओंठ के दो स्थानों में छेद हो जाता हैं।

चिकित्सा

यह रोग अस्त्र साध्य है। ओष्ठ छेद के दोनों मुखों को छील कर आपस में संयुक्त कर देवे, शशौष्ठ की आलपीन आदि से रक्षा करना चाहिये। इससे कार्य की

सिद्ध हा सकती हैं। तीसरे और पांचवें मांस के मध्य में बालक के ओठ में अस्त्र प्रयोग करे। इसके पहिले उपयुक्त आहार से बालक को पुष्ट करना चाहिये। और उसके उपदंश आदि कोई दोष होवे। उसका संशोधन करना चाहिये। शशौष्ठ के अनेक प्रकार के अस्त्रोपचार प्रचलित हैं। उनके मध्य में जो सहज है। इस स्थान में उनका वर्णन है।

कर्ण व्याधि प्रकरण

कान के बाहर, मध्य में, और अभ्यन्तर भाग में जो पीडायें प्रकाशित होती है। नीचे उनका वर्णन लिखा जायगा। पहिले कान के बाहर की जो पीडायें होती हैं। उनके मध्य में केवल दो पीडाओं का वर्णन किया जाता हैं। पामा और रक्तार्बुद।

पामा [एक्जिमा]

यह रोग दो प्रकार का होता है। तरुण और पुरातन। तरुण प्रकार में कान का बाह्य कर्ण (अरिकल) अत्यन्त लाल होकर फूल जाता है वह उत्तप्त और कोमल हो जाता है। उसके बाद उसके ऊपर छोटी २ फुन्सियां निकल आती है। इन फुन्सियों से एक प्रकार का पतला रस निकलता हैं क्रमसे वह रस सूख कर पपडी रूप में परिणत हो जाता है। बाद को गिर पड़ता है। तरुण पामा से (कर्ण कुहर) मियाटस कभी २ आक्रान्त हो जाता है॥ पुरातन प्रकार का पामा सम्पूर्ण बाह्य कर्ण (अरिकल) को आक्रान्त कर सकता है। अधिकतर उसका कुछ अंश आक्रान्त हो जाता है आक्रान्त अंश में लालिमा नहीं दिखलाई देती हैं। ऊपर का अंश सूख जाता है। इसलिये स्थान स्थान पर फट जाता है। मियाटस (कर्ण कुहर) की पीड़ा कभी २ पटह झिल्ली (ड्राम-मेम्ब्रैन) तक फैल जाती हैं। इस अवस्था में थोड़ा अथवा अधिक बहिरापन हो जाता है।

चिकित्सा

तरुण प्रकार में सीसा, और अफीम का लोशन प्रयोग करे। इसके बाद लिनिमेन्टम् कैलसिस देना आवश्यक है। आक्रान्त अंश की लालिमा और सूजन कम न होवे तो आर्जेन्टाई नाइट्रेस, का लेप करके बोरैसिक एसिड का चूर्ण प्रयोग करे। मियाटस (कर्ण कुहर) में ओषध देने का प्रयोजन होवे तो उसको साफ करके सावधानता से क्षत को धोवे बाद ओटसिल का प्रयोग करे। इसके साथ २ सार्वाङ्गिक चिकित्सा भी करना चाहिये।

रक्तार्बुद (हिमेटोमा)

वाह्यकर्ण (अरिकल) के सन्मुख अंश में, हृदयच्छदाकला (पेरिकार्डियम) और तरुणास्थि के मध्य में शोणित प्रस्तुत होता है। उसको कर्ण रक्तार्बुद (हिमेटोमा अरिस्) कहते हैं।

यह रोग स्वयं ही होता है। अथवा अभिघात से उत्पन्न होता है। उन्माद आदि रोगों के मध्य में यह रोग सदा देखा जाता है। यह कठिन शोथ के आकार में प्रकाशित होता है। समय पर इसके भीतर में तरङ्ग प्रकाशित होता है। वह स्पर्श में उष्ण होता है, और कुछ पीड़ा पैदा करने वाला होता है। काल क्रम से वह छोटा होकर अन्त में अदृश्य हो जाता है। कभी २ इसमें पूय देखा जाता है। परिणाम में वाह्यकर्ण (अरिकल) को अल्पाधिक परिमाण में विकृति हो जाती है।

चिकित्सा

पहिले बरफ आदि का शीतल परिषेक करें। कोई २ इसमें सुई लगाकर आयोडीन का प्रक्षेप करते हैं। कोई २ चिकित्सक कहते हैं, अस्त्र से इसको खोल कर मृदु कार्बोलिक अथवा बोरेसिक ऐसिड से धोना चाहिये। पूय होने पर अवश्य उन्मुक्त करना चाहिये।

कर्णकुहर (मियाटस) पीड़ा प्रकरण

प्रदाह

कर्णकुहर में व्यापक प्रदाह हो सकता है। वह प्रदाह अनेक कारणोंसे पैदा होता है। किसी प्रकार के अभिघात होने पर पतले कांटे, आलपीन आदि से छिल जाने पर अथवा समुद्र के जल में स्नान करने पर प्रदाह होता हैं। मियाटस के ऊपर की त्वचालाल होकर फूल जाती है। और वह भरा हुआ मालूम होता है। और दप २ शक होता है। उससे एक प्रकार का स्राव निकलता है। श्रुति पटह (टिम्पैनिकमेम्ब्रेन) खोखला हो जाता है। उसमें कई प्रकार की वेदना होती है। हनु को हिलाने डुलाने से भी वेदना बढ़ जाती है। कभी ज्वर भी आ जाता है।

चिकित्सा

पहिले कर्णास्थि पर शीतल परिषेक करना चाहिये। और दो एक जोंक लगाना

चाहिये । स्राव आरम्भ होने पर बोरेसिक ऐसिड और सम परिणाम में ऐलकोहल और जल मिलाकर डालना चाहिये । अथवा बोरेसिक एसिड का चूर्ण डाले । स्राव दुरारोग्य होने पर नाइट्रट आफ सिलवर, सल्यूशन, अथवा फ्लबाईसव ऐसिटेटिस का लेप करें। इससे अच्छा होता है ।

कानके मध्यका पीड़ा समूह

तरुण प्रतिश्याय

अधिक ठंडक, अनेक प्रकार के चर्म रोग, समुद्र जल में स्नान आदि इसके कारण हैं । पीड़ा के प्रारम्भ में माथा पूर्ण मालूम होता है । साथ २ यातना प्रकाशित होती हैं। अल्प मात्रा में अथवा अधिक मात्रा में बहरापन हो जाता है, चक्कर आता है । पीड़ा कठोर होने पर ज्वर भी आ जाता हैं । कण्ठकर्णी नाली की आवरक झिल्ली में प्रदाह होने से वह फूल जाती है । और नाली बन्द हो जाती है । कई दिन के बाद प्रदाह स्वयं ही बन्द हो जाता है । अथवा झिल्ली को भेद करके कर्णस्राव निकलता है । और कर्ण कुहर (मियाटस) में टपकता हैं ।

चिकित्सा

पीड़ा की प्रकृति के अनुकूल रोगी को शय्या पर हो लिटाये रक्खें, मृदु विरेचक औषधि देवें । और संकोचक औषधियों से कुल्ला करावें । पीड़ा अत्यन्त कठोर होने पर कर्णास्थि के ऊपर एक जोंक लगावें । शीतल परिषेक वर्जित है । उष्णस्वेद से रोगी को आराम होता हैं । किसी पचन निवारक लोशन (द्रव) से कान के मध्य में धीरे २ पिचकारी से धोने पर लाभ होता है । गोस्तनी (मेष्टाइड) के ऊपर शोथ दिखलाई देवे, तो उसके ऊपर जोंक लगावे । रोग की अधिकता में यदि आवश्यकता होवे, तो वायु क्षेप से कर्ण पटह (टिम्पेनम) को प्रतिदिन विस्फारित करना चाहिये । स्राव कम न होवे, तो प्रतिदिन, प्रातः सायंकाल में, बोरेसिक लोशन से कान के छेद को धोना चाहिये । सल्फेट् आफ जिङ्क, कालोशन, अथवा सम परिमाण में रेक्टीफाइड स्पिरिट, औरजल प्रक्षेप करना चाहिये । अथवा गरम जल से कान को धोवे । और सूख जाने पर चूर्ण बोरेसिक ऐसिड, फूंक करके इसके मध्य में प्रक्षिप्त करे । कैटार पूयोत्पादक न होने पर झिल्ली में कहीं २ पर छिद्र हो जाता हैं और छिद्र होने पर भी वह सड़ जाता है ।

पुरातन पूयोत्पादक कैटार

प्रकृति और प्रतिकार—अधिकतर यह कर्ण स्राव (Ottorrhoea) नामसे कहा जाता हैं। तरुण कैटार की पीड़ा के बाद यही पुरातन प्रकार हो जाता है । कान का

स्राव रुक जावे, तो झिल्ली मोटी हो जाती है। इससे कर्ण पटहमें छिद्र हो जाता है। बहरा हो जाता है। चक्कर आने लगता है। इस रोग के साथ कई उपसर्ग देखे जाते हैं। रोगी के पहिले स्वास्थ्य पर विचार करें। बाद को रोगी की चिकित्सा में प्रवृत्त होवे। शौच ठीक आवे, यही इस रोग को प्रधान चिकित्सा है। कर्ण कुहर (मियाटस) में आधा सूखा हुआ काल का गल दिखलाई देवे, तो गरम बाईकार्बनेट आफ सोडा का निषेक करके कर्ण छिद्र को अच्छी तरह से धोवे। उसके बाद प्रतिदिन सायंकाल प्रातः काल, गरम बोरेसिक एसिड से कर्ण छिद्र को धोवे। और वह सूख जाने पर चूर्ण बोरेसिक एसिड फूक से डाले। इससे कार्य के सिद्ध न होने पर बोरेसिक एसिड का एक सुरा द्रव प्रयोग करके परीक्षा करे। इससे पात न होने पर सम परिमाण में जल मिला कर पतला करें, फिर डालें। यह सम्पूर्ण चिकित्सा कर लेने पर भी स्राव का परिणाम कम न होवे तो अस्त्र प्रयोग करना चाहिये।

अन्तः कर्ण का पीड़ा समूह

अन्तः करण में कई प्रकार को पीड़ा होती हैं। परन्तु अब तक उनके विषय में कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। ये सम्पूर्ण रोग अधिकतर मध्य कर्ण की पीड़ाओं के द्वितीय प्रकार के रूप में परिस्फुट होते है। परन्तु लाल ज्वर (स्कार्लेट फीवर) मसूरिका, मस्तिष्क ज्वर (टाइफस) झूठी झिल्ली (डिपथेरिया) उपदंश, आदि पीड़ा, मस्तिष्क परिवेष्टनी कला प्रदाह (मेनिञ्जाइटिस) मस्तिष्क में व्रण शोथ, अथवा अधिक मात्रा में कुनाइन, खाने से अन्तःकर्ण में पीड़ा होती हैं।

मुख की दाह

मुखगह्वर में जो प्रदाह होता है। उसको, स्टोमैटाइटिस् कहते हैं। प्रदाह अनेक प्रकार का होता हैं। उनमें जो छः मुख्य है। वे लिखे जाते हैं। १–पूयपिटिका (हार्पेटिक) २–पैरासाइटिक (कृमिजन्य) ३–आलसारेटिव (व्रणकारक) ४–पारदीय (मर्क्यूरियल) ५–उपदंशिक ६–गैग्रिनजन्य।

पूयपिटिका जन्य मुख प्रदाह

पूयपिटिका जन्य मुख प्रदाह के आक्रमण से ओंठ के अन्दर में, अथवा जिह्वा के प्रान्त में छोटी २ फुन्सियां बाहर निकल आतीं हैं। साथ २ स्नायु शूल के तुल्य तीव्र व्यथा होती हैं। फुन्सियां शीघ्र ही फट जाती हैं। अजीर्ण वाले रोगी स्नायु रोग से पीड़ित स्त्रियां इस रोग से आक्रान्त होजाती हैं।

समय २ पर यातना इतनी बढ़ जाती हैं। कि रोगी को भोजन करने में भी कष्ट होता है। पीड़ा शान्त होजाती है, फिर भी पैदा होजाती है, इसकी चिकित्सा में मृदु विरेचन देवे। तूतिया १ माशा गेरु ४ भाग लेकर खूब पीस लेना चाहिये, फिर गरम पानी में इस चूर्ण को डाल कर सायंकाल, प्रातः काल, कुल्ला करे। और सफेद इलायची, वंशलोचन, सफेद कत्था, शीतल चीनी ये समभाग में लेकर चूर्ण बनावे। फिर इस चूर्ण को फुन्सियों पर डाले। इससे आराम होता है। लघु भोजन करावे।

कृमि जन्य मुख प्रदाह

इस रोग के आक्रमण से मुख गह्वर में सादा दाग पड़ जाता है। यह रोग दूषित जीवाणुओं से उत्पन्न होता है। इसलिये अत्यन्त निन्दनीय पीड़ा हैं। कण्ठ नाली, और अन्न वहा नाली तक फैल जाता हैं। बालकों को यह रोग होता है। और दुर्बल तरुण पुरुषों को भी यह रोग होता है। पीड़ाके साथ उदर रोग भी देखा जाता है। अथवा पूति विष शरीर में प्रविष्ट होजाने पर रोग सांघातिक हो जाता है। यह रोग संक्रामक होता हैं बालकों के पेय दूध और दूध पीने के चम्मच से एक रोगी से अन्य रोगी में फैलता हैं।

चिकित्सा

सुहागा को अग्नि पर फुलालेवे, बाद को पीस लेवें, उसमें शहद मिलाकर क्षत पर लगावे। लघु पथ्य देवे।

क्षतजन्य मुख प्रदाह (आलसारेटिवष्टो मैटाइटिस)

क्षत जन्य मुख प्रदाह अत्यन्त कष्ट दायक है पक्वाशय का रोग, दन्तोद्गमजन्य स्थानिक उत्तेजना, अथवा निन्दित भोजन वस्त्र से यह रोग उत्पन्न हो सकता है। इस क्षत के ऊपर भाग में एक प्रकार पोला पूति मांस आच्छादित रहता है। इसके साथ २ रोगी के मसूड़ा लाल, सूजे हुये होते हैं। उसकी निःश्वास में दुर्गन्ध आती है। उत्तेजक चिकित्सा इस रोग में हितकारी है। रहने का स्थान, भोजन वस्त्रादि शुद्ध पवित्र होना चाहिये, क्लोरेट आफ़ पोटास के कुल्ला से मुख को धोवे। बाइसायेनाइड़ आफ मर्करीलोशन, अथवा अन्य कोई पूति नाशक पदार्थ से क्षत को लिप्त रक्खे।

पारदीय मुखप्रदाह

उपदंश की पीडा के द्वितीय अथवा तृतीय क्रम में उपदंशिक मुख प्रदाह पैदा होता है। इसका वर्णन "उपदंशविज्ञान" नामक लेखक की लिखी हुई पोथी में, देखना चाहिये।

अधिक मात्रामें पारद सेवन करनेसे, अथवा कोई क्षतपर क्लोराइड आफ़ मर्करी के उग्र सल्यूशन (द्रव) से धोने पर पारदीय मुख प्रदाह उत्पन्न होता है इससे श्वांस में दुर्गन्ध,

जिह्वा में सूजन, मसूड़ों में छेद, अधिक मात्रा में लार का निकलना, कर्ण मूलाग्र वर्ती लाला ग्रन्थि और हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि फूल जाती है। और दांत शिथिल हो जाते हैं। यह गलित क्षत में परिणत हो जाता हैं। ऐसा होने पर कोमल अंश नष्ट हो जाता है और अस्थि में मृतास्थि (निक्रोसिस) भी हो जाती है।

क्लोरेट आफ़ पोटास का अभ्यन्तरीय प्रयोग करे। और धोने के लिये भी व्यवहार में लाना चाहिये। पौष्टिक पतले भोजन देना चाहिये। और उत्तेजक औषध भी देना चाहिये।

उपजिह्वा

यह एक प्रकार गोलाकार, अथवा अण्डाकार अर्बुद है। मुख के और जिह्वा के एक तरफ़ में ये सब अर्बुद पैदा होते हैं। ये छोटे होते हुये भी जिह्वा के सदृश होते हैं। साधारण रीति से यह उपजिह्वा नाम से बोला जाता है उपजिह्वा (रैन्यूला) दो प्रकार का होता है। आजन्म अथवा, सम्प्राप्त। और रैन्यूला चार प्रकार का होता है।

१-जिह्वाधरीय रैन्यूला, २-हन्वधरीय रैन्यूला, ३-ग्लैंडिनका रैन्यूला ४-इन् साइसिव रैन्यूला (कर्तनक दांतों के पीछे जिह्वा के नीचे रैन्यूला)

चिकित्सा

उपजिह्वा (रैन्यूला) होते हुये ही उसमें कोकीन लगा कर कैंची से काट देवे। ऐसा करने से शीघ्र ही अच्छा हो जाता है।

जिह्वा स्तम्भ

इसका दूसरा नाम कञ्जेनिटैल एंकिलोग्लोसिया है यह रोग बहुत कम होता हैं। इसके आक्रमण में तन्तुआ (फ्रिनम) छोटा पड़ जाता हैं। इस लिये बालक दूध भी नहीं खींच सकता हैं। और उसके बोलने में भी बाधा पड़ती है। यह पीड़ा अस्त्र साध्य है। इसका अस्त्रोपचार अत्यन्त कठिन है। अतः चतुर शल्य चिकित्सक ही इस काम को करे, और किसी को नहीं करना चाहिये।

अतिजिह्वा [मैक्रोग्लोसिया]

अभिप्राय—यह रोग बहुत कम होता है। इस रोग में जिह्वा अत्यन्त बढ़ जाती है। यहां तक कि मुख के बाहर जिह्वा झूलने लगती है। आजन्म उन्माद आदि रोगों में यह रोग देखा जाता है। दाँतों की रगड़ से जिह्वा के ऊपर क्षत हो जाता है। इस लिये समय २ पर प्रदाह होता है। साधारणतः अति जिह्वा रोग जन्म से होता है। इस लिये

चिरकाल से उत्पन्न हुये उपदंश रोग से जिह्वा के ऊपर ग्रन्थि पैदा हो जाती है। और अत्यन्त जिह्वा बढ़ जाती है।

चिकित्सा

मुख के बाहर में जिह्वा का जो अंश होता है। उसमें V. आकार में एक छेद करके उस अंश को काट देना चाहिये। उसके बाद जिह्वाको सीं देना चाहिये।

जिह्वार्बुद

चिकित्सा—जिह्वा का छोटा अर्बुद दो प्रकार का होता है। मृदु और दूष्य, जिह्वा में चर्म कील के तुल्य छोटे २ अर्बुद होवें, तो उनको छुरिका से काट देना चाहिये। जिह्वा में मांसार्बुद ही दूष्य होता है। जिह्वा के पेशिक अंश में इस प्रकार का अर्बुद उ- उत्पन्न होता है, इस प्रकार का अर्बुद अत्यन्त हानिकारक है। इस लिये इनका शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिये। जिह्वाच्छेदके लिये तीन प्रकारका अस्त्रोपचार प्रचलित है। प्रथम V. के आकार का छेद, द्वितीय होयाइटहेडकी प्रक्रिया और तृतीय ककारका अस्त्रोपचार।

अस्त्रोपचार करने के पहिले रोगी का मुख और दांत आदि अच्छी तरह से साफ कर लेवे। तब अस्त्रोपचार करना चाहिये। क्लोरोफार्म का प्रयोग करने पर अच्छा होता है। रोगी का मस्तक और दोनों हाथ ऊंचे करके रक्खे। कोई शल्य चिकित्सक रोगी के माथा को मेज के प्रान्त में झुलाते हुये अस्त्रोपचार करते हैं। किन्तु उससे रक्त अधिक निकलता है। पहिले इस अस्त्रोपचारमें अनेक प्रकारके इकंशिया प्रयोग किये जाते थे। किन्तु इस समय छुरा व कैंची अधिक उपयोगी समझ कर प्रयोग किया जाती हैं। इन तीन प्रकार के अस्त्रोपचार में जिह्वा के ऊपर का भाग अथवा सब जिह्वा छेदित हो जाती है। इस प्रकार के अस्त्रोपचार के उपसर्ग निःसरण शोणित स्राव कीटाणु जन्य श्वसनकज्वर (सेप्टिकन्युमोनिया) आदि हैं, अस्त्र प्रयोग के बाद क्षत स्थान में, आइडोफार्म का चूर्ण डाल करके आइडोफार्म की वत्ती से मुख गह्वर पूर्ण कर देवे। और कण्डिलफ्लूइड अथवा अन्य किसी पूति निवारक लोशन से धोवे। पीछे से फुफ्फुस में रक्ताधिक्य होवे। इसलिये रोगी तकिया पर भार देकर ग्रीवा ऊंची करके लेटे। नल से मुख अथवा नाक के छेद से तरल पेय पदार्थ को पिलाना चाहिये। अथवा पिचकारी से गुदा के मध्य में प्रवेश करे। नाक में नल प्रवेश करने पर रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। इसी लिये दूसरा उपाय करना चाहिये।

काकलक प्रदाह

कंठ में, कंटार (प्रतिश्याय) होवे। तो उसके साथ २ बहुत से उपद्रव होते हैं। उनमें से काकलक (काक) प्रदाह भी एक उपद्रव है। इसमें काक बढ़ जाता है। और लाल वर्ण हो जाता है। अधिकतर लम्बाई में बढ़ता है।

चिकित्सा

टिञ्चर स्टील और ग्लिसरनि (गलित स्नेह) एक में मिला कर उस पर लगाना चाहिये। इससे शान्त होजाता है इससे शान्ति न होवे। तो कैटार की चिकित्सा करनी चाहिये। इससे भी लाभ न हो तो बढ़े हुये भाग को काट देना चाहिये।

तालुविदार (क्लेफ्ट पैलेट)

यह एक प्रकार का आजन्म रोग हैं। इसरोग से तालु के मध्य में एक बड़ा विदार होजाता है। कभी २ यह फाक तक फैल जाता है। रोगी की अवस्था के अनुकूल तालु विदार का परिमाण होता हैं। यह बाल्यावस्था में शिशु के स्तन्य पान में और परिपाक में विशेष व्याघात पहुंचाता है। और अधिक अवस्था में स्वर, और उच्चारण, स्वाद, आघ्राण और श्रवण शक्ति में विशेष बाधा देता है। इस रोग के साथ खण्डौष्ठ (हेयर लिप) भी कभी २ देखा जाता हैं।

चिकित्सा

यह रोग अस्त्र साध्य है। बालक लेट करके अथवा बैठ कर स्तन्य पान नहीं कर सकता हैं। इसलिये चम्मच से माता का दूध उसके गले में डालें। अथवा बच्चों को दूध पिलाने वाली शीशी (फीडिंग बोटल) से दूध पिलावें।

बालक के बोलने के पहिले इस अस्त्रोपचार को करना चाहिये। इसमें कठिन और कोमल तालू दोनों को एक साथ बन्द करना चाहिये। खण्डौष्ठ होने पर उसका प्रतीकार करना चाहिये। अस्त्र प्रयोग करने के पहिले शिशु के दांत साफ कर लेवे। जिह्वा बड़ी होने पर उसको काट देवे। और तालूका विदार बन्द करने के लिये उपयुक्त समय ठीक करना चाहिये। स्निग्ध समय में और जिस समय शिशु को सर्दी खांसी होवे। उस समय में अस्त्रोपचार करना चाहिये।

शस्त्र प्रयोग विधि

इस अस्त्रोपचार में पांच प्रकार के यन्त्रादिक व्यौहार किये जाते हैं। दो सुई, मुख खोलने का यन्त्र (गैग) एक सुई को पकड़ने वाला यन्त्र (सूचर कैचर) और एक तार मोड़ने वाला यन्त्र (वायर ह्वीष्टर) इन पांच यन्त्रों के आविष्कारक स्मिथ महोदय हैं। पहिले गैग यन्त्र से रोगी का मुख खोले। सुई में तार, अथवा धागा डाल कर तालु विदार (फटी हुई) की सिलाई करे। इस अस्त्रोपचार के पहिले जन्कर के यन्त्र से क्लोरोफार्म का प्रयोग करे। पहिले कोमल तालु में फिर कठिन तालु में अस्त्र प्रयोग करना चाहिये।

सुई से सिलाई करके सूत्र कैत्रर से, उसको पकड़े रक्खे। और वायरष्ट्वइटर, नामक यन्त्र से उसको पक्का देना चाहिये। इस अस्त्र प्रयोग से रक्त स्राव होवे, तो उसकी प्रकृति कभी २ कठिन हो जाती हैं। अतः रक्तस्राव होवे, तो बरफ का जल उस पर डाले। इससे रक्त स्राव बन्द हो जाता है, पहिले कई दिन तक रोगी को बरफ मिला हुआ दूध पिलावे। उसके बाद पन्द्रह दिन तक कोमल खाद्य देना चाहिये। तीन सप्ताह अथवा एक मास तक सिलाई को अक्षुण्ण रक्खे। उसके बाद खोल देवे, रोगी चञ्चल होवे तो क्लोरोफार्म प्रयोग कर तार को खोलना चाहिये। एक वार अस्त्र प्रयोग से विदार बन्द न होवे। तो दूसरी वार शस्त्र प्रयोग करना चाहिये। विदार अस्त्र साध्य न होवे, तो दन्त चिकित्सक से उसके ऊपर एक अवटूरेट, को बैठा करके फांक को बन्द कर देना चाहिये।

कठिन तालु की मृतास्थि (निक्रोसिस)

मृतास्थि—यह पीड़ा उपदंश से होवे, तो तालु में उपदंशिक ग्रन्थि उत्पन्न होकर भङ्ग होने पर निक्रोसिस और समय २ पर उसमें और नासिका के प्राचीर (सेप्टम) छेद हो जाते है। अथवा नष्ट हो जाता हैं।

चिकित्सा

अधिक मात्रा में आइयोडाइड आफ पोटासियम् का प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद क्षत अच्छा होने पर छेदों को बन्द करने के लिये। एक अवटूरेट को स्थापित करे।

तरुण गलशुण्डि

कारण—जिनका शरीर दुर्बल अथवा वात ग्रस्त, अथवा जिनके गलशुण्डि रोग कई वार हो चुका होवे, उनके ठंडक लगने से यह रोग हो जाता हैं दुर्गन्धि से युक्त वाष्प को आघ्राण करने से लालज्वर लघुमसूरिका जन्य ज्वर से आक्रान्त होने से गलशुण्डी रोग हो जाता हैं।

लक्षण

सामान्य कम्प व कभी २ गुरु कम्प के साथ रोग का प्रारम्भ होवे। और साथ २ शरीर का ताप बढ जावे। मल से लिप्त जिह्वा, श्वास में दुर्गन्धि लालास्राव ठहर, ठहर कर कान तक व्यथा होवे। निगलने में व्यथा और बढ़ जाती है। हनुके पीछे की ग्रन्थियां फूल जातीं हैं। गल द्वार थिति कोलास्थि सन्निभग्रन्थि (टनसिल) एक कभी कभी दोनों फूल कर लाल हो जाती हैं। समय ५ पर दोनों मिल जाती हैं तालुके अन्यान्य अंश फूल जाते हैं। उस समय प्रदाह कम हो जाता हैं। अथवा उसमें पूय हो जाता हैं।

चिकित्सा

रोग के आक्रमण करते हुये ही जुलाब देना चाहिये। उसके साथ २ पर क्लोराइड आफ्आयरन्, कुनैन, खाने के लिये देवें। पूय दिखलाई देने पर गले केमध्यमें उष्ण वाष्फ देवे। ऊपर से वोरे सिक, पुल्टिस प्रयोग करे।

फलिक्यूलर टन्सिलाटिस

Follicular Tonsilitis.

प्रकृति—जिनके शरीर में रक्त कम हो जाता हैं। अथवा थोड़ी जगह में बहुत से आदमी रहते हैं। जिनका स्वर यन्त्र अधिक चलता हैं।

जैसे—गायक, व्याख्यान दाता, आदि। उनके यह रोग होता है। इसका प्रधान लक्षण खांसी, और सर्दी हैं। और सब लक्षण गल शुण्डि के समान ही है। फलिकल (लघुकोष) के ऊपर जो नवीन त्वचा होती है। उसको छील देवे उसके ऊपर सैलेसिलक ऐसिड का एक लेप करे।

तुण्डि केरी

Abscess of Tonsil.

लक्षण—गलशुण्डी अथवा सर्दी से गल ग्रन्थि के बन्द हो जाने पर उसके माथा पर व्रण शोथ पैदा होजाता है। इसके आक्रमण से रोगी अवसन्न हो जाता है। शरीर के ताप की वृद्धि, व्यथा, ग्रन्थियों में प्रदाह, जल आदि घूंटने में बड़ी तकलीफ होती हैं। झिल्ली के समान लार निकलती है। तालु (पैलेट) और गाल ग्रन्थि के संयोग के स्थल में शोथ दिखलाई पड़ता है।

चिकित्सा

पहिले २ तरुण गलशुण्डि की चिकित्सा करनी चाहिये। व्रण शोथ प्रायः एक तरफ बढ़ता है। कोमल तालु और गल ग्रन्थि के संयोग स्थल में उसको चीर देना चाहिये। इससे शान्त हो जाता है। "विष्टूरी" से शोथ को वेधन करना चाहिये। तालु की धमनी का वेधन न होवे, इस विषय में ध्यान रक्खे।

गलग्रंथि की पुरातन विवृद्धि

इस रोग में कोलास्थि तुल्या गल ग्रन्थि (टोनसिल) का आयतन बढ जाता है कोमल बालकों के यह रोग होता हैं। तरुण गल ग्रन्थि प्रदाह होने पर भी यह रोग देखा जाता है।

इस रोग के आक्रमण में कण्ठ स्वर, अनुनासिक युक्त हो जाता है। बालक आधा मुख खोल कर श्वांस निकलता है। उसके नाक से पतला श्लेष्मा निकलता है। कभी २ बहरा हो जाता है। अधिकतर यक्ष्मा हो जाता है।

चिकित्सा

बालकों के यह रोग होने पर, गलग्रन्थि (टौनसिल) में (टिञ्चर पर क्लोराइड आफ आयरन) का लेप करे। और उसके साथ फास्फेट का शर्वत देवे। तो अच्छा हो जाता हैं। किशोरावस्था में बालकों के कोलास्थि सन्निभागलग्रन्थि (टौनसिल) अधिक बढ़ जावे। तो गिलोटीन अथवा टौन सिलोटोन, नामक शस्त्र से काट देना चाहिये, इस अस्त्रोपचार में अधिक रक्त स्राव नही होता हैं। किन्तु कभी उसका परिणाम बहुत भय दायक होता हैं। सामान्य रक्त स्राव होने पर शीतल जल का कुल्ला करने से लाभ होता है। अधिक रक्त स्राव में वरफ चूसने के लिये देवे। उस समय रोगीका गला ऊंचा करके लिटावे।

दन्त वेष्ट और हनु पीडायें

Diseases of the Gums of Jaws.

मसूड़ों की मुख्य २ पीडायें लिखी जाती है।

विवृद्धि

दन्त वेष्ट (मसूड़ों) विवृद्धि एक आजन्म पीड़ा है। जिनके दाँत घने २ होते हैं। उनके यह पीड़ा होती है। किसी २ के मसूड़े इतने बढ़ जाते हैं कि दांत उनके मध्य में छिप जाते हैं।

चिकित्सा.

बढ़े हुए अंश को छीलकर अलग कर देवे। और दो एक दाँतों को उखाड़ देना चाहिये।

अर्शोऽर्बुद (पलिपाई)

मसूड़े में पलिपाई बहुत निन्दित पीड़ा है। इसमें दाँत के मध्य स्थल में जो कोमल अंश होता है। वह इतना बढ़ जाता है, देखने पर एक छोटी जिह्वा मालूम होती है। दांत में कृमि दन्त (केरिज) से यह पींड़ा उत्पन्न होती है। इसलिये कृमिदन्त को उखाड़कर पलिपाई को काट देना चाहिये।

सछिद्र दन्त वेष्ट (स्पाञ्जिगम)

सछिद्र दन्त वेष्ट (स्पञ्जिगम) स्कार्वि (शीतादि) पीड़ा का एक परिणाम फल है। अधिक पारद खाने से भी यह पैदा हो सकता है। जिन बालकों का स्वास्थ्य सुकुमार होता है और उपयुक्त आहार पाकार भी पुष्टि लाभ नहीं कर सकते हैं, उनके भी यह रोग समय २ पर होता है। इसमें दन्तवेष्ट के ऊपर कभी२ घाव भी हो जाता है।

चिकित्सा

सबसे पहिले रोग का कारण दूर करे। संकोचक औषधियोंसे कुल्ला करावे। लघु भोजन करावे। स्कार्वि (शीतादि) की औषधि प्रयोग करने पर उपकार होता है।

हनु स्तम्भ

(Closure of the Jawas)

कारण—इस रोग के आक्रमण में नीचे का हनु हिलाया व खोला नहींजा सकता हैं। धनुष्टंकार, योषापस्मार (हिस्टीरिया, कर्णाग्र लाला ग्रन्थि प्रदाह) (मम्प) और गल ग्रन्थि प्रदाह से जो हनु स्तम्भ होता है। उससे यह भिन्न है। इस हनु स्तम्भ में नीचे लिखे हुये कई कारण देखे जाते हैं। गण्डच्छद (मैसीटर) पेशी का आक्षेप, गण्डद्वेषी व्रण (कैंक्रम ओरिस) उपदंश, लूपस (जिनके रक्तमें कई पीढ़िय से वंश परम्परागत पैतृक क्षय रोग होता है उनकी त्वचा पर पहिले लाल वर्ण के दाने बन कर धीरे २ आसपास की सब धातुओं और ग्रन्थियों को दूषित कर देता हैं। लड़कियों के गाल पर अधिक होता है। लूपस का शब्दार्थ वृक् है) जैसे भेड़िया ने गाल नोचलिया है। और पारद के अधिक व्यवहार करने से हनु स्तम्भ हो जाता हैं। निम्न हनु की अस्थि के निक्रोसिस (मृतास्थि) आदि कारणों से ऊपर की श्लेष्मिक झिल्लीमें जो क्षत होते हैं। उनके अच्छे हो जाने पर उनके ऊपर कड़ापन आ जाता हैं। नीचे का हनु जकड़ जाता हैं। इनके अतिरिक्त शंख हान्वो (टेम्पोरमेक सिलरी) सन्धि के बन्द हो जाने पर भी यह रोग होता हैं। ज्ञान दन्त की उत्पत्ति से भी यह हनुस्तम्भ होता है।

चिकित्सा

ज्ञान दन्त के उद्गम से यह रोग होवे। तो इस दांत को इसके साथ पेषणक (मोलर) दन्त उखाड़ देना चाहिये। कड़ा पड़ने से श्लेष्मिक झिल्ली सिकुड़ जावे। तो 'स्क्रू गैग' से बलपूर्वक मुख को खोल देवे। और दो दांतों के मध्य में एक काक रख देवे

हन्वस्थिकी मृतास्थि (निक्रोसिस्)

ऊर्ध्व हनु (जावड़े) की अपेक्षा निम्न हनुमें सबसे अधिक निक्रोसिस (मृतास्थि) होता है। इससे सम्पूर्ण हन्वस्थि आक्रान्त हो जाती है। किन्तु अधिकतर इस के दन्तोदूखल अथवा सामने के भाग में यह रोग होता है। दाँत शिथिल होकर गिर पड़ते हैं। दाँत की अस्थि अथवा अस्थिच्छद में प्रदाह होता है। अधिक पारद का व्यवहार, कृमि दंत, उपदंश, स्फोट ज्वर आदि इसके कारण हैं।

लक्षण

अधिक पीड़ा, वृद्धि के साथ निक्रोसिस् (मृतास्थि) दिखलाई देवे। और सहसा देखने पर दन्तमूलका, अथवा दंतोदूखलका स्फोट समझकर भ्रम होने की सम्भावना है। हनु के पक जाने पर उसमें पूय अथवा नाड़ी व्रण हो जाता है। श्वास में भयानक दुर्गन्धि आती है। साथ २ सब अंगों में अनेक दुर्लक्षण प्रकाशित होते हैं। समय पर सेप्टीसिमिया (मल दूषित रक्त) पूय दूषित रक्त, (पायिमिया) में परिणत हो जाता है, नाड़ी व्रण के अन्दर से शलाका प्रवेश करने पर मृतास्थि पाई जाती हैं।

चिकित्सा

हड्डी अलग हो जावे तो उसको खोल कर बाहर निकाले। मुख के भीतर से उस को बाहर निकालने की कोशिश करे। ऐसा असंभव मालूम होवे तो बाहर से अन्तरित करे। उसके साथ कन्डिलोशन।अथवा कार्वोनिक लोशन की पिचकारी से क्षतको धोवे। अस्थिच्छद के भीतर से चीर देवे। बलकारक और उत्तेजक औषधियों को सेवन करावे। उपदंश का स्राव होवे तो आयोडाइड आफ् पोटासियम देवे। गंधकके द्रावक से धोकर दाँतों को साफ करे, इस रोग में पुनराक्रमण की कोई शंका नहीं रहती है।



नासिका छिद्रकी परीक्षा प्रणाली

प्रणाली—नासिका के रन्ध्र में जो पीड़ा होती है। उसका निर्णय करने के लिये छिद्रके अन्दर परीक्षा करनी चाहिये। इस लिये नासिका के अन्दर लैरिङ्गस्कोपिक् दर्पण अथवा तडित्प्रदीप से आलोक का प्रक्षेप करे। उसके बाद नासावीक्षण यंत्र (नेसेल स्पेकूलम्) रन्ध्र के अन्दर प्रवेशित करके परीक्षा करे। इसके लिये "डूप्ले और फोन्केल" महोदय कृत दो प्रकार के नासावीक्षण यंत्र हैं। इन दोनों में से किसी एक से परीक्षा की जा सकती हैं। नासावीक्षण यंत्र प्रवेशित करने के पहले रोगी का माथा पीछे की तरफ को झुकाये रक्खे। नासारन्ध्र के पीछे की परीक्षा करना होवे, तो तालू के पीछे अंगुलि प्रवेश करे। अथवा गले के पीछे एक छोटा दर्पण रखे तो ठीक जाना जा सकता है। मृतास्थि की परीक्षा करने के लिये नासा शलाका (नेसेलप्रोब) सबसे अधिक प्रयोजनीय हैं।

नासिकाके रोग समूह

लालमुख पिड़िका (मुहांसे) एक्नरोजेसिया

नासिका की केशिक नालिओं में अधिक रक्त हो जावे अथवा फैल जाने से लाल मुख पीड़िकायें होती हैं। इसके बाद में सिवेशस फलिकल उपकोष (ग्रन्थि) समूह की वृद्धि हो जाती है। ठंडक, अजीर्ण, जननेन्द्रिय में कोई दोष अथवा अधिक मद्यपान से यह रोग होता हैं, पुरुष की अपेक्षा यह रोग स्त्री को अधिक होता है।

चिकित्सा

सबसे पहले कारण को दूर करे, हलका भोजन देना चाहिये। सल्फर ओइन्टमेन्ट अथवा परक्लोराइड् आफ् मर्करी का लोशन लगावे। इससे अच्छा हो जाता हैं।

नासामेदः (लाइपोमानेजी)

यह नासिका का एक चर्म रोग है। यह नासिका के आगे भाग में छोटे २ व्रणों के तुल्य उत्पन्न होता है। अधिक मद्य पीनेवाले बुड्ढे मनुष्य इस रोगसे आक्रान्त होते हैं।

चिकित्सा

इसको अस्त्र से छील देवे। उसके बाद उनके ऊपर अंकुर (ग्रेनूलेशन) पैदा होकर रोग स्वयं शान्त हो जाता है।

रक्त पित्त ।

(Epistaxis)

निरुक्ति—नासिका, कान, आंख, मुख, गुदा, योनि, लिङ्ग आदि द्वारों से जो रक्त स्राव होता है। उसको रक्त पित्त कहते है। परन्तु डाक्टरी सिद्धान्त से यह भिन्न है। डाक्टरी सिद्धान्त में जो रक्त जहां से निकलता है वही उसका नाम होता है। जैसे नासिका से जो रक्त निकलता है। उसको (एपिष्टेक्सिस) कहते है।

कारण.

निम्न लिखित कई अवस्थाओं में नासिका से रक्त निकलता है।

(१) श्लेष्मिक झिल्ली में रक्ताधिक्य होने से बाल्यावस्था में नासिका से स्वयं रक्त निकलता है। यौवन के प्रारम्भ में बालिकाओं के यह रोग अधिक देखा जाता है।

(२) मस्तिष्क में रक्ताधिक्य होने से, नासिका गामिनी सब शिराओं से रक्त निकलता है। तब मस्तिष्क में शोणित कम हो जाता है।

(३) सन्यास रोग प्रकाशित होने के पहिले समय २ उत्कट रक्त पित्त देखा जाता है। यकृत का कर्कशत्व (किरोसिस) हृदय की पीड़ा और संकुचित क्षुद्र वृक्क ग्रन्थि (ग्रैनूलर किडनी) से मस्तिष्क में शोणिताधिक्य हो जाता है। उससे सन्यास रोग (Apoplexy) होता है।

(४) स्कार्वि (रक्त पित्त) कठोर, तरुण, और वैशेषिक ज्वर और पैत्रिक रक्त पित्त प्रकृति (हिमोरेजिक) डयाथिसिस आदि में नासिका से रक्त निकलता है।

(५) नासिका में आघात लगने पर नासिका से रक्त निकलता है।

(६) करोटि के तल देश के भङ्ग होने पर श्वेत सर्षप सन्निभा क्षुद्र गिडिका जन्य व्रण (ट्यूवाक्यूलस अल्सरेशन) और नासिका और नासिका तालु के मध्य में अर्बुद आदि उत्पन्न होते हैं। तब नासिका से रक्त निकलता है।

(७) कभी २ स्थानिक किसी कारण से यथा—नासिका के सम्मुख नीचे अंश में किसी कारण से क्षत हो जावे उस क्षत से समय २ पर रक्तस्राव होता है।

लक्षण.

इसके लक्षण स्पष्ट ही हैं। अधिकतर एक रन्ध्र से अथवा दोनों रन्ध्रों से कभी २ निकलता हैं। किन्तु यह नासिका से न निकलकर पश्चिम स्तर (पोष्टिरियर लेयर) से मुख के अन्दर चला जावे। ऐसा होनेपर मुख से रक्त निकलता है, अथवा रोगी कभी २ उसको निगल जाता है। तो वमन होकर निकलता है। ऐसी अवस्था में मुखज रक्तपित्त

समझना बड़ी भूल है। किन्तु रोगी के मुख को फड़ाकर उसके गले के भीतर देखे तो उसके गले के भीतर से रक्त स्रोत नीचे को बहता हुआ दिखलाई पड़ेगा। नासिका के अन्दर कोई क्षत होने से रक्तस्राव होता है। ये सब अवस्थायें नासा वीक्षण यन्त्र (स्पेक्कुलम) से देखकर ठीक २ निश्चित कर लेना चाहिये।

चिकित्सा।

इसकी चिकित्सा कारणों के ऊपर निर्भर है। रोगी बलवान होवे और मस्तिष्क आदि किसी यन्त्र में रक्ताधिक्य होने से नासिका से रक्तस्राव होवे तो उसे सहसाबन्द नहीं करना चाहिये। बन्द करने से प्लीहा आदि रोग होने की सम्भावना है। किन्तु रोगी दुर्वल होवे और अधिक मात्रा में रक्तस्राव होवे तो बन्द कर देना चाहिये। दूर्वाके स्वरस में गौ का घी मिलाकर नस्य लेवे और वासा का स्वरस निकाले। उसमें मधु मिलाकर यथोचित मात्रा में दिन में दो तीन बार पीवे। इससे आशातीत फल होता है। नासिका के किसी क्षत से रक्तस्राव होवे तो बोरेसिक ओआइण्टमेण्ट (मलहम) प्रयोग करे। इससे रक्तस्राव बन्द न होवे तो कोकेन में रुई का फोहा भिगोकर उसके ऊपर रखकर दवा देवे। इससे शीघ्र ही बन्द हो जाता है। उससे भी बन्द न होवे तो स्पिरिट लैम्प में प्रोव (शलाका) को उत्तप्त करके उसी स्थल पर रखने से बन्द हो जाता है। अथवा गैल वनोकाटरी यन्त्र के अग्रभाग से वैसे हो दवाये राखे। इससे निश्चय रक्त बन्द हो जाता है। उसके बाद उस स्थलपर बोरेसिक आइण्टमेण्ट (मलहम) का प्रयोग करने से क्षत एक बार में ही अच्छा हो जाता है। नासिका में अर्बुद होने से अस्त्रोपचार करनेपर जो रक्तस्राव होता है। उस समय रोगी को चित्त करके लिटावे। और नासिका में बरफ का प्रयोग करे। एण्टीपाइन का नस्य लेवे। हेजिलिन का वाह्य और अभ्यन्तर प्रयोग करे। अथवा आर्गटिन का त्वचा के नीचे प्रक्षेप करे। इन उपायों से रक्त बन्द न होवे तो नासा रन्ध्र को बन्द करना चाहिये। यह कार्य रवर की टॅस्यूनवेग से अच्छी तरह सिद्ध हो सकता है। इस उद्देश्य के लिये नासिका के छेद में पहिले कोकेन और उस रबड़ की वेग में ग्लिसरीन (गलित स्नेह) चुपड़ कर के नासिका के छिद्र में प्रवेशित करे। उसके बाद वेग के विस्फारित कर देवे। चौबीस घण्टा अथवा इससे अधिक कालतक इस अवस्था में रखना चाहिये। रक्तस्राव अत्यन्त भारी होनेपर आइडोफार्म की बत्ती के छोटे २ टुकड़े कर नेसेल फर्सेप्स (संदंश) से नाक के छेद के अन्दर में चालित कर उसको परिपूर्ण कर देवे।

पूतिनस्य [ओज़ीना]

जिस किसी कारण से नासिका के छिद्र से पूय श्राव अथवा दुर्गन्धि दूषित श्राव होवे तो उसको पूतिनस्य (ओज़िना) कहते हैं। किन्तु प्रसिद्ध पाश्चात्य चिकित्सक (ओइलियम जानसन महोदय ने स्वतन्त्र रोग न मानकर निम्न लिखित रोगों का लक्षण माना है। जैसे—

१—क्षयज प्रतिश्याय (पेट्रोफिकनेसेल कैटार।

२—उपदंशिक, अथवा अन्य किसी कारण से पैदा हुआ निक्रोसिस (मृतास्थि) और कैरिज (अस्थिक्षय)।

३—श्लैष्मिक झिल्ली का (ट्यूवावर्यूलस) उपदंशिक क्षतः ल्यूपस जन्य प्रतिश्याय

४—नासारन्ध्र के अन्दर आगन्तुक द्रव आदि और नासाश्मरी (राइनोलिथ)

५-गण्ड गह्वर (एण्ट्रम्) अथवा अन्य किसी नाली का पूय प्रतिश्याय (प्यूरियेलेण्ट कैटार।

६-अर्बुद के तुल्य कितने नवीन २ उद्भव। इन सब रोगों की चिकित्सा करनेपर पूतिनस्य स्वयं ही अच्छा हो जाता है।

जीर्णनासा प्रदाह।

(Chronic Rhintis)

लक्षण आदि—नासारन्ध्र की श्लेष्मिक झिल्ली में प्रदाह होवे तो उसको नेसेल कैटार, राइनाइटिस, वा कोराइजा नाम से कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक तरुण दूसरा पुरातन। पुरातन का यहांपर वर्णन किया जाता है। यह रोग नासादली दाह (हाःपरट्रोफिक राइनाइटिस) नाम से भी कहा जाता है। यह रोग बालकों के अधिक देखा जाता है।

साधारणता से बालक और युवा पुरुषों को आक्रमण करता है। तरुण प्रतिश्याय (कैटार) कण्ठ के गोलार्द्ध में ग्रथिवर्द्धकर (एडेनाइड वेजिटेशन) बढ़ी हुई गलग्रंथि (टौनसिल) नासा के द्वार का संकोच (नेसेलष्टिनोसिस्] आदि रोग के उत्तेजक कारण है। इस रोग की प्रकृति सामान्य होने पर नासिका से तरश्लेष्मा अथवा पूयसे मिला हुआ श्लेष्मा निकलता है। और श्लेष्मक झिल्ली में अधिक रक्त होता है। इसकी चिकित्सा न करने पर श्लेष्मक झिल्ली प्रदाहाक्रान्त होकर मोटी हो जाती है। सम्पूर्ण ग्रथिसे पूय और श्लेष्मा से मिला हुवा एक प्रकार का दूषित स्राव निकलता है रोगीकी श्वांस

प्रश्वास में बाधा होती है। उसका स्वर अनुनासिक होजाता है मलीनमुख, स्फूर्ति हीन, फैला हुवा मुखविवर, खांसी, समय २ पर बहरा भी होजाता है। जीर्ण नासा प्रदाह, बहुत काल का होने से क्षयज नासा प्रदाह (एट्रोफिक राइनाइटिस) में परिणित हो जाता है।

चिकित्सा.

बोरैक्स (सोहागा) और, बाइकार्बनेट आफसोडा के (१ औंस में ५ ग्रेन) लोशन से पहिले २ प्रातःकाल और सायंकाल में धोवे। और हथेली में इस लोशन को रखकर के नाक से खींचे। अथवा, पिचकारी के समान, किसी यंत्र से नासिका में डाले, इससे रोग अच्छा हो जाता है। इससे लाभ न होवे, तो पतला किया हुआ कास्टिक उस बढ़े हुवे अंश में लगावे, अथवा, गैलबोनाकटारी से उस अस्थि में वेंधन करे, इससे पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती हैं।

क्षयजन्य नासा प्रदाह

Atrophicrhimitis

लक्षणादि—कभीर यह शुष्क ड्राई अथवा, पूतिमय (फिडिड) प्रतिश्याय के नाम से भी कहा जाता है। कोई २ इसको "ओजिना" भी कहते हैं। किन्तु डाक्टर ओयलसेन, के मतमें भूल है। इस रोग के आक्रमण में श्लैष्मिक झिल्ली का वर्धन अंश छोटा पड़ जाता है। और उसी के साथ सम्पूर्ण ग्रन्थि अल्पाधिक परिमाण में ध्वंस हो जाती है। शोणिताल्पता (एनिमिया) से यह रोग उत्पन्न होता है। और दूषित वाष्प वा, धूल के स्पर्श से और कठोर रोग होजाता है। इसमें नासारन्ध्र की विशेष वृद्धि होजाती है। उसकी फांक इतनी बढ़ जाती है। कि समय २ पर नाक के छेद में देखने से कंठ का प्राचीर और कंठ कर्णी नाली (यूस्टेक्यन ट्यूब) दिखलाई पड़ती है, नाक के अन्दर बड़ी दुर्गन्धि आती है। इस रोग में प्रधान विचित्रिता यही है। कि इससे नासिका के अन्दर किसी प्रकार का क्षत नहीं होता है।

चिकित्सा

मछली का तेल, हितकारी है। डोवल के सल्यूशन से विशेष उपकार होता है प्रयोग यह है। सोडा बाईकार्ब, सोडाबाइबोरेट, सोडाक्लोव, प्रत्येक औषधि २ ग्रेन, ग्लिसरीन १ ड्राम, कार्बोलिक एसिड एक ग्रेन, जल १ औंस, एक में मिलाकर, इससे नासारन्ध्र को धोवें, इसभांति नासिका के छेद के साफ हो जानेपर १ टानिक एसिड, सल्फोकार्बनेट, आयोडाइड आफ जिङ्क मेन्थल यूक्लिप्टिस (१ औन्समें २ ड्राम) टरबिन् (१ औन्समें

२० ग्रेन) कोकेन अथवा, थाइमल (१ औन्समें २० ग्रेन) तरल, पैट्रो, लियम, में घोलकर नासिका के भीतर प्रयोग करे। इन सम्पूर्ण औषधियों के अभाव में, आइडोफार्म का चूर्ण डालने से उपकार होता है।

अर्शोऽर्बुद

(Polype)

नासारन्ध्र के अन्दर तीन प्रकार का अर्शोऽर्बुद (पलिपाई) देखा जाता है। जिलाटिनस (जलीय) फाइब्रस (सौत्रक—तन्तु और मैलिगनेन्ट (द्वेषी)।

जिलाटिनस पलिपाई

इसको मुखास अर्शोर्बुद (म्यूकस पलिपाई) भी कहते हैं। नासा मध्य सुरंगा (Middle meotus of Nose) की आच्छादक श्लैष्मिक झिल्ली के ऊपर ये पुञ्जाकार में पैदा होती हैं, इनका आकार अनेक प्रकार का है, इस प्रकार के अर्शोऽर्बुद पलिपाई के उत्पन्न होने पर नासारन्ध्र बन्द हुआ मालूम पड़ता है। शीतलवायु, और' आद्रता में यह बढ़ जाता है। क्षीण-स्वर होजाता है, नासारन्ध्र से श्लेष्मा निकलता है।साथ २ श्वांस, खांसी का कोई लक्षण प्रकाशित नहीं होता है।

चिकित्सा

गेलब्रनो कटारी से, जलीय अर्शोऽर्बुद (जिलाटिनसपलिपाई) को सहज से ही अन्तरित करे। कटारी प्रयोग करने के पहिले २० पर्सेन्ट कोकेन के द्रव से, उस स्थान की स्पर्श ज्ञान शक्ति नष्ट करे। इसके बाद, टानिक एसिड, की नस्य लेवे। इससे पलिपाई और कभी उत्पन्न नहीं होसकती है।

सौत्रिक तन्तुज अर्शोऽर्बुद (फाइब्रस पलिपाई)

अधिकतर सौत्रिक तन्तुज अर्शोऽर्बुद, नासिका और तालु के मध्य में उत्पन्न होते हैं, इनका आयतन धीरे २ बढ़जाता हैं और ऐसा बढ़ता है कि नासारन्ध्रके भीतरसे बाहर होकर तालु के ऊपर झूलने लगता है। कभी २ करोटिके मध्य में प्रवेश कर जाता है। नासा में होने पर वार २ शोणित स्राव होता है। वधिरता, श्वास-प्रश्वास में कष्ट मालूम होता है। इसके मुखकी अस्थियों में एक प्रकार की विकृति पैदा होजाते हैं। इसको मेंढक मुख (फ्रॉगफेश) कहते हैं। इस प्रकार का अर्शोऽर्बुद उत्पादित करने से अधिकतर स्राव होता है। इसलिये इनको बाहर करके बाद को शस्त्र प्रयोग करना चाहिये,

अस्त्र से काटकर निकाल देवै । फिर, ऐबचूयेल, अथवा, गैलवनो कटारी (विद्युद्द्वारा दाह कर्म) से इनकी मूल को दग्ध करें ।

द्वेषी अर्शोऽर्बुद (मेलिगनेन्ट पालिपाई)

द्वेषी अशोऽर्बुद, नासारन्ध्र, नासा और तालु के मध्य में उत्पन्न होता हैं । सौत्रिक तन्तुज अर्शोऽर्बुद के जो लक्षण होते हैं, वे ही इसके लक्षण है। चिकित्सा भी उसी के तुल्य हैं ।

नासिका बाह्य पीड़ा प्रकरण

भिन्न २ प्रकार —आघात से नासिका के बाहर अंश में जो सम्पूर्ण परिवर्तन होता है। अथवा पीड़ा होती हैं । उसका वर्णन किया जाता हैं । अनेक पुरुषों की नाक बैठ जाती हैं । अथवा चौड़ी हो जाती है । यह अवस्था आघात अथवा नासास्थिके भग्न होने से भी ऐसी ही बिकृति होती हैं । अथवा, उपदंश, ट्यूबार्कल (घृणाकार पिड़िका) की पीड़ा से नासाप्राचीर (एथमो वोमारिन् सेप्टम्) की पूर्ण स्फूर्ति होने से नासा विकृत हो जाती है । उपदंश के तृतीय क्रम में नासा वंश बैठ जाता हैं आघात होने पर शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिये। रोग पुरातन हो जाने पर कोई .चिकित्सा नहीं है। नासिका के लिये एक प्रकार का यंत्र व्यवहार किया जाता है। उसको नासिका के अन्दर प्रवेश करने से नासिका की बिकृति ठीक हो सक्ती है। किसी तरह का प्रदाहिक अथवा, दूषित अर्बुद उत्पन्न होवे । अथवा, अत्यन्त भारी आघात से, अथवा, ल्यूपस वा, तृतीयक उपदंश, वा, क्षत से नासिका का आंशिक, वा सम्पूर्ण अंश ध्वंस हो सक्ता हैं नाकके ऊपर विलोमत्वगनुकरणी अर्बुद (ऐपीथी ल्यूमा) उत्पन्न होनेसे नासिकाका समूल नष्ट हो जाता हैं । यह पीड़ा अस्त्र साध्य हैं । इस रोग की महर्षि सुश्रुत ने जो चिकित्सा लिखी है । अधिकतर पाश्चात्य चिकित्सक उसके अनुकूल ही चिकित्सा करते हैं । सुश्रुत में लिखा है । कि, नासिका के परिणाम का किसी वृक्ष का पत्र लेकर उसी परिणाम में रोगी के गण्ड स्थान के पार्श्व देश से माँस काट लेवै । और नासिका के ऊपर बाँधै । इसका नाम, त्वङ्मांसौष्ठ संरक्षित अस्थि छेदन, (फ्लैप आपरेशन) हैं ।

लालानिःसारक सम्पूर्ण ग्रन्थियोंकी पीड़ा

Affections of the Solivery glands.

कर्णाग्रवर्ती लालाग्रन्थि में पीड़ा होवे । तो उस को 'पैरोटाइटिस्' कहते हैं । यह तीन प्रकार की होती है । संक्रामक हायू (एपिडेरिक पैरोटाइटिस्) व कर्णाम्रल ।

ग्रन्थि प्रदाह (मम्पस्) सादाहायू (सिम्पल पैरोटाइटिस) पूय युक्त हायू (सप्यूरेटिव पैराटाइटिस्)

संक्रामक प्रकार

संक्रामक कर्णाग्रवर्त्ती लाला ग्रन्थि प्रदाह एक प्रकार की तरुण वैशेषिक पीड़ा है। यह बड़ी संक्रामक और थोड़े दिन की देश व्यापी पीड़ा है। अधिकतर बालक इससे आक्रान्त होते हैं। इसके उत्पन्न होने के पहले ज्वर होता है। साथ २ कर्ण, अग्रवर्ती लाला ग्रन्थि फूल जाती है। एक के बाद दूसरी में प्रदाह होता है और फूल जाती है। इसमें चबा नहीं सकता है, और न निगल सकता है, कान के मूल तक आक्रान्त होकर फूल जाता है। यह शोथ कभी पक कर पूय वाला हो जाता है। रोगी को गरम और शान्त रक्खे, लवण आदि सेवन करावे। उसके बाद उत्तेजक लिनिमेन्ट, मर्दन करने पर रोग की शान्ति हो जाती है।

सादा प्रकार

सादाहायू (सिम्पल पैरोटाइटिस्) अधिकतर शीतलता के स्पर्श से अथवा आघात से पैदा होता है। कभी नाली के मध्य में अश्मरी होने पर जिस प्रकार की प्रदाह होती है उसका नाम जीर्णशल्की प्रदाह (क्रोनिकस्किलिरोसिङ्ग इन्फ्लैमेशन) है। यातना, स्फीति साथ २ में अल्पाधिक ज्वर इसका प्रधान लक्षण है। उष्ण स्वेद और वेलाडोना प्रयोग करने पर इसको शान्ति हो जाती है।

पूयक प्रकार

हायू में कभी पूय नहीं पड़ता है। हजार में एक पूयवाला हायू (सप्यूरेटिव पैरोटाइटिस्) अत्यन्त भारी पीड़ा है, लाल ज्वर (स्कार्लेट) अथवा आन्त्रिक ज्वर के परिणाम में अथवा पूय दूषित रक्त (पायिमिया) के आक्रमण काल में इस प्रकार का प्रदाह पैदा होता है। इसके आक्रमण में ग्रन्थि अत्यन्त बढ़ जाती है। उसके अन्दर में पूय पैदा हो जाता है। पहले पहले उष्ण स्वेद अच्छा है, परन्तु पूय के पैदा हो जाने पर अस्त्र प्रयोग करके उसको बाहर निकाल देवे।

लालास्राव में बाधा

प्रकृति—लालानिःसारक नालियों का मुख किसी कारण से कड़ा पड़ जावे। अथवा उसके मध्य में लालाश्मरी (सैलिवरी कैलक्यूलस) होने से सम्पूर्ण ग्रन्थि से लालारस बिना बाधा के अथवा पहले नहीं निकल सकता है। इस रोग में आहार के स-

मय अथवा बाद को ग्रन्थि समूह फूल जाता है। और उसमें वेदना होती है, आहार के बाद फूलना और यातना बन्द हो जाती है। ऐसी अवस्था स्थायी होने से ग्रन्थियों की पुरातन वृद्धि हो जाती हैं। अश्मरी होने पर दुर्गन्धि वाला पूयश्लेष्मा अधिक परिमाण में मुख से निकलता है। लालाका निकलना एक बार बन्द हो जाने से उसमें एक कोष पैदा हो जाता है। वह कोष किसी प्रकार से उन्मुक्त होने पर सैलिवरीफिश्च्यूला (लाला नाड़ी व्रण) उत्पन्न हो सकता है, यह एक प्रकार का नाड़ी व्रण है।

चिकित्सा

अवरोध सामान्य होने पर उसका पथ साफ़ करना चाहिये। अथवा एक कृत्रिम पथ खोलना चाहिये। पथरी होने पर अस्त्र प्रयोग कर उसको बाहर निकाल ले आवे। ग्रन्थिके उपादानके मध्यमें पथरी होवे, तो समग्र यन्त्रको काटकर बाहर निकाल देवे।

कर्णाग्रवर्ती लालाग्रन्थि के सम्पूर्ण अर्बुद

Parrotid tumours

कर्णाग्रवर्ती लालाग्रन्थि के ऊपर निर्दोष और दूषित दोनों प्रकारका अर्बुद उत्पन्न होता हैं। निर्दोष अर्बुद से ग्रन्थि के बाहर का अंश आक्रान्त होता हैं। इसका मुख कोष से ढका रहता है, यह धीरे २ उत्पन्न होता हैं। इसका मूलोत्पादन करने से इसकी फिर उत्पत्ति नहीं होती है, प्रतीकार न करने से इसका आयतन विशाल हो जाता है। दूषित अर्बुद (मेलिगनेन्ट) शीघ्र ही बढ़ता है। इसके साथ २ लसीका ग्रन्थियां भी बढ़ जाती है, और मौखिक स्नायु आक्रान्त होने से मुख में पक्षाघात हो जाता है।

चिकित्सा।

निर्दोष अर्बुद होवे, उसका आयतन भी मध्य होवे, उसको सहज में हिला डुला सकते हों। तो ऐसे अर्बुदमें निःसंदेह अस्त्र प्रयोग किया जा सकता है। जिसका आयतन अत्यन्त बड़ा होवे, और प्रकृति दूषित मालूम होवे, तो इसमें हस्तार्पण न करे। लम्बा त्वचा और कला को चीर कर अर्बुद को बाहर निकाल लेवे। इसके बाद संदंश और छुरी की सहायता से इसको उत्पाटित करे। अस्त्र प्रयोग न करने के समय (करोटिड) धमनी और मौखिक स्नायु का स्मरण रक्खे। दूषित अर्बुद की चिकित्सा कठिन है। इसमें सहसा शस्त्र प्रयोग न करे।

हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थ्यार्बुद.

कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि (पैरोटिड ग्लैण्ड] के तुल्य हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि (सब् मैक जिलरी) में भी अर्बुद उत्पन्न होता हैं। इस अर्बुद की प्रकृति भी कर्णाग्रवर्ती

लाला ग्रन्थि के अर्बुद के तुल्य ही है। प्रथम अवस्था में यह सहज से उत्पाटित किया जा सकता है।

गलगण्ड ।

(Bronchocele)

अंग्रेजी भाषामें इसके और दो नाम हैं। गायटानेक (घेघा) अर्थात् डर्वी नगरमें यह अधिक होता है। चुल्लिका ग्रन्थि (थाइरइड ग्लैंड) को बढ़ जाने से यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण ।

निगलने में गलगंड कांपता है। स्त्रियों के यह अधिक परिमाण में उत्पन्न होता है। साधारण गलगंड कोमल स्थितिस्थापक होता है। समय समय पर इसकी ह्रास वृद्धि होती है।

कारण ।

दूषित जल, चूने की शिला से निकला हुआ जल, तुषार, आदि इसके कारण हैं। अनूप देश (बङ्गाल) में अधिक होता है। इसमें शूल भी होती है। स्त्रियों की जननेन्द्रियों के दोष से भी पैदा होता है। जिन सम्पूर्ण अवस्थाओं में मस्तक और ग्रीवा में रक्ताधिक्य होता है। वे भी इसके कारण है।

चिकित्सा ।

वाह्य, और आभ्यन्तर, दो प्रकार के उपायों से इसकी चिकित्सा हो सकती हैं।

वाह्य प्रयोग—आइयोडाइड आफ पोटासियम्, मलहम मालिश करने को देवे।

आभ्यन्तर प्रयोग-सिरप, फेरि, आयोडाइड रोगी को खाने के लिये देवे।

वाह्य प्रयोग—विन आइयोडाइड आफ मर्करी का मलहम मर्दन करके धूप सेवन करे। इससे बहुत उपकार होता है।

गलगण्ड के दबाव से रोगी के श्वास कृच्छ होकर श्वास रोध आरम्भ होजावे। तो अस्त्र प्रयोग से इसका मूलोच्छेद करना चाहिये। रोगी का स्थान परिवर्तन कर देवे।

तरुण गलगण्ड ।

जब गलगण्ड पुराना होजाता हैं। तब भी समय २ पर इसकी तरुण प्रकृति देखी जाती हैं। कई दिन के मध्य में ग्रन्थि बढ़ जाती हे उससे श्वास नली के ऊपर दबाव पड़ने से उत्कट, कभी २ सांघातिक श्वासकष्ट उत्पन्न होजाता हैं। ग्रीवा के कला समुदाय

(पेशियां) को चीर देवै। तो कभी २ श्वासकष्ट शान्त हो जाता हैं। ट्रेकियटमी. करके श्वासनली के अन्दर एक लम्बीं नली प्रवेश करे। कभी २ इससे लाभ होजाता है। इस प्रकार के रोग में दूषित स्थान को छोड़ देना चाहिये।

कंठ और अन्न प्रणाली की पीड़ा

Diseases of the Pharynx and acsophagns.

कण्ठ की प्रदाह (फेरिञ्जाइटिस) तीन प्रकार की हैं। जैसे—कैटेरल (कफ जन्य), फलि क्यूलर (दानेदार) और फलग मोनस (दाल समाकार व्रणोत्पादक)।

इस रोग के आक्रमण में कंठ, लाल होजाता है। और फूल जाता हैं। निगलने में अत्यन्त कष्ट होता हैं। गलछिद्र (ग्लटिस) का आक्षेप, अथवा अवसाद, और शोणित के विषेले होने से समय २ पर रोगी को मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

कार्बोलिक एसिड की बाष्प श्वांस से लेवे। तो रोग अनेक समय अच्छा होजाता है। पूय हो जावै, तो स्थान जानकर अस्त्र प्रयोग करे। रोगी को निगलने की सामर्थ्य न होवै, तो पिचकारी से तरल पुष्टि कर आहार देवै। और ट्रेकियटमी, करने में बिलम्ब नहीं करना चाहिये।

क्षत

तालु और, गले की नाली में जैसा क्षत होता हैं। कंठमें भी वैसा ही क्षत होता है। इसमें रोगी को आहार निगलने में बड़ा कष्ट होता है। क्षत से कंठ समय २ पर संकुचित होजाता है। अतः अनेक समय खाद्यद्रव्य गले में अटक जाता हैं। उससे श्वासरोध होने को सम्भावना है। कभी २ तालु; और, कंठ; जुड़ जाता है। इससे बडी विपत्ति होती हैं ऐसी अवस्था होने पर सावधानता पूर्वक उसको अलग २ कर देवै। जिससे फिर संयुक्त न होवै, इसलिये उसके मध्य में स्राव रोगी गोलक नली पृग रक्खें। नीचे कंठ का संकोच होवे। तो छुरी से कड़ापन को चीर देवे। प्रति दिन एक सीधी नली प्रवेश कर उस के पुनः संकोच को दूर करना चाहिये॥

अन्न प्रणाली के ऊर्ध्वभाग का अवरोध

Stricture of the acsphagns.

प्रकार भेद—अन्नवहा नाली (एलिमेन्टरी के नाल) के ऊर्ध्वांशक को, इसोफैगस

कहते हैं। इसकी प्रधान पीड़ा अवरोध (स्ट्रिकचर) ही है। इस अवरोध के तीन भेद प्रथम आक्षेपान्वित (स्पैसमोडिक) पेशिक तन्तुओं के आक्षेप से यह होता है।

द्वितीय—तान्तव (फाइब्रस) कड़ाई से उत्पन्न हुए तान्तव संकोचन से इसकी उत्पत्ति होती हैं।

तृतीय—दुष्ट प्रकृति (मैलिगनेन्ट) अन्न प्रणाली के प्राचीर में किसी प्रकार का दुष्ट प्रकृतिवाला अर्बुद होवे। तो यही दुष्ट प्रकृति का अवरोध होता है। कहे हुए तीन प्रकारों से अतिरिक्त और एक प्रकार का अवरोध देखा जाता है। धर्मन्यर्बुद, विवृद्धि चुल्लिका ग्रन्थि अन्न प्रणाली के बाहर में फोड़ा आदि कारणों से, बाहर से भी उसका अवरोध हो जाता हैं।

आक्षेपान्वित अन्न प्रणाली का अवरोध

अधिक तर हिस्टीरिया पीड़ित स्त्री के ही यह दिखलाई पड़ता है। पहिले उसमें कोई द्रव पदार्थ अर्थात् जल भी प्रवेशित नहीं किया जा सकता हैं। यह अवरोध ठहर २ कर होता है। किसी प्रकार की स्पर्श ज्ञान हारक औषध के प्रयोग करने पर बिना परिश्रम के शलाका प्रवेश की जा सकती है। ऐसे अवरोध में हिस्टीरिया नाशक औषध प्रयोग करने से बहुत जल्दी लाभ होता हैं।

सौत्रिक अवरोध (फाइब्रस ष्ट्रिकचर)

अत्युष्ण जल अथवा क्षयकारक द्रावक, अथवा अन्य कोई तरलपदार्थ निगल जाने पर, अथवा अन्न प्रणाली में कोई आगन्तुक पदार्थ अटक जावे। तो उसमें क्षत हो जाता हैं, वह क्षत कुछ काल के बाद कड़ा पड़ जाता हैं। अधिकतर उसी कड़ेपन से सौत्रिक अवरोध होता है। कहीं २ उपदंशिक क्षत के प्रशमन से इसकी उत्पत्ति होती है। बहुतों के यह रोग जन्म से देखा जाता हैं, किसी २ समय पर इसका कोई कारण नहीं पाया जाता है। अन्न प्रणाली के जिस किसी अंश में इस प्रकार का अवरोध हो सकता है। यह अधिकतर उसके ऊपर के अंश में देखा जाता है, दुष्ट प्रकृति के अवरोध (मेलिगनेन्ट ष्ट्रिकचर) की अपेक्षा सौत्रिक अवरोध अति न्यून देखा जाता हैं।

दुष्टप्रकृति अवरोध (मैलिगनेन्टष्ट्रिकचर)

दुष्ट प्रकृति के अर्बुद से, वा त्वगर्बुद (एपिथिल्यूमा) से यह रोग पुरुषों के ही अधिकतर होता हैं। कभी २ किसी स्त्री के भी यह रोग देखा जाता है। अन्न प्रणाली के जिस किसी अंश में यह प्रकाशित हो सकता हैं।

स्थूल रीति से यह कृकाटिक उपास्थि के विपरीति तरफ, स्वरपथ (ट्रेकिया) के विभेद स्थान में, अथवा, पाकस्थली के ऊर्ध्व प्रान्त में (Cardiacend) देखा जाता है। इस प्रकारका अवरोध, बहुत कठिन होता है। समय २ पर सांघातिक भी हो जाता है। दुष्ट प्रकृति वाला त्वचा का अर्बुद (एपिथिलियूमा) के तुल्य है। यह अन्न प्रणाली के एक अंश में उत्पन्न होकर देखते २ अंगूर के तुल्य अधिकतर उसके सर्वाङ्ग में फैल जाता है। क्रम से, स्वरपथ, स्वरनल (ब्रोङ्कस) फुफ्फुस, आदि दूसरे २ यंत्रों को भी आक्रमण करता है। अनाहार से रोगी की मृत्यु हो जाती है, अथवा दारुण दुःख, रक्त-स्राव, फुफ्फुसपरिवेष्टनी कला प्रदाह, वा, श्वसनक ज्वर (न्यूमोनियाँ) होकर मृत्यु हो जाती है।

लक्षणादि

सौत्रिक अवरोध, अथवा, दुष्ट प्रकृति अवरोध, इन रोगों के जो सम्पूर्ण लक्षण हैं। उनका संक्षेप से विवरण लिखा जाता है। रोगी को निगलने में कष्ट, और वह कष्ट धीरे २ बढ़ जाता है। पहिले कठिन द्रव्य, बाद को तरल द्रव्य, अन्त में किसी प्रकार के द्रव्य को नहीं निगल सकता है।

वक्षस्थल के ऊपरी भाग में अवरोध खाद्य द्रव्य एकबार निगल कर कुछ देर के बाद वमन कर देता है। रोगी का शरीर धीरे २ क्षीण और दुर्बल हो जाता है।

सौत्रिकावरोध चिकित्सा

रोगी को सौत्रिक अवरोध में, ऋजु नाड़ी प्रवेश कर अन्न प्रणाली को धीरे २ फैलाना चाहिये। सप्ताह में दो बार ऋजु नाड़ी प्रवेश करना चाहिये। समय २ पर सूक्ष्म नाड़ी यंत्र भी नहीं प्रवेश किया जासक्ता है। ऐसे स्थल में आमाशयच्छेद (गैस्ट्रोटमी) अस्त्रोपचार करके उस छिद्र पथ से, पाकस्थली के मध्य में खाद्यद्रव्य प्रक्षिप्त करना चाहिये। उस समय में उसी दिशा में नाड़ी की सहायता से अवरोध को खोलने की चेष्टा करना चाहिये। उस अवस्था में नाड़ी की सहायता से अवरोध का प्रतिकार न हो सकै, तो भीतर की तरफ अंगुली की सहायता से उसको विस्फारित करने की चेष्टा करै। इससे भी कार्य सिद्ध न होवै, तो पाकस्थली के ऊपर में एक छेद चिरकाल के लिये कर देवै।

दुष्ट प्रकृति अवरोध प्रकार

दुष्ट प्रकृति वाले अर्बुद में ऋजु नाड़ी से अवरोध को न खोलै। क्योंकि खोलने पर अन्न प्रणाली में छिद्र होकर विषम विपत्ति होने की सम्भावना है। इस लिये अवरोध में

किसी प्रकार का हस्तार्पण न करके, आंभ्यन्तरिक औषधि, और, अनुत्तेजक आहार से रोगी के बल की रक्षा करे उसको मांस का शोरवा, और दूध देवै। प्रत्येक आहार के पहिले, कोकेन और माफिया की चक्की (लोलेञ्ज) चूसने के लिये देवै। इससे अनेक समय अवरोध (स्ट्रक्चर) का आक्षेप बहुत कम हो जाता है। इसी उद्देश्य के लिये अल्प मात्रा में, आइयोडाइडआफपोटासियम दिया जा सक्ता है। अहिफेन (अफीम) यातना, और, आक्षेप, को दूर करता है। पहिले २ रात्रि में एकवार अफीम का प्रयोग करै उसके, बाद मात्रा वृद्धि करके दिन में देना चाहिये। इसको भी निगलने में कष्ट होवै। तो अन्न प्रणाली को विश्राम देना चाहिये। पिचकारी द्वारा गुदामार्ग से आहार को प्रवेश करना चाहिये। इससे भी सुविधा न होवै। तो आमाशयच्छेद (गैस्ट्रोटमी) करना चाहिये। अवरोध कण्ठ के निकट होवै, तो कोई २ चिकित्सक, कहते हैं कि अन्न प्रणाली में अस्त्र प्रयोग करना चाहिये। परन्तु डाक्टर ओयलसेम का सिद्धान्त है, इससे कोई सफलता नहीं होती है। किन्तु उस क्षत स्थान में, द्वेषी व्रण, अर्थात् गोभी के फूल के समान कर्कश व्रण (कैन्सर) आक्रमण करके रोगी के जीवन को नष्ट कर देता है। इसलिये आमाशयच्छेद (गैस्ट्रोटमी) युक्तियुक्त है। किन्तु यह जितना शीघ्र हो सके। उतना ही अच्छा है। क्योंकि भोजन न करने से रोगी मुमूर्ष हो जाता है। उस समय में रोगी के पेट को चीर कर कोई सफलता नहीं पाई जाती है।

——

स्वर यंत्र की पीड़ा

स्वर यंत्र प्रदाह (Laryngitis)

स्वर यंत्र प्रदाह को "लेरिञ्जाइटिस" कहते हैं। यह चार प्रकार का है। १—तीव्रकफरोगज (एक्यूड कैट्रेल) २—जीर्ण कफरोगज (क्रोनिक कैट्रेल) ३—शोथ युक्त प्रदाह, ४—कलोय स्वर यंत्र प्रदाह (मेम्ब्रनेस लेरिञ्जाइटिस)

प्रथम प्रकार

अचानक ठंडक, अथवा, आर्द्रता का संयोग, स्वरयंत्र का उत्कट परिचालन, अथवा, अहित कर दूषित वायु का आघ्राण, इत्यादि इनके कारण हैं। कंठ में प्रदाह होने से समय २ पर वही प्रदाह स्वर यंत्र में आजाता है। कभी मसूरिका, खसरा, आदि रोगों से स्वर यंत्र प्रदाह होते हुए देखा जाता है। इस रोग के आक्रमण से, गले के भीतर क्षत, स्वरभंग, कभी २ स्वर लोप, खांसी, और ज्वर हो जाता है। स्वर यंत्रक

दर्शी यंत्र से स्वर यंत्र कीं परीक्षा करनेपर आक्रान्त अंश लाला और फूला हुवा दिखलाई पड़ता हैं। रोगी को शान्तकारक वास्प, आघ्राण करने के लिये देवैं। स्वरयंत्र का परिचालन करैं। रोग की प्रकृति तरुण होने पर पहिले चुल्लिका ग्रन्थि (थाइरपिड) अथवा, उपास्थि के ऊपर जोंक लगावैं। अथवा शैत्य का प्रयोग करे, प्रदाह की प्रकृति शोथयुक्त (इडिमेटस्) होने पर स्वरयंत्र में अस्त्र प्रयोग करना चाहिये

द्वितीय प्रकार

शैत्य अथवा आर्द्रता का संयोग अधिक स्वर यंत्र का परिचालन, अधिक धूमपान धूल, अथवा दूषित वास्प ग्रहण उपदंश, स्यूवार्कल, दुष्ट प्रकृति का अवरोध, आदि कारणों से जीर्ण स्वर यंत्र में प्रदाह होता हैं। इस रोग का लक्षण, खांसी स्वरभंग, स्वरलोप, कण्ठ की शुष्कता, उत्ताप, और, श्वांस कष्ट होता है। तीक्ष्ण प्रकृति का, नाइट्रेट आफ सिलवर, में रुई के फोहा को भिगो कर लगावैं, स्वर यंत्र को सम्पूर्ण विश्राम देवैं, और शुद्ध स्थान में रोगी को रक्खैं।

तृतीय प्रकार

शोथ युक्त स्वरयंत्र प्रदाह में, स्वरयंत्र शोथ से युक्त हो जाता है। इसलिये सम्पूर्ण स्वर यंत्र फूल जाता हैं, ऐसा फूलता हैं, कि शीघ्र ही प्रतिकार न करने से श्वासावरोध होकर अनेक समय रोगी की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार को प्रदाह हठ से आक्रमण करती है। किसी कारण से गला जल जावैं, अथवा, झुलस जावे, अथवा किसी प्रकार का आगन्तुक पदार्थ (Foreign) स्वर यंत्र में अटक जावैं, तो स्वर यंत्र में प्रदाह हो सकता हैं। विसर्प, मसूरिका व ज्वर के आक्रमण में भी स्वर यंत्र प्रदाह हो सकता है। स्वर यंत्र में उपदंश, वा, स्यूवार्कल, से क्षत होनेपर इस रोग के उत्पन्न होने की सम्भावना हैं। वृक्करोग के परिणाम से भी समय २ पर स्वरयंत्र में शोथ हो जाता हैं। इस रोग की चिकित्सा में कभी विलम्ब नहीं करना चाहिये, रोग की प्रकृति जानकर बमन कारक दवा देवैं, चुल्लिका ग्रन्थि (थाइरइड) और उपास्थि के ऊपर जोंक लगावैं, अथवा, बरफ का प्रयोग करैं, अथवा, गरम परिषेक करैं। इन सब उपायों से सिद्ध न होवैं, तो लेरिञ्ज एलव्लैनसेट (स्वरस्थान में प्रयोजनीय विशेष पवित्र) से शोथ ग्रस्त अंश को चीर देवैं। अथवा स्वरच्छेद (लेरिङ्गोटमी) अथवा स्वरपथच्छेद, प्रकिया करैं।

चतुर्थ प्रकार

कलीय स्वरयंत्र प्रदाह के और, दो नाम हैं। जैसे स्वर यंत्र की झूंठी झिल्ली डिपथीरिया) अथवा, स्वर यंत्रिक प्रतिश्याय (लेरिञ्जियल कैटार)। बाल्यावस्था

इसका आक्रमण अधिक होता है। यह संक्रामक है। पहिले से ही यह स्वर यंत्र में पैदा हो सक्ता है, अथवा कंठ से भी स्वर यंत्र में फैल सक्ता है, इस रोग के आक्रमण में स्वर यंत्र के भीतर एक अप्रकृत झिल्ली का उद्भव हो जाता है, वह क्रम से, स्वर पथ (ट्रैकिया) और श्वास नल (ब्रेंकिया) में भी विस्तृत हो जाती है स्वर यंत्र में रोग का प्रथम आक्रमण होने से अधिकतर वह धीरे प्रकाशित होता है। उस अवस्था में उसको साधारण सर्दी मालूम होती है। उसके थोड़े दिन के बाद एक दिन रात्रि में खाँसी आने लगती है। उस समय उसकी स्वाँस घड़ २ होती है। उसके बाद देखते २ कभी २ स्वर भेद, कभी २ स्वर लोप, अथवा श्वांस में कष्ट देखा जाता है। बालक अत्यन्त हाँफने लगता है। और शीघ्र हो रोग का प्रतिकार न करनेपर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

आभ्यन्तर प्रयोग—इस रोग की चिकित्सामें, कुनैन, परक्लोराइडआफआयरन, का आभ्यन्तर प्रयोग करे।

शस्त्र प्रयोग—अप्रकृत झिल्ली दिखलाई पड़े जो उसको काट देवै।

संक्रमण नाशक औषधियां-बोरो ग्लिसिराइड-परक्लोराइड आफ़ आयरन्, लैक्टिक् एसिड, कार्बोलिक ऐसिड, अथवा अन्य कोई संक्रमण नाशक औषधि गले के भी तरह लगावै।

झिल्ली काटनेके समय आवश्यकता होवै, तो क्लोरोफार्म सुंघावे। डिपथिरिया ऐन-टिटक सिन्, त्वचा के नीचे प्रक्षिप्त करे, इससे विशेष लाभ होता है। इसकी मात्रा का विचार रक्खे स्वरयंत्र अवरुद्ध होने पर और उसके साथ, श्वासरोध, स्वररोध, होवै, तो स्वर पथच्छेद (ट्रैकियाटमी) करना चाहिये। रोगी को मुलायम खाद्य पदार्थ खिलावैं, प्रयोजन होने पर नासारंध्र के भीतर लचने वाली रेशमी नली प्रवेशित करके उसके भीतर से आहार प्रक्षिप्त करें। रोगी को सदा उत्तेजक औषधि देवै, रोगी को कुछ काल तक शय्यापर लिटाये रक्खें, कारण यह है कि उठने बैठने से हृदय का कार्य बन्द होकर मृत्यु भी हो सकती है।

स्वर यंत्रिक चय पिड़िका (ट्यूबार्कल)

इसका दूसरा नाम स्वरयंत्र गत यक्ष्मपिड़का (लेरिंझियल थाइसिस) है और फुपफुस में पिड़िका (ट्यूबार्कल) होने पर उसके द्वितीय क्रम में स्वर यंत्रका आक्रमण होता है। कभी २ यह पहले भी स्वर यंत्र में प्रकाशित हो सका है। श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे 113

घुणाकार यक्ष्मपिडिका (मिलयरी ट्यूबार्कल) उत्पन्न हो जाती हैं। उसके बाद वे सब छोटा २ पिडकायें भङ्ग होजाती हैं। और उस स्थान में क्षत हो जाता है। सम्पूर्ण लक्षण पुरातन स्वर यंत्र प्रदाह के तुल्य हैं। इसलिये समय २ पर फुप्फुसीय यक्ष्मा के सम्पूर्ण लक्षण प्रकाशित होते हैं।

चिकित्सा।

इसमें ट्यूबार्कलकी चिकित्सा करना चाहिये। उसके साथ २ थोड़ी मात्रा में, गुपेक्रोल दिया जा सक्ता है। क्षत स्थानमें लैकटिक ऐसिड का प्रयोग करै, खांसी होवै और निगलने में कष्ट होवै, तो आहार के पहले मार्फिया, अथवा, अर्थोफार्म, का, नस्य लेवै।

और कोकेन का फोहा लगावे, इससे भी रोगी निगल न सके तो अन्न प्रणालीके भीतर, एक नाली प्रवेश कर उससे तरल पदार्थ पिलावे, श्वासावरोध का आरम्भ होवै, तो स्वर पथच्छेद (ट्रेकियाटमी) करै।

वक्षो गह्वर का आभ्यन्तर।

वक्षोगह्वर के अन्दर में परि फुफ्फुसीया कला (प्लूरा Plura) फुफ्फुस, हृदयावरणी कला (Pericardium पेरी कार्डियम) और हृदय महा धमनी आदिका अभिघात यहांपर वर्णन किया जायगा।

फुफ्फुस और परिफुफ्फुसीया कला का सद्यो व्रण।

।(Wounds of the Plura and lungs)

प्रकृति—भग्न पञ्जरास्थि, छुरी, अथवा बन्दूक की गोली के आघात से, फुफ्फुस और उसकी आवरक झिल्ली (प्लूरा) छिन्न भिन्न अथवा विदीर्ण हो जाती है।

व्रण भिन्न प्रकृति (पेनिट्रेटिङ्ग) का होने से अत्यन्त सांघातिक होता है, और कभी परिफुफ्फुसीया कला ही भेदित होती हैं। और कभी परिफुफ्फुसीया कला और फुफ्फुस दोनों आहत हो जाते हैं।

लक्षण।

संक्षोभ (शक्) कठिन पीडा, उदरीय श्वास (Abdominalbreathing) क्षत (गयार) के साथ रक्त, अथवा रक्त मिश्रित श्लेष्माका उद्गम, केवल परिफुफ्फुसीया कला के भेदित होनेपर ठीक २ ये ही लक्षण प्रकाशित होते हैं। केवल रक्तका उग्गम नहीं होता है।

उपसर्ग.

परिफुफ्फुसीया कला में रक्तस्राव (Hoemothorax) परिफुफ्फुसीया कला में वायु प्रवेश (Pneumothorax) फुफ्फुसीय संयोज तन्तु मध्यगत वायु (महाश्वास) (Emphysema) रक्तस्राव और अन्न में परिफुफ्फुसीया कला में प्रदाह (प्लूरिसी) श्वसनक ज्वर (न्यूमोनियां) ये उपसर्ग होते हैं ।

चिकित्सा.

रोगी को विश्राम करावे, रोगी को बरफ चूसने के लिये देवे, यातना दूर करने के लिये अफीम देवे, व्रण छोटा होवे तो उसका मुख बन्द कर देवे । बड़ा होनेपर पचन निवारक बन्धन बांधे, उसके मध्य में एक (पूयनिःसारणी रबड़की नली) ड्रेनज ट्यूब स्थापित करे। केवल परिफुफ्फुसीया कला (प्लूरा) के आहत होने पर वाह्य व्रण बन्द करे, और कोई उपसर्ग न होवे, तो बन्द करें । व्रण (वान्ड) बड़ा होवे, और फुफ्फुस से रक्त निकले तो फुफ्फुस का बाहर से बन्धन, वा, वत्ति, लगाकर रक्तस्राव बन्द करें, उद्द्रवों की चिकित्सा करनी चाहिये ।

हृदयावरणी कला और हृदय का अभिघात

जिन कारणों से फुफ्फुस, और उसकी आवरक झिल्ली में सद्योव्रण उत्पन्न होता हैं । उन्हीं सम्पूर्ण कारणों से, हृदयावरणी कला और हृदय आहत होता है । ऐसा होने पर उसके चिह्न दारुण संक्षोभ, रक्तस्राव, हृदयवरणी कला में प्रदाह होता है। इस प्रकार का अभिघात बड़ा सांघातिक होता हैं । इससे अधिक तर मृत्यु हो जाती है ।

चिकित्सा

सम्पूर्ण विश्राम, बरफ आदि से शीतल परिषेक करें, और प्रदाह प्रारम्भ होने पर जलौका का प्रयोगकरें, इस से शान्ति होतो है, निकला हुआ रक्त, श्लेष्मा, और, पूयसे हृदय का कार्य बन्द होते हुये मालूम होवें तो, छेदन, वा, भेदन, करके उस समुदाय को बाहर निकाल देवें, उनके निकल ने का ठीक २ मार्ग कर देवें ।

हृदय का सद्योव्रण ।

Wands of the heart.

प्रकृति—वंदूक की गोली, अथवा, अस्त्राघात से हृदय, छिन्न भिन्न, व विदीर्ण हो कर शीघ्र हो मृत्यु हो जाती हैं ।

किन्तु भाग्य से कभी रोगी कुछ काल तक जी जाता हैं। और कभी कभी २ उपयुक्त चिकित्सा से रोग। अच्छा भी होजाता है, पीडा शीघ्र अच्छी न होने पर, अचैतन्य, स्तैमित्य, क्षीण नाड़ी, और श्वास में कष्ट, वाद को हृदयावरणीकला के प्रदाह के सम्पूर्ण लक्षण दिखलाई देते हैं। हृदयावरणीकला के अभिघात की जिस तरह चिकित्सा वर्णन की गई है, इस स्थल में वैसी ही चिकित्सा करें। हृदय, अथवा, महाधमनी आदि के छेद, भेद, हाजाने से मुहूर्त मात्र में प्राण नष्ट होजाते हैं। वक्षःस्थल के अभिघात में निम्न लिखित उपसर्ग होते हैं।

(१) वाह्य शोणित स्राव, परिफुफ्फुसीयाकला में रक्त स्राव (हिमोथोरक्स) परि फुफ्फु सीया कलामें वायु प्रवेश (न्यूमोथोरक्स) महाश्वास (एम्फाइसिमा) फुफ्फुस का निर्गम, परिफुफ्फुसीया कला प्रदाह, श्वसनकज्वर, हृदयच्छद कोष में खून पड़जाना (हीमोपेरीकार्डियम), हृदयावरणीकला प्रदाह (पेरिकार्डाइटिस), फुफ्फुस अन्तराल विद्रधि (मेडिष्टाइनेलएवसेस), इन उपद्रवों के मध्य में शल्यतन्त्र के जो अन्तर्गत है, उनका संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

बाह्य शोणित स्राव।

चिह्नादि—वक्षःप्राचीर भिन्न, अथवा विदीर्ण हो जावे। तो पर्शुकान्तरीय (इन्टर कष्टेल) धमनी, आभ्यन्तरीय दुग्धग्रन्थि गामिनीधमनी (उण्टर्नैलमैसरीआर्टरी) फुफ्फुस का सद्योव्रण, अथवा, हृदय का सद्योव्रण. अथवा किसी बड़ी नाली से रक्त निकलता है। पर्शुकान्तरीय धमनी, और आभ्यन्तरीय दुग्धग्रन्थि गामिनी धमनी से रक्त स्राव होवे, तो वह मुकर शब्द करता हुआ निकलता है। किन्तु अनेक समय उसकी वास्तविक अवस्था का निर्णय नहीं हो सकता है। हृदय, अथवा, वृहद् धमनी से रक्त स्राव होने पर उसी समय मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा।

यदि सम्भव होवै, तो पर्शुकान्तरीय धमनी का बन्धन करना आवश्यक हैं। समीप में कोई उपयुक्त चिकित्सक न होवैं, और न यन्त्र होवैं, तो, एन्टीसेप्टिक सोल्यूशन में, वस्त्र भिगोकर, उसकी तह करके व्रण के गढ़ा में भर देवै। फुफ्फुस से शोणित स्राव होवैं, तो रोगी के आहत अंशको सम्पूर्ण विश्राम देवैं और उसके ऊपर बर्फ की थैली (आइस वेग) रक्खें, उसके साथ, सीसा, और, अफीम से युक्त औषधि, गैलिक एसिड, इमोमेलिस, अथवा, आर्गट, सेवन करने के लिये देवैं।

परिफुफ्फुसीया कला स्थित शोणित स्राव

प्रतिकार—फुफ्फुस की आवरक झिल्ली में शोणित स्राव होवे, उसको अंग्रेजी में, 'हिमोथोरक्स' कहते है। कोई एक टुकड़ा भग्न पञ्जरास्थिका, फुफ्फुस में वेधन हो जावे, अथवा पर्शुकान्तरीय धमनी में आघात लगने पर. इस प्रकार शोणित स्राव होता है, फुफ्फुस से शोणितस्राव होने पर जैसी चिकित्सा की जाती है, वही चिकित्सा इसमें भी करना चाहिये। श्वास का अवरोध होना आरम्भ होवें, तो, एस्पिरेटर, से रक्त बाहर निकाल देवें, पूय होने पर वक्षोगह्वर को चीर कर पूय बाहर निकाल दें। और उपयुक्त बंधन बांधें।

परिफुफ्फुसीया कला प्रविष्ट पवन (न्यूमोथोरक्स)

प्रतिकार—भग्न पञ्जरास्थि से फुफ्फुस में आघात लगने पर परि फुफ्फुसीया कलाके भीतर वायु प्रवेश कर जाता है।

महाइकास.

प्रतिकार-फुफ्फुस के संयोजक तन्तुओं के व्यवधान के मध्यमें वायु प्रवेश कर जावे, तो उसको, एम्फाइसिमा, कहते हैं, पञ्जरास्थि के भग्न होने पर, उससे फुफ्फुस कोई२ स्थानमें छिलजाने पर, एम्फाइसिमा, उत्पन्न हो जाता है, अधिकांश रोगियों के, एम्फाइसिमा, एक स्थान में रुका रहता है, कभी अन्य स्थान में भी, जैसा कि समय २ पर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होजाता है। इस के आक्रमणसे शरीरके अन्दर विचित्र स्फूर्ति होती है, एक फुटकर पैडा, और एक वन्धन से रोग का उपशम हो सकता है, उससे शान्त न होवे। तो पीडा अत्यन्त बढकर श्वासावरोध आरम्भ होजाता है, उस समय आहत अंश को दो, एक स्थान पर, वेधन कर देवे, इससे शान्ति होजाती है।

फुफ्फुसका निर्गम और अन्त्र वृद्धि

प्रकृति और प्रतिकार-वक्षस्थल के प्राचीर में आघात लगे उस सद्योव्रणके भीतरसे फुफ्फुस का कुछअंश वाहर निकल आवे। उसको अंगुल से धीरेदवा देवें। तो वह भीतर फिर प्रविष्ट हो जाता है, उसके वाद उस क्षत स्थान को सी देना चाहिये-इससे वाहर नहीं आसकता है। प्रयोजन होने पर छिद्र को वढ़ा सकते हैं। वक्ष, प्राचीर में भिन्न व्रण (पेनिट्रेटिङ्गवान्ड) के अच्छा होने पर जो कड़ापन हो जाता है। उस कड़ापन के भीतर से आच्छादन के मध्यमें फुफ्फुस का कुछ अंश दवनेसे बाहर हो जाता है, कभी २ त्वचा में कोई विकार होने पर, पर्शुकान्तरीय पेशी (इन्टर कष्टैल) और उसके नीचे की शिरा फट जावे, त्वचा के नीचे में ऊंचापन दिखलाई पड़ता है, इसका नाम, फुफ्फुस की अंत्रवृद्धि (हर्निया) है। अथवा, न्यूमोसील है, प्रथम, अथवा, वक्ष

पर्शुकान्तरीय जगह (स्पेश) में अधिकतर उत्पन्न होता है। परिफुप्फुसा या कलामें आघात लगने पर ग्रीवा के मूल में भी कभी न्यूमोसिल, देखा जाता है। यह देखने में गोलाकार अर्बुद के तुल्य होता है। इसको दवा देवें, तो बैठ जाता है। और हांफने पर, खाँसने पर, जोर से श्वांस निकालने पर और बाहर होजाता है। इसकी चिकित्सा सहज ही है, एक पुटक (पैंड) या चमड़े की ढाल से उसको दवाये रक्खें।

उदर शल्य विज्ञानम्

उदर प्राचीर के पिष्टव्रण और भिन्न व्रण का विषय जान कर उदर के अन्दर में आघे समूह का, अभिघात और व्रण आदि का विवरण लिखा जायगा, उदर के प्राचीर में साधारणतः तीन प्रकार का सद्योव्रण होता है। पिष्ट व्रण (कन्ट्यूशन) अभिन्न व्रण (ननपेनिट्रेटिङ्ग और भिन्न व्रण (पेनिट्रेटिङ्ग)

पिष्ट व्रण (Contutions)

चिह्नादि—व्रण के कारण के अनुसार, और आघात की प्रकृति के अनुकूल पिष्ट-व्रण का प्रकार भेद देखा जाता है, आघात सामान्य होने पर अनेक समय उदर के ऊपर केवल एक दाग दिखलाई पड़ता है, पीड़ा भी मामूली ही होती है। किन्तु भारी आघात होने से, उदरका कोई यन्त्र जैसे पाकस्थली, प्लीहा, यकृत, आदि विदीर्ण और चूर्ण हो सक्ता हैं। आघात सामान्य होने पर रोगी को चारपाई पर लिटाकर उष्ण स्वेद दिलाना चाहिये। इस अवस्था में उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। क्योंकि उससे रक्तस्राव होने लगता है, भारी आघात लगे, और उदर के अन्दर का कोई यन्त्र आहत हो जावे, तो लक्षणों से पहले उसका निश्चय कर लेवै। उसके बाद उस यंत्र की उपयुक्त चिकित्सा करके, पिष्टव्रण का प्रतिकार करना चाहिये। अनेक समय आहत प्लीहा आदि की चिकित्सा के लिये अस्त्रोपचार किया जाता है। कभी २ शीघ्र ही मृत्यु होकर रोगी की सब यन्त्रणा को दूर करदेती है। आहत प्लीहा आदि की चिकित्सा आगे वर्णन की जायगी।

भिन्न व्रण (Penetrating wounds)

लक्षणादि—छुरी, तलवार, अथवा अन्य किसी तीक्ष्ण अस्त्र से उदर, विदीर्ण, वा, भिन्न हो जावे, उसको 'पेनिट्रेटिङ्ग," कहते हैं। उस विदार पथ से अंत्र बाहर निकल आता हैं, इसमें अधिकतर, दो, वा, एक, बड़ी शोणित नली छिन्न हो जाती है। ऐसा होने पर, संक्षोभ (शक्) और अधिक शोणित स्राव से रोगी का जीवन संकट में पड़

जाता है, अंत्र में यदि किसी प्रकार का आघात न लगे, तो अन्त्र विदार पथ से निकलने पर कोई विपत्ति, नहीं होती हैं, किन्तु उदर के साथ अंत्र छिन्न, भिन्न वा, विदीर्ण, हो जावै, तो बड़ी विपत्ति होती है, ऐसे आघात से औदर्यकला प्रदाह (पेरिटोनाइटिस) होने की विशेष सम्भावना है।

चिकित्सा

इस समय पचनविरोधी चिकित्सा प्रणाली की प्रचलन विधि से, उदर और, उसके मध्य के यंत्रोंके सद्योव्रण का प्रतिकार स्वतन्त्र रूपसे होता है। उदर प्राचीरके वाह्य सद्योव्रण के साथ २ उदर के अन्दर के यंत्रों को सावधानता पूर्वक बांधे, वपा (ओमेन्टम) बाहर निकल आवे, वह आहत होवे, या न होवें बन्धन करके अन्तरिक्ष कर देवे, अन्त्र आहत होने पर उसका प्रतीकार करने के पहले, अंकुशवज्रलिका (साइफन स्यूब) से पाकस्थली और लवण जल को पिचकारी से (मलाशय) को साफ करें। उसके बाद अफाम का सत (मार्फिया) और, स्ट्रिकनाइन का त्वचा के नीचे प्रक्षेप करना चाहिये, और संक्षोभ (शक्) भारी होने पर, सैलाइनसोल्यूशन मलाशय अथवा, शिरा के मध्य में प्रक्षिप्त करें, इसके बाद रोगी को अच्छी तरह कम्बल से ढक देवें, गरम जल की शय्यापर उसके शरीर में अस्त्र प्रयोग करना चाहिये, अंत्र एक बार में छिन्न हो जावें, तो गोलाकार, अंतरी को काट कर जोड़ना (एन्टरोरेफि) इस प्रक्रिया से खण्डित अंशों को फिर जोड़ देवें, बन्दूक की गोली के आघात से उदर विदीर्ण हो जावे, वह किस स्थान में विदीर्ण हुआ है, इस बात को जानने केलिये, वायु से अन्त्र मण्डल, विस्फारित करे। इससे पहले मलाशय, उसके बाद पक्वाशय, विस्फारित हो जाता है, और छिद्रपथ से वायु निकल ने लगता है, उस समय उस छिद्र को सी देना चाहिये, इस तरह जितने छिद्रों से वायु निकलें, उनको सीं देवे। यकृत आहत हो जावे, तो उसके उदरच्छद कला तलकी (पेरिटोनियल सारफेस) सिलाई करके जोड़ देवे, यकृत में गहरा छेद होवे, तो आइडोफार्म की बत्ती से, उसको भर देवे, उसके स्राव के निकलने के लिये पार्श्वपेशाइटिस का कुछ अंश खुला रक्खें, पित्ताधार (गलेंडर) भिन्न वा, विदीर्ण हो जावे, और सद्योव्रण छोटा, वा, सुपरिच्छन्न होवें। तो उसकी सिलाई कर देवें, यदि वह, पिच्चित, अथवा, पिष्ट होगया होवे। तो उसके किनारों को उदर पार्श्व (एबडोमेनपेराइटिस) में टाँक (स्टिच) देवें। अथवा अवस्था विशेष में पित्ताधार को काटकर बाहर निकाल देवें, प्लीहा, के आहत होने पर अ... सांघातिक शोणित स्राव होता है। उस शोणित स्राव यथारोध

करने के लिये समय २ पर यंत्र को काटकर बाहर कर लेने की आवश्यकता पड़ती है ऐसे उदर के अन्दर आहत आशयों का चिकित्सा करके उदर के प्राचीर में ध्यान देना चाहिये, पहले उदर गह्वर को एक बार साफ कर लेना चाहिये। छिन्न, भिन्न, आशयों से रक्त प्रस्तुत हो कर उदर गह्वर के मध्य में सञ्चित हो जाता है, पहले सम्पूर्ण रस रक्तादि को, परक्लोराइड आफमर्करी के लोशन से धोकर अलग कर देवें। उसके बाद उदर के सद्योव्रण की चिकित्सा पूर्वोक्त सद्योव्रण की चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये, इस शल्य चिकित्सा के बाद साधारण चिकित्सा में मनोनिवेश करना चाहिये, अधिक वेदना होवैं, तो अल्प मात्रा में, अफीम, देवैं, इस अवस्था में रोगी के गुदा मार्ग से पिचकारी द्वारा तरल खाद्य पदार्थ प्रक्षित करना चाहिये, उदरच्छद कला में प्रदाह (पेरीटोनाइटिस) दिखलाई देवे, तो उसकी उपयुक्त चिकित्सा करें। यह सम्पूर्ण अस्त्रप्रचार बड़ा कठिन हैं।

पाकस्थली का सद्योव्रण.

Wounds of the stomach

प्रकृति—पाकस्थली, तेज छुरी, वा, बंदूक की गोली के आघात से, छिन्न, वा, भिन्न, वा, विदीर्ण, होजावै, हत्या करने वाला, हृदय को लक्ष्यकर के शस्त्र चलाता है, किन्तु अनेक समय वह हृदय में न लगकर, पाक स्थली में लगता है, कभी २ छुरी वाम परिफुस्फुसीया कला (प्लूरा) के गह्वर के नीचे भाग से, वक्षोदर मध्यस्थ महा प्राचीर-पेशा (डाया फ्राम) को भेद करके पाकस्थली में आकर लगता है, पाकस्थलीके पीछे रहने वाली बड़ी२ शोणित नालियों के आहत होने से आघात प्रायः सांघातिक होजाती है, यदि उनमें किसी प्रकार का आघात न लगै, तो शीघ्र ही अस्त्र प्रयोग कर के रोगी के जीवन की रक्षा की जा सकती है। पाक स्थली, छिन्न, भिन्न, होकर, पाचक रस, अजीर्ण खाई हुई द्रव्य उस विदार पन्थ से निकलती है।

चिकित्सा

आवश्यकता होने पर उस समय पार्श्व (पेराइटिस) का सद्योव्रण बढ़ा लेवे, और पाकस्थली का सद्योव्रण खोज लेवे, लंबाई के सूचर से छिन्न मुखों को जोड़ देवैं। पहिले सद्योव्रण दिखलाई देवैं, तो प्रस्तुत रस रक्त आदि को निकाल देवैं, पेट के सद्योव्रण को बाँध देवैं, सामान्य उदरच्छद कला प्रदाह मालूम होवैं, तो आइडोफार्म की बत्ती उसमें रक्खैं, उदरच्छद कला प्रदाह (पेरिटोनाइटिस) सर्वाङ्गीण हो पर उसकी उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये।

पाकस्थली में आगन्तुक पदार्थ

प्रकृति—दुअन्नी, चौअन्नी, मोहर आदि, और बनावटी दांत आदि आगन्तुक पदार्थ किसी विशेष घटना से, उदर में होकर पाकस्थली में प्रविष्ट हो जावे कभी २ मछली का कांटा, कंकर, पत्थर, वाल. आदि उदर में जाकर पाकस्थली में इकट्ठा हो जाता है, उदर में, व्यथा, यातना, विवमिसा आदि लक्षणों से अनेक समय यह जाना जाता है, किन्तु सब काल में, अन्दर में निश्चित नहीं किया जा सकता है, इस स्थल में, "एक्सरे" यंत्र से. पाक स्थली (Stomach) की स्वाभाविक अवस्था जानी जा सक्ती है ।

चिकित्सा

अनेक स्थल में पेट चीर करके (गैष्ट्रोटमी) से आगन्तुक द्रव्य बहुत जल्दी बाहर निकाल लेते हैं, बटन दुअन्नी आदि छोटे २ गोलाकार, वा चक्राकार पदार्थ पाकस्थली में कई दिन तक ठहर करके बाद को गुदा से निकल जाते हैं, समय २ पर बमन के साथ निकल जाते हैं । बहुत काल तक ये द्रव्य रहें, तो पाकस्थली में छेद हो जाता है, और उस छेद से आगन्तुक पदार्थ उदर गह्वर में प्रविष्ट हो जाते हैं, उसके बाद वे जिस स्थान में सञ्चित हो जाते हैं, उस स्थान में एक फोड़ा पैदा कर देते हैं, मध्य रेखा के ऊपर उदर को चीर कर दो कोर के मध्य मे पाकस्थली को चारें, और आगन्तुक पदार्थ उस विदार पथ से धीरे २ बाहर निकाल लेवें, उसकी बाद. सींवना रेखा से उ [illegible] जोड़ देवें ।

वृक्क का सद्यो व्रण

Wounds of the kidney.

लक्षण—छुरे, वा बंदूक, व, पिस्तौल की गोलाके आघात से, वृक्क, छिन्न, भिन्न वा विदीर्ण, हो जाता है, और सामने के आघात से उदर गह्वर आहत हो जाता है। इसका प्रधान लक्षण यातना, वह यातना कटिदेश से, उरु और अण्डकोष तक फेल जाती है, विवमिसा, वमन अधिक रक्तस्राव, विदारपथ से मूत्र निकलना, इस प्रकार का सद्योव्रण अधिकतर सांघातिक हो जाता है । व्रण को अच्छी तरह से धो देवें । प्रयोजन होवें, तो बढ़ा भी सक्ते हैं, और पवन दोषसे उसको बचावें, कोई आगन्तुक पदार्थ होवे । तो उस को शीघ्र ही बाहर निकाल देवें । और औदर्य कला (पेरीटोनियम) छिन्न वा भिन्न हो जावे । तो उसको सींकर जोड़ देवे, कोई विषाक्त यंत्र से आघात होवें, तो गजट्टेन प्रवेश करें, स्राव निरोधक तोल वस्तु गोलक (प्लग) अथवा तन्तु

बन्धन (लिगेचर) शोणितस्राव बन्द न होवे, तो वृक्क को काट कर अलग कर देवें।

मूत्रवहा नाली का सद्योव्रण

प्रकृति—पेट के तल में अत्यन्त दबाव पड़े, अथवा जरायु में किसी कारण से अस्त्रपात करने के समय मूत्र वहा नाला (यूरिटर) फट जावे, तो मूत्र प्रस्तुत होकर निम्न उदर में इकट्ठा हो जाता हैं, उससे अनेक समय एक व्रण शोथ पैदा हो जाता हैं, कभी २ मूल उदर गह्वर में प्रवेश करके शीघ्र ही औदर्य कला प्रदाह पैदा कर देता हैं। सद्योव्रण छोटा होवे, तो लम्बाई के सूचर से बन्द किया जा सकता है, सद्योव्रण बड़ा, और, विषम होवे, अथवा नाली एक वार में द्विधा विभक्त हो जावे, तो तिर्यक् सीवन प्रक्रिया से दोनों मुख दूसरी वार संयुक्त हो सक्ते हैं, इस सम्बन्ध में "वेन्[illegible]क महोदय" का एक और उपाय हैं, वह उपाय अत्यन्त कठिन है, इन दो उपायों से कार्य सिद्ध न हो, तो वृक्क को काटकर अलग कर देवें।

प्लीहाका अभिघात (Injuries of the spleen)

सद्योव्रण—छुरीके आघात से प्लीहा, छिन्न, भिन्न, वा, विदीर्ण हो सक्ती है। अथवा, उदर प्रचार के एक खुले हुवे छिन्न व्रण के भीतर से प्लीहा झूलने लगे, प्रथम प्रकार के अभिघात से भयानक धमनी से रक्त स्राव होकर रोगी का जीवन संकट में पड़ जाता हैं। इस अवस्थामें प्लीहा को काट कर अलग नहीं किया जाय, तो रोगी की रक्षा नहीं हो सकती। प्लीहा भ्रंश (Pralapsus) होवे, तो उसमें अत्यन्त शोणिताधिक्य हो जाता है, इसलिये उसमें गेंग्रिन पैदा हो जाता है। प्लीहा काटकर अलग कर देवे, तो यह विपत्ति दूर की जा सकती है।

विदार

पैरों के आघात, मुक्कों के आघात, आदि कारणों से प्लीहा फट जाती है, फटने पर रोगी उसी समय बेहोश हो जाता है, विदीर्ण प्लीहा से रक्त बाहर न आ सकें, तो वाम अधः पार्श्विक (हाइपोकन्ड्रियम) प्रदेश में सञ्चित होता है, इस लिये वह तरल अर्बुद के तुल्य ऊंचा हो जाता हैं, विषमज्वर-(मलेरिया फीवर) में बढी हुई प्लीहा समय २ पर सामान्य आघात से फट जाती है, और उससे अधिक मात्रामें रक्त स्राव हो कर प्राण नाश हो जाते हैं, प्लीहा में अभिघात हुआ है, कि नहीं, इसका निर्णय एषणी यन्त्र से कर लेवें उसमें भारी आघात होने पर उसको काट देना चाहिये, उसका सामान्य भाग फट जावे, अथवा चिरजावे, तो सिलाई करके उसकी रक्षा करें।

आभिघातिक औदर्य कला प्रदाह।

Faurematic Peritomits.

प्रकार भेद, और, कारण—औदर्य कलाकी, आंशिक, अथवा, सर्वाङ्गिक, प्रदाहको, पेरीटोनाइटिस (औदर्य कला प्रदाह) कहते हैं, पूर्वोक्त सब कारणों से यह प्रदाह होता है, आहत स्थान में, अथवा, सद्योव्रण के निकट में यह प्रदाह होता है, अथवा, सम्पूर्ण औदर्य कला के गह्वर में विस्तृत होकर पाक से दूषित पदार्थों का परिशोषण होने पर शरीर का सम्पूर्ण शोणित विषैला हो जाता है, प्रथम प्रकार के औदर्द कला प्रदाह (पेरिटोनाइटिस) को, सीमाबद्ध (लोकैलाइज्ड) नाम से कहते हैं, यह आहत अंशों को आपस में संयुक्त करके प्रदाह के विस्तार को निवारण करता है, और अन्त में अपने ही से शान्त हो जाता है, किन्तु समय २ पर इसमें पूय होकर फोड़ा हो जाता है, और वह फोड़ा, बाहर में, अथवा भीतर में फट जाता है, अथवा, वह औदर्य कला के गह्वर के भीतर फट जाता है, उसमें व्यापक औदर्य कला प्रदाह उत्पन्न हो जाता है, साधारणतः निम्न लिखित कई कारणों से औदर्य कला प्रदाह उत्पन्न हो सकता है।

(१) पाकस्थली, अथवा, यंत्र में क्षत होकर छिद्र हो जावै, और उस छिद्र-पथ से उसका आधेय बाहर होकर उदर गह्वर में गिर पड़े। (२) किसी अस्त्रोपचार के बाद अंत्र के किसी फंदे में गैंग्रिन हो जावे, (३) औदर्य कला के गह्वर में अन्य किसी प्रकार का फोड़ा फट जावै। (४) मूत्र, पित्त, व. रक्त, प्रस्तुत होकर, उदर गह्वर में पड़े। (५) अण्डाधारा ओवेरि का अर्बुद फट जावे। (६) हठ से कोई अभिघात लगे, अथवा उदर में किसी अस्त्रोपचार के बाद विषैले पदार्थ उसके मध्य में प्रविष्ट हो जावे।

लक्षण।

सीमाबद्ध प्रकार में उदर के एक अंश में उत्कट पीड़ा होती है, यह पीड़ा दाबने से, खांसने से, श्वांस निकालने से बढ़ जाता है, वमन, और ताप की सामान्य वृद्धि होती है, अन्दर में फोड़ा होगा तो वह स्थान फूल जाता है। अत्यन्त ज्वर बढ़ जाता है। शरीर काँपने लगता है। रोग के व्यापक प्रकार में वेदना सम्पूर्ण उदर में फैल जाती है। जिससे रोगी बहुत बेचैन हो जाता है, शरीर के ऊपर वस्त्र उढ़ाने से बहुत कष्ट का अनुभव करता है, इस वेदना से छुटकारा पाने के लिये हाथ, पैरों को फैलाकर चित्त, होकर लेट जाता है। उसके श्वास, प्रश्वास से वक्षो निरुद्ध (Thoracic) हो जाता है, उदर की पेशियां शिथिल हो जाती हैं, उदर गह्वर में दूषित वाष्प जम जाता है, साधारण

लक्षणों के मध्य में उत्कट, अनिवार्य, वमन, कोष्ठरोध. हिक्का, मल से लिप्त सूखी हुई जिह्वा, क्षीण व सूक्ष्म नाड़ी, अन्त में जल्दी २ चलनेवाली व लचकदार हो जाती है, और शरीर ठण्डा पड़ जाता है, अथवा ताप बढ़कर १०३ अथवा १०४ डिग्री हो जाता है। किन्तु सब शरीर में विषीकरण के वृद्धि पानेपर मृत्यु के पूर्व उसका अस्वाभाविक स्राव हो जाता हैं।

चिकित्सा

औदर्य कला प्रदाह की चिकित्सा दो प्रकार से हो सकती है, एक प्रतिषेधक, दूसरी आरोग्य साधक, पूर्वोक्त सम्पूर्ण कारणों के प्रतिकार करनेपर रोगका प्रतिषेध किया जा सकता है, उस समय रोगी को सम्पूर्ण विश्राम करावे, और बरफ का टुकड़ा और गरम जल के सिवाय कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिये, कोई २ चिकित्सक बार २ थोड़ी मात्रा में अफीम देने के लिये कहते हैं। किसी २ चिकित्सक का सिद्धान्त है कि वेदना होनेपर अफीम देना चाहिये। अन्यथा इससे अपकार होने की सम्भावना हैं। कारण यह है कि उदर गह्वर और अन्त्र से दूषित स्राव निकलने में बाधा पहुँचती हैं, इसलिये अनिष्ट होने की सम्भावना है। औदर्य कला प्रदाह के लक्षण प्रकाशित होने पर तर्पीन की पिचकारी और एक लावणिक विरेचन (मेगसल्फ १ औं०) देवे।

उसके बाद अन्त्र मण्डल जब तक अच्छी तरह से साफ न होवे। तबतक दो घण्टा का अन्तर देकर १ ड्राम मात्रा में विरेचन देना चाहिये। किन्तु यहांपर यह भी बतला दिया जाता हैं कि मण्डल में कोई भारी बाधा होनेपर अथवा श्रुति पटहच्छेद (पार्फोरेशन) से औदर्य कला प्रदाह उत्पन्न होवे, तो उक्त विरेचन नहीं देना चाहिये।

अस्त्र साध्य

आरोग्य साधक, चिकित्सा अनेक परिमाण में अस्त्रसाध्य हैं, रोगी के उदर को चीरकर आहत यन्त्र आदि की परीक्षा करे, उसके बाद सूक्ष्म, त्रिकूर्चक शस्त्र (ट्रोकर) और नाड़ी शस्त्र के न्यूला से अन्त्र के स्थान २ पर वेधन कर देना चाहिये, दूषित वाष्प बाहर कर देवे, उसके बाद अन्त्र मण्डल को अच्छी तरह धो देना चाहिये, रोगी बेचैन अचेत हो जावे, तो अस्त्रोपचार के पहले स्ट्रिकनाइन् और ब्राण्डी (सुरा) देना चाहिये उसके बाद उत्ताप और उत्तेजक औषधि और पुष्टिकर भोजन तथा पिचकारी देवें, आजकल शिरा के मध्य में, स्वाभाविक, सैलाइनसोल्यूशन, प्रक्षिप्त करना चाहिये। स्थानिक प्रकार के औदर्य कला प्रदाह में पहले २ जलौका प्रयोग करे, उष्ण स्वेद और टार्पेण्टाइन स्टूप देवे।

मूत्राशय का विदार ।

Pupture of the Bladder.

कारण - मूत्राशय परिपूर्ण होवे, उसके ऊपर पदाघात व मुष्ट्याघात अथवा दूसरा कोई भारी आघात लगे, उससे मूत्राशय का सम्मुखांश हैं। मूत्रवस्ति देश (पेल्विस) भग्न हो जाता है, अनेक समय मूत्राशय भी उसके साथ फट जाता है, इस भांति विदार की गति अधिकतर तिरछी होती है। मूत्राशय के पीछे का भाग इससे व्याप्त अधिक देखा जाता है। उससे मूत्र उदर गह्वर में चला जाता है, मूत्राशय का सम्मुखांश फट जाता है, मूत्र वस्ति गह्वर के शिथिल सेल्यूलर (कोमल) तन्तुओं से निकलता है। पहले प्रकार के अभिघात में साधारणतः औदर्य कला प्रदाह पैदा होता है, और थोड़े दिन के मध्य में वह सांघातिक हो जाता है, द्वितीय प्रकार में व्यापक प्रकृति का कोमल धातु प्रदाह (सेल्यूलाइटिस) उत्पन्न होकर रोगी को मार देता हैं।

चिह्नादि ।

मूर्च्छा और अवसाद मूत्रमार्ग में सलाई डालने पर मूत्र न निकल कर एक २ बूंद रक्त का बाहर निकलता हैं। समय पर शून्य मूत्राशय शलाकाके मुख को पकड़ लेता है।

चिकित्सा

मूत्राशय का विदार—औदर्यकला प्रदाह के मध्य भाग में होवे, तो उदर को चीर कर मूत्राशय के विदार को सीं देना चाहिये, इस भांति विदार के बन्द हो जानेपर किसी प्रकार का रञ्जित पचन निवारक तरल पदार्थ मूत्राशय में प्रक्षिप्त करे। उसके बाद औदर्य कला (पेरिटोनियम) के गह्वर को अच्छी तरह से धोकर बाहर का व्रण बन्द कर देवे रोगी के प्रत्येक चार घण्टा के बाद मूत्राशय को खाली कर देवे, पहली बारमें अथवा २४ घण्टा तक रोगी को मुख से खाने के लिये न देवे, अधिक स्तैमित्य मालूम होनेपर विशेष विवेचना करके उत्तेजक औषधि देवे, यातना निवारण करने के लिये एकमात्र अफीम की मात्रा देवे।

मूत्र प्रसेक का विदार

Rupture of urethra.

प्रकृति —यह अत्यन्त भयङ्कर रोग है, कारण यह है, कि इसमें चारों तरफ मूत्र परिचालित होता है, ऐसा भी नहीं है कि चिर जीवन के लिये मूत्रमार्ग का अभिघातिक रावरोध (ट्रमेट्रिक ष्ट्रिक्चर) हो जाता होवे, पेरिनियम (विटप प्रदेश) में पदाघात

अथवा, अन्य रूप का, कोई अभिघात लगे। अथवा किसी कठोर, लकड़ी, पत्थर, आदि परसे गिरने से मूत्र नाली, फट जावे। मूत्र नाली में पुरातन अवरोध (स्ट्रिकचर) होने पर, मूत्र त्याग के वेग में भी मूत्र नली फट जाती है।

चिन्हादि

सामान्य आघातसे मूत्रनाली केवल पिसजाती है। परन्तु मूत्रका अवरोध नहीं होता है। इस अवस्था में रोगी को विश्राम करावे। विटप प्रदेश में (पेरिनियम) मूत्रप्रश्रुत हुआ है, कि नहीं, इस विषय में विशेष दृष्टि रक्खे। मूत्र अवरुद्ध होने पर, कोमल शलाका, व (रबड़ की शलाका) गमइलेष्टिक अथवा, रौप्य शलाका, मूत्रमार्ग में प्रविष्ट करना चाहिये, अण्डकोष के भीतर मूत्र प्रश्रुत होने पर, पहले उसको चीर देवे। मूत्र नाली, आंशिक रूपसे, अथवा सम्पूर्ण रूपसे छिल जावे। यदि उसके प्रान्त इकट्ठे किये जा सकें, तो मूत्र मार्ग में एक शलाका प्रविष्ट कर के, उसके ऊपर उस विदार को सीं देना चाहिये। उसके बाद विटप प्रदेश के बाहर गम्भीर व्रण, सूचर, से सीं देना चाहिये। इस स्थल में शलाका (केथिटर) एक सप्ताह तक रखना आवश्यक है।

मलाशय का अभिघात

अभिघात–नुकीले द्रव्योंके ऊपर गिर पड़े, अथवा कोई नोक वाली, अथवा बिना नोक वाली द्रव्य मलाशय के अन्दर प्रविष्ट हो जाने से मलाशय में अभिघात लग जाता हैं। और असावधानी से, पिचकारी की नली लम्बी होने से, अथवा ऋजु नाड़ी के लम्बे होने से, मलाशय के अन्दर, प्रविष्ट करने पर समय २ पर उसके अन्दर क्षत, विक्षत, हो जाता है। इन सब आघात से उदर गह्वर छिन्न हो जाता है। अतः मृत्यु अनिवार्य हो जाती है। उदर (एबडोमेन) को उन्मुक्त कर के उदर गह्वर को धोवे। और उदर प्राचीर और मलाशय का छिद्र ऊपयुक्त उपाय से सीं देवे। यही इसका एक मात्र प्रतीकार है।

आगन्तुक द्रव्य

७

मलाशयके मध्यमें मछलीका कांटा, अस्थि, गुठली–आदि कठिन द्रव्यविशेष घटनासे प्रविष्ट होजावे, इन सब पदार्थों को आगन्तुक (Foreign Bodies) कहते हैं। आगन्तुक द्रव्य का आयतन बहुत बड़ा होने से समय २ पर उसके निकालने में बड़ा कष्ट होता है। स्पर्श ज्ञान हारक औषधि प्रयोग कर, केवल पूर्वक गुदाको विस्फारित न करनेपर अनेक समय आगन्तुक द्रव्य निकाला नहीं जा सकता है।

हिम टोमा

गर्भावस्थामें अथवा, प्रसवकालमें, भगके बड़े ओष्ठमें किसी रूपका आघात लगनेसे रक्ताधिक्य हो जाता हैं। वह सञ्चित रक्त, काल से रक्तार्बुद (हिम टोमा,) में परिणित हो जाता हैं। भगोष्ठ (Lobia) के विधानतन्तु बहुत शिथिल हो जाते हैं। इसलिये समय २ पर इस रक्तार्बुद का आयतन अत्यन्त बड़ा हो जाता है। इससे रक्त स्राव होवै, तो बरफ का प्रयोग करै, इससे बन्द हो जाता हैं, रक्तार्बुद (हिमटोमा,) में पूय न होवै, तो उसे उन्मुक्त नहीं करना चाहिये, पूय होने पर उसको चीर कर रक्त का लोथड़ा बाहर निकाल देवें, और उस गह्वर में आइडोफार्म की बत्ती भर देवें।

बिटप बिदार (Rupture of the Perineum)

कारण—कष्ट देनेवाले प्रसवसे, अथवा, अस्त्र प्रयोगसे प्रसव साधन करने पर बिटप प्रदेश (पेरिनियम) फट जावै, अथवा, केवल, योन्यधोभाग (फोर्शेट,) में दरार हो जावे, अथवा अधिक बिदार हो कर, योनि, और, मलद्वार एकमें मिल जावे, उससे, गुदयोनि मध्य प्राचीर (रेक्टो वेजाइनल सेप्टम्) कम, वा, अधिक परिमाणमें बिदीर्ण होनेकी सम्भावना हैं।

लक्षण

बिदार सामान्य होनेपर कष्ट देनेवाला कोई लक्षण प्रकाशित नहीं होता है, किन्तु वह भरी होने से, योनि और, मलाशय का, एक २ अंश, कभी २ मूत्राशय का और जरायु का भी कुछ अंश हट कर भूलने लगता है; रोगिणी का मूत्र गाढ़ा २ निकलता हैं, और मलाशय छिन्न होने पर ढीला मल निकलता है।

बिदार

बिदार होते ही सिलाई कर देना चाहिये। पहले योनिकी, उसके बाद मलाशय के श्लैष्मिक झिल्लीकी सिलाई कर देना चाहिये, अन्तमें गम्भीर टांका (सूचर) से बिटप के छिन्न, भिन्न अंशों को एक में बांध देवे, उस समय जितने दिन योनि से स्राव निकलै। उतने दिन बन्द नहीं करना चाहिये, रोगिणी को सदा चारपाई पर ही लिटाये रक्खें। अस्त्र प्रयोग करने के दिन प्रातःकाल में हल्का जुलाब देवे। उसके बिदीर्ण हुवे बिटप प्रदेशमें अस्त्र प्रयोग करें, अश्मरी (पथरी) निकालने के लिये जिस तरह रोगीको लिटाया जाता है, उसी भांति लिटावे, उसके बाद बिदार के मुखसे छिन्न, भिन्न, त्वचा को और गुदयोनि मध्य प्राचीर (रेक्टो वेजाइनेल सेप्टम,) श्लैष्मिक झिल्ली छील देवै। इसके बाद एक २ तरफ के तीसरे हिस्से को फोड़ देवै। और उसके भीतर में तीन लर रेशमी सूत प्रवेश कर देवै। और सिलाई करके सूतों के मुख आपस में बांध देवै।

मलाशय की पीड़ा

Diseases of the Rectum

प्रकृति-पहिले मलाशय के सम्बन्ध में दो चार कथायें लिखी जाती हैं, मलाशय की आजन्म विकृति के मध्य में, इस के द्वार का न होना विशेष उल्लेखनीय है, बहुतों के मल द्वार पहले से ही नहीं होता है, अथवा, मलाशय कुछ दूर आकर बन्द हो जाता है।

किसी २ का मलाशय सीधा न लव करके क्रमशः अत्यन्त बारीक होकर मूत्रनली के साथ मिल जाता हैं।

चिकित्सा

मलाशय के मुख में एक सूक्ष्म झिल्ली होती है। वह उसके द्वार को वन्द कर देती हैं उस परदे को चीर देना चाहिये। इससे मलाशय का दोष दूर हो जाता है। किन्तु जिस स्थान मे गुदा का चिह्न भी नहीं मालूम होता है, ऐसी अवस्था में मध्य रेखा के जिस स्थान में गुदा द्वार स्वभावतः होता हैं, ठीक उस स्थान मे तिरछा चीरना चाहिये इस भांति मलाशय का मुख मिल जाने पर छुरी से चीरकर उसको खींच लेना चाहिये। मलाशय न मिलने पर विशेष सावधानी से ऊपर अथवा, पीछे में एक इञ्च, अथवा, डेढ़ इञ्च चीर देवें अवश्य ही मध्य रेखा के ऊपर से त्रिकास्थि (सेक्रम) के सामने छेद करना चाहिये, औदर्य कला (पेरीटोनियम) में किसी प्रकार का आघात न लगै, अतः सावधान होकर चीरना चाहिये, इस तरह चीरने से यदि अन्त्र मिल जावै, तो उसको पकड़ करके उन्मुक्त करना चाहिये। उस को खींचकर नीचे लाकर लाने की चेष्टा नहीं करना चाहिये, इसलिये कि विदार पथ दूसरी वार सिकुड़ न जावै, अतः उसके मध्य में प्रति दिन, अंगुल अथवा, नाड़ी, प्रवेश करना चाहिये। यदि इससे भी अन्त्र न मिले तो वंक्षण में वृहदंत्र कोलन, को चीर देवें।

गुद कण्डू Pruritis Ani

लक्षण—यह एक चर्म रोग है, इसके आक्रमण से मल द्वार के चारों तरफ चुन चुनाहट होती है, अधिक-स्वेद, मल कब्जियत, कृमि, बवासीर, आदि रोगों से भी ऐसी ही चुन चुनाहट होती हैं। कभी २ कोई कारण नहीं मालूम होता है, कोई २ कहते हैं कि परि पाक के विघ्न से और वायु से भी गुदकण्डू (प्रुराइटिस एनाई) पैदा हो जाती है, समय २ पर विशेष कर रोगी गरम होकर लेट जावें, तो चुनचुनाहट बढ़ जाती

हैं, रोग के कारण को दूर करना चाहिये, कारण न जानने पर रोगी के साधारण स्वास्थ्य पर ध्यान रखना चाहिये, गुदा को खूब ठीक, साफ करे, उसके बाद, पर क्लोराइड आफमर्करी का मलहम, व, लोशन, अथवा, ब्लैकवाश, बोरेसिक एसिड, नाइट्रिट आफसिल्वर, कोकेन, अथवा कार्बोलिकएसिड, आदि प्रयोग करना चाहिये।

गुद भ्रंश Prolopsus ani

कारण, और ,लक्षण,—मल द्वार के भीतर से मलाशय की श्लैष्मिक झिल्ली झूलने लगे, उसको गुद भ्रंश (प्रोलेप्सस एनाई) कहते हैं, यह रोग सबसे अधिक बालकों के होता है, इसलिये इसका आक्रमण सब अवस्था में हो सक्ता है, साधारण दौर्बल्य उष्ण देश में बास, जोर लगाकर मल निकालना, अवपाटिकाफाईमोसिस, पथरी, कृमि, कोष्ठ बद्धता, अर्श, वा, अर्शोयदर्बुद (पलियस) से मुद्रिक पेशी स्फिङ्क्टर, शिथिल होने पर इस रोग का आक्रमण होता है, पहले श्लैष्मिक झिल्ली का एक विषम अङ्कुर के तुल्य आकार दिखलाई पड़ता है, क्रम से जब वह अधिक लटकने लगती है, तब नलाकार शोथ के तुल्य दिखलाई पड़ती है, धीरे २ जितना पुरातन होता है, उसके अन्दर की नलियों में रक्ताधिक्य की वृद्धि होने से गुदभ्रंश में क्षत हो जाता है। धीरे २ वह गलित क्षत (गैंग्रिन) में परिणित हो जाता है।

चिकित्सा।

अन्त्र बाहर होकर पक जावे, तो उस पाक को खोलकर उसी स्थान में बैठाने की चेष्टा करै, थोड़े दिन से झूलने लगें तो उसमें वैसलीन, मालिश कर धीरे २ दबाकर उसको प्रवेश करै, अधिक दिन हो जाने पर, अन्त्र में १० मिनट तक पकड़ कर एक जोर लगाकर दबा देवें, अथवा, एक अंगुलि मलाशय के अन्दर प्रविष्ट करके नाड़ी से ढकेल देवे, इससे भी कार्य सिद्ध न होवै, और निकले हुए अंश में प्रदाह दिखलाई देवे, तो उसके ऊपर एक बरफ की थैली (आइसबेग) रक्खे, उसके बाद उसको यथा स्थान में बैठाने की कोशिश करै, इससे भी कार्य को सिद्ध न होवे, और निकले हुए अंश में पूति मांस (श्लफ) हो जावे, तो उसको काट कर अलग कर देवे, यदि पेशिक स्तर बाहर हुआ होवे, तो उसमें अस्त्र प्रयोग नहीं करना चाहिये। अस्त्र प्रयोग करने पर विटप प्रदेश (पेरिनियम) में आघात लगने की सम्भावना है। इसके बाद कटि को खींचकर बांध देवे, और एक गद्दी (पेड) और T बन्धन स्थापित करै। रोगी प्रति दिन प्रातः काल में मल त्याग न करके रात्रि में करै, और मल त्याग करने के समय एक करवट, आगा, चित हो कर लेट जावे।

इसके बाद, संकोचकलोशन, सलफोट आफ आयरन, प्रयोग करे। इस समय मृदु विरेचन से रोगी का मल खूब पतला कर निकालें, इन उपायों से कार्य सिद्ध न होनेपर लिगेचर, (तन्तु बन्धन) अथवा, विद्युतद्वार कर्म (गैलवनों काटरी,) से श्लैष्मिक झिल्ली जला देवे, इससे प्रदाह होने पर झिल्ली मलाशय के गात्र में चिपट जाती है।

अर्श पीड़ा Hoemorrhoids, or Piles

गुदा द्वार के अन्दर शोणित नालियों के विस्फारण से उसका भीतर, अथवा, किनारा फूल जावे, तो उसको अर्श (पाइल्स) कहते हैं।

कारण

उत्तेजक अन्न पान, विलास, यकृत का कर्कशत्व (किरोसिस) हृदय की पीड़ा आदि, इन कारणों से गुह्य नालियों की शिराओं में रक्त अटक जावें, तो इसको अर्श का पूर्व प्रवर्तक कारण कहते है। कोष्ठरोध, मलमूत्र त्यागाकरने के समय अधिक जोर लगाकर मल निकालना, उदर के अन्दर किसी प्रकार का अर्बुद, गर्भ, मलाशय का अवरोध (स्ट्रिक्चर) आदि इसके उत्तेजक कारण है।

प्रकार भेद

साधारण रीति से अर्श रोग तीन प्रकार का होता है।। वाह्यार्श, अन्तरार्श, मिश्रार्श।

१—जिस अर्श में वलियाँ मुद्रिकपेशी (स्फिङ्क्टर) के बाहर होवें, और त्वचा से ढकी रहें तो उसको 'बाह्यार्श" कहते है।

२—जिसमें वलियां मुद्रिक पेशी (स्फिङ्क्टर) के भीतर होवें, और जिससे रक्त निकले उसका नाम "अंतरार्श" है।

३—जिसमें वलियों का कुछ अंश त्वचा से, और कुछ अंश श्लैष्मिन झिल्ली से ढका रहे। उसको; "मिश्रार्श" कहते हैं।

चिकित्सा

अर्श की चिकित्सा दो प्रकार की है, १एक—प्रशामक, दूसरी-मूलोत्पाटक। जिन उपायों से बिलकुल पीड़ा, शान्त हो जावे, और गुह्यनालियों में रक्त कम हो जावे। इसको "प्रशामक" चिकित्सा कहते हैं। पहले मृदु विरेचन से कोष्ठरोध को दूर करे, उपयुक्त व्यायाम से, यकृत के कार्य की वृद्धि करना चाहिये, रक्त स्राव होने पर, टिंचर

हेमोमेलिस, अथवा, टिञ्चरग्लील विशेष हितकारी है। वलियों को साफ रखना चाहिये, टानिक ऐसिड का मलहम, अथवा लोशन प्रयोग करै। अर्श में प्रदाह होवै, तो कटी को ऊंचा करके लिटावे, उस अर्श के ऊपर वरफ की थैली, (आइसवेग) रक्खें। अ-थवा मलाशय के अन्दर में मार्फिया (अफीम सत्) की गुह्य वर्ति (सपोजिटरी) रक्खें।

मूलोत्पाटक-अस्त्र की सहायता से अर्श का मूलोत्पाटन किया जा सका हैं। प्रशामक उपाय से कार्य सिद्धि न होवै, तब यह क्रिया करनी चाहिये, मलाशय में अ, वरोध कर्कशव्रण, (कैन्सर) पौरुष ग्रन्थि की विवृद्धि, जरायु, मूत्राशय, और, यकृत आदि की पीड़ा, अथवा, गर्भ से अर्श होवै, तब अस्त्र प्रयोग नहीं करना चाहिये।

भगंदर।

Fistulainano.

यह एक प्रकार का नाड़ी व्रण है, गुदा के पास में उत्पन्न होता है। भग-न्दर तीन प्रकार का हैं। (१) सम्पूर्ण (Complete) इनमें नाड़ी व्रण का एक मुख मलाशय में और दूसरा त्वचा के बाहर में खुलता है।

(२) निर्मुख वाह्य भगन्दर (Blindexternal Fistula) इसमें एक मुख केवल त्वचा के वाहर होता है। दूसरा मुख वन्द रहता हैं।

(३) निर्मुख अभ्यन्तरीण (Blind Internal) इसका एक मुख मलाशय में खुल जाता है। दूसरा मुख बन्द रहता है।

कारण

गुद ककुंदर मध्य वर्ति विद्रधि (इस्कियोरेक्टल एवसेस) फट जावै, तो भगन्दर हो जाता है। उस फोड़े का मुख जिस दिशा में बाहर होता है। भगन्दर उसी तरह मूर्ति धारण करता है, मलाशय में अवरोध होने से भी भगन्दर देखा जाता हैं, यक्ष्मा ग्रस्त रोगियों के भगन्दर देखा जाता हैं।

लक्षण

चित्त में बेचैनी, पीड़ा, मलत्याग, और भ्रमण करने के समय उसकी विशेष वृद्धि देखी जाती है। मवाद, अथवा, मवाद वाले पदार्थों का स्राव कभी २ मल का निकलना समय २ पर यातना की वृद्धि हो जाती हैं।।

निर्णय

सम्पूर्ण भगन्दर सहज में ही निश्चत हो सकते है। इसमें व्रण के भीतर एक सलाई प्रवेश करै, और मलाशय के भीतर अंगुल प्रविष्ट करै, शलाका का दूसरा मुख छुआ जा सक्ता हैं, निर्मुख बाह्य भगन्दर का भी निरूपण सहज में हो जाता है, उसमें बाहर की तरफ से शलाका प्रविष्ट की जा सक्ती है, मलाशय के भीतर शलाका का मुख छुआ नही जा सक्ता हैं। निर्मुख अभ्यन्तरीण भगन्दर का निर्णय करना कठिन हैं।

विशेष विधि

यह रोग अस्त्र साध्य हैं, समय २ पर भगन्दर अपने से ही अच्छा हो जाता हैं, किन्तु प्रायः ऐसा देखा नहीं जाता है। इसमें अस्त्र प्रयोग करने के पहले वक्षःस्थल की परीक्षा कर लेनी चाहिये। उसमें ट्यूबार्कल (यक्ष्मपिड़िका) के लक्षण दिखलाई देवै। तो अस्त्र प्रयोग न करैं, उसके साथ साथ मलाशय का अवरोध, कर्कशव्रण (केन्सर) अथवा मूत्र में शुक्र पदार्थ (एलब्यूमन) निकलता होवे, तब भी अस्त्र प्रयोग नही करना चाहिये।

अस्त्र प्रयोग

भगन्दर के भीतर से एक एषणी यन्त्र (डाइरेक्टर) कोष्ठ के भीतर प्रवेश करै, उसके बाद, उस ऐषणी यंत्र में छिन्छूरी शस्त्र प्रविष्ट कर के उससे बाहर स्फिंक्टर का, सेतु (ब्रिज) काट देवे, मुख को छोड़ कर भगन्दर की एक शाखा ऊपर को गई होवे, तो उसका निर्णय करके उसी तरह छेदन करना चाहिये, उसके बाद आइडोफार्म वाली रुई से भगन्दर को भर देवै, और उसके ऊपर T के आकार की पट्टी बांध देवै, अस्त्रोपचार के बाद थोड़ी २ मात्रा में अफीम खिलावै, रोगी का कोष्ट चार, पांच, दिन तक बंद रक्खे, एरण्डतेल, अथवा पिचकारी से उसके मलाशय को साफ २ कर देवै, प्रतिदिन, आइडोफार्म रुई से नाड़ी व्रण को भर दिया करैं।



मलाशय का अवरोध

प्रकार-मलाशय का अवरोध दो प्रकारका होता है, एक-साधारण, दूसरा-दूषित (मैलिगनेण्ट) पहले साधारण अवरोध का वर्णन किया जाता है।

कारण

मलाशय में किसी प्रकार का प्रदाह होवै। उस प्रदाह से तान्तव संकोचन, सामान्य उपदंशिक, अथवा-आमाशय की पीड़ा जो पैदा हुआ क्षत अच्छा होकर कड़ा पड़ जावै। अन्त्र में अस्त्र प्रयोग करने पर, अथवा कोई चोट लग जाने पर मलाशय में साधारण अवरोध होता है।

लक्षण

मल त्याग में कष्ट और यातना, मलावरोध, उसके बाद धीरे २ कोष्ठ बद्धता, और उदर रोग देखा जाता है, मल द्वार के निकट अवरोध (स्ट्रिकचर) होने पर फीता के समान चपटा बारीक कमल निकलता है। उससे क्षतमें स्राव होने लगता है, सदा मलत्याग की इच्छा रहती है, किन्तु मल स्राव, पूय आदि नहीं होता है, जोर लगाने पर अपान वायु और स्राव निकलता है, अवरोध दृढ होने पर, अथवा क्षत युक्त होने पर मल द्वार के समीप में अनेक समय क्षत हो जाता है। उससे रोगी धीरे २ दुबला, पतला, हो जाता है, अन्त में, औदर्य कला प्रदाह, और अन्त्रावरोध से मत्युतक हो जाती है। अवरोध दृढ होने पर उसके मध्य में अंगुलि प्रवेश न करें। और भी कुछ न प्रवेश करे उसमें आघात लगने से दारुण विपत्ति होने की सम्भावना है।

चिकित्सा

धीरे २ नाड़ी प्रवेश कर अवरोध को दूर करे, पहले पतली नाड़ी, उसके बाद उससे कुछ मोटी, उसके बाद मोटी, उसके बाद बहुत मोटी नाड़ी प्रवेश करे, मल द्वार को फैलावै। अवरोध अत्यन्त दृढ़ होने पर समय २ पर मल द्वारके अन्दर नाड़ी बांधकर रख छोड़े।

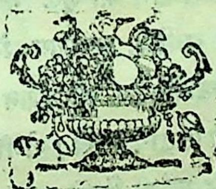
भगन्दर होनेसे गुह्यांश में बहुत से छेद हो जाते हैं। उस समय अस्त्र से अवरोधको चीर देना चाहिये, पहले एक अंगुलि मल द्वारके अन्दर प्रवेश करै, उस अंगुलिके ऊपरसे छुरी चलावे, और मुद्रिक पेशी (स्फिङ्कटर) को चीर देवै, अस्त्र प्रयोग के बाद आइडोफार्म की वत्ती उसके अन्दर भरदेवै, और जिससे मल द्वार फिर संकुचित न होवै, इस लिये प्रति दिन नाड़ी प्रवेश करना चहिये।

दूषित अवरोध

इसका दूसरा नाम 'कैन्सरसट्रिकचर" है। इस प्रकार का अवरोधअधिकतर कर्कश व्रण (केन्सर) से होता है, इसका सम्पूर्ण लक्षण उतना स्पष्ट नहीं है, पहले २ अजीर्ण व, अध्मान देखा जाता है, किन्तु मलाशय के साथ इसका कोई संस्रव देखा नहीं जाता है, क्रम से मलद्वार में एक प्रकार की यातना होती है, और पाखाना फिरते समय दर्द होता है, मल में खून की लकीर दिखलाई पड़ती है, धीरे २ बहुत कष्टसे पाखाना निकलता है, अन्त में वह बन्द हो जाता है, और लक्षण साधारण अवरोध के तुल्य हैं।

प्रकृति

यह पीड़ा अस्त्र साध्य है, रोगी की पहली अवस्था में अस्त्र प्रयोग करना चाहिये। यदि रोगी का शरीर बहुत दुबला होवे, तो अस्त्र प्रयोग नहीं करना चहिये। अस्त्र प्रयोग से कर्कश व्रणों (कैन्सर) को छील देवै, इससे अनेक समय सफलता मिलती है, अस्त्र प्रयोग असंभव अथवा, हानि कारक मालूम होवे, तो औषधि प्रयोग से पीडा को शान्त करने की चेष्टा करें, बीच २ में हलके जुलाब से रोगी के कोष्ठ की कठिनता को दूर करे, आहार की सुव्यवस्था करें, और पीड़ित स्थान पर अफीम सत और, गुह्यवर्ती स्थापन कर, उसकी यातना को दूर करना चाहिये।



मूत्र यंत्र समुदाय, पीड़ा प्रकरण

वृक्क प्रदाह Nephritis

प्रकृति-वृक्क में जो प्रदाह होता है। उसको, निफ्राइटिस, कहते हैं। मूत्राशय, मूत्र-नाली, अथवा, पौरुषग्रन्थि (प्रोस्टेटग्लेन्ड) में कोई पीड़ा, अथवा वृक्क के वस्ति गह्वर (पेलविस) में पथरी अटक जावै। तो वृक्क में प्रदाह होता है। यह रोग अधिकतर दो प्रकार का देखा जाता है। १—अभिदोषज वृक्क वस्तु प्रदाह (सिम्पल इन्टरष्टिशिएल,) २—पूयज वृक्कप्रदाह, सप्यूरेटिव, अथवा, अभिसङ्गज प्रदाह (सेप्टिक निफ्राइटिस) प्रथम प्रकार के लक्षण साफ २ मालूम नहीं होते हैं। रोगी का शरीर धीरे २ क्षीण होने लगता है। अधिक मात्रा में मूत्र निकलता है। पहली अवस्था में शुक्ल पदार्थ (Albumen) मूत्र में नहीं निकलता है। अथवा किसी २ स्थल में उसका अस्तित्व कम मात्रा में देखा जाता है। बाद को धीरे २ उसका परिमाण बढ़ जाता है। वृक्क प्रदाह के साथ, मूत्राशय और मूत्रनाली की पीड़ा संयुक्त रहने से अनेक समय में मूल पीड़ा का निश्चय करना कठिन हो जाता है, क्षुधा कम हो जाती है। अथवा बिल्कुल क्षुधा नहीं रहती है। मल से युक्त जीभ, वमन की इच्छा वमन, रात्रि में शरीर के ताप की वृद्धि, प्यास, दुबला शरीर, यह अवस्था कई मास तक रहती हैं। इसके बाद ये सब लक्षण विलीन हो जाते हैं। अथवा, बढ़ कर रोगी के जीवन को नष्ट कर देते हैं।

चिकित्सा,

रोग के कारण को दूर करने से रोग का मूल नष्ट हो जाता हैं। रोगी को सब प्रकार की उत्तेजना से दूर रखना चाहिये, मूत्राशय में मूत्र न सड़ जावै। इस विषय में दृष्टि रखना चाहिये। इसलिये, एन्टीसेप्टिक सोल्यूशन (द्रव) से मूत्राशय को धोना चाहिये। रोगी को, चारपाई पर ही लिटाये रक्खें। रोगीको पतला अनुत्तेजक आहार देवें। और कमर पर गरम फुलालैन और खाली सिंगी का (ड्राई कप) प्रयोग करें।

अभिषंगज वृक्क दाह (सेप्टिक निफ्राइटिस)

वृक्क के, वस्ति गह्वर (पेलविस) और उपादान में पूय होवै। तो उसको सेप्टिक निफ्राइटिस, कहते हैं। अथवा, 'सप्यूरेटिव' कहते हैं। इन दोनों की प्रकृति एक सी है। मूत्राधार आदि किसी यंत्र में पुरातन पीड़ा होवै; इसलिये मूत्राशय में मूत्र का पचना और वियोजन, होता है, ऐसा वृक्क प्रदाह होता हैं।

लक्षण,

पहले शरीर कांपने लगता है, फिर ज्वर आजाता है, पसीना निकलता है। जीभ सूख जाती है, और लाल हो जाती है, दांतों में मल अधिक लगा हुआ दिखलाई देता है, क्षुधा कम हो जाती है, साथ २ वमन की इच्छा, वमन, अतिसार दिखलाई देता है, रोगी आंत्रिक ज्वर के लक्षणों से आक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मूत्र में पूय मिला रहता है, कभी २ उसमें रक्त दिखलाई देता है।

चिकित्सा,

इस रोग की चिकित्सा में अधिकतर सफलता नहीं होती है। तब भी साधारण वृक्क प्रदाह के तुल्य इसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

वृक्काश्मरी Renelcolcule

अश्मरी– वृक्क के मध्य में अश्मरी होवे, तो उसकी वृक्काश्मरी (रिनैल कैल क्यूलाई) कहते हैं। अति क्षुद्रावस्था में यह सब पथरी, मूत्रनाली (गवीनी) से मूत्र शय (ब्लैडर) में प्रविष्ट हो सकती है। अथवा मूत्र के साथ निकल जाती है इस प्रकार की पथरी एक अथवा, अनेक स्थान में मिल सकती है, इससे वृक्क में प्रदाह होती हैं, और मूत्र नाली में रुक जाता है, उस समय वृक्क फैल जाता है।

लक्षण,

अधिकांश में इसका कोई लक्षण जाना नहीं जाता है, पथरी का आयतन खूब बढ़ जानेपर भी अनेक समय कोई लक्षण प्रकाशित नहीं होता है। इसीलिये साधारण रीति से जो लक्षण प्रकाशित होते हैं। उनके मध्य में, तीन; अथवा, चार लिखे जाते हैं, यातना, अण्डकोष का प्रत्याकर्षण, गाढ़ा २ मूत्र त्याग और मूत्र में मवाद, अथवा, रक्त, वा, छोटे २ कठिन पदार्थ का (Crystal) अस्तित्व, परिश्रम के बाद यातना बढ़ जाती है, एक तरफ के वृक्क में पथरी होने पर, एक तरफ, और दोनों वृक्कों को आक्रान्त होने पर, दोनों तरफ पीड़ा होती है व्यथा वृक्क स्थान से, पीछे कमर में और सम्मुख वंक्षण की ओर होती हैं। पथरी वृक्क से निकलकर मूत्रनाली से चलो आने पर जो व्यथा होती हैं। उसको वृक्क शूल (रिनैल कोलिक) कहते हैं।

वृक्क शूल

इसमें असहनीय पीड़ा होती है, यह व्यथा रुक २ कर होती है, वंक्षण (जंघांसा) अण्डकोष, और, उरुदेश के सामने दौड़ती है वमन की इच्छा, वमन, अचेतन

अधिक स्वेद, मूत्र में रक्त और यूरेट (मूत्रसिकता) दिखलाई पड़ता है, शरीर का ताप बढ़ता नहीं हैं, समय २ पर कम होकर अस्वाभाविक हो जाता हैं, कई घंटा से कई दिन तक रह कर सम्पूर्ण लक्षण अदृश्य हो जाते हैं। जब मूत्र नाली के निम्न प्रान्त से मूत्राशय में पथरी गिर जाती हैं, तब शूल व्यथा एक बारगी शान्त हो जाती हैं।

अश्मरी जन्य मूत्र निरोध (कैल क्यूलस एन्यूरिया)

पथरी से मूत्र नाली, अथवा, वृक्क का वस्तिगह्वर, आवद्ध हो जाने पर मूत्र वृक्क से नहीं निकल सकता हैं मूत्र के इस अवरोध की, कैल् क्यू लस् एन्यूरिया, नाम से कहते हैं, । इसमें शूल के तुल्य व्यथा और भी बहुत से लक्षण प्रकाशित होते हैं।

चिकित्सा

पथरी दिखाई देनेपर वृक्क को चीर कर उसको बाहर निकाल देवें। वृक्क में पथरी न मिलने पर। उसके उस छेद के पथ में और मूत्र नाली में एक शलाका प्रवेश कर देवें, मूत्र नाली में पथरी होने पर, नाली को चीर कर बाहर निकाल देवें, वृक्क शूल होने पर, उष्ण स्राव, उष्ण स्वेद और अफीम, अथवा; अफीम सत (मार्फिया) काइंजेक्शन करें, कैल क्यूलस एन्यूरिया, होने पर, अवरोधज पथरी को चीरकर निकालें।

मूत्राशय प्रदाह (Cystitis)

कारण—मूत्राशय का प्रदाह को, सिष्टाइटिस, कहते हैं, यह दो प्रकार का होता है, एक, तरुण Acute दूसरा पुरातन Chronic पहले तरुण प्रदाह का वर्णन किया जाता हैं, गठिया वायु से पीड़ित रोगी के ठंडक लगने पर मूत्राशय प्रदाह होता है, किसी प्रकार से पेट के तले में चोट लगने पर, अथवा, उरु के मध्य में किसी प्रकार का अस्त्रोपचार करने के बाद, अथवा, मूत्राशय में किसी आगन्तुक पदार्थ के होने पर इसमें प्रदाह होता है, सुजाक में उस उपद्रव रूप से अनेक समय में यह पीड़ा दिखाई देती, है; कैन्थाराइडिस के तुल्य उग्र विष पदार्थ किसी कारण से शरीर में प्रविष्ट हो जावे, तो मूत्राशय में प्रदाह होता है।

लक्षण,

विटप से गुदातक सींवन (पेरिनियम) और नाभ्यधोवर्ती (हाइपोगेस्ट्रियम) प्रदेश में वेदना, और मूत्राशय में उत्कट उग्रता, बार २ पेशाब करने की इच्छा; इसमें

दारुण यातना, मूत्र बूंद बूंद होकर निकलता है, मूत्राशय में मूत्र जमने नहीं पाता है, सामान्य परिमाण में जैसा जमता हैं, वैसा ही जोर लगाने से निकल जाता हैं, मूत्र में मवाद, और, रक्त मिला रहता हैं। वह कीटाणु (वैकटिरिया) से युक्त रहता है, पहले ज्वर होकर बहुत जल्दी (आन्त्रिक ज्वर, टायफाइड) में परिणित हो जाता है, मूत्राशय में मूत्र जमने पर वेदना बढ़ जाती है।

चिकित्सा

यथा सम्भव जान कर पहले कारण को दूर करे, मूत्राशय के अन्दर पथरी का टुकड़ा रह जाय, तो बड़ी २ कैथिटर (शलाका) से उसको निकाले, जो बाहर न निकाली जा सके। तो उसका चूर्ण कर देवें, अथवा; विटप से गुदा तक सीवन, पेरिनियम की मध्य रेखा में एक छेद करके मूत्राशय को खोल देवे, और अच्छी तरह से धो देवे, कोई शलाका अटक जावे, उसको उसी समय निकाल लेवें, प्रति प्रातः काल में और सायंकाल में उष्णस्वेद, और पेरिनियम में जोंक लगावें, आधा ग्रेन की मात्रा में, माफिया की गुह्यवर्ती (सापोजिटरी) मलाशय में रक्खे, और, सैलि सिलेट आफ सोडा १० ग्रेन, सैलेल (१० ग्रेन) यूयोट्रापिन (५ ग्रेन) और, हाइयोसायेमस।

यदि मूत्रमें अधिक अम्लता होवे; तो मूत्रकृच्छको दूर करनेके अधिक मात्रामें क्षारीय द्रव्य देवे, सब प्रकार के रोगी को उत्तेजनासे दूर करना चाहिये, इस समयमें दुग्ध पथ्य हैं, गरम जल से मूत्राशय को प्रति दिन धोवे, मूत्र का वियोजन (Decomposition) होवे, तो बोरिक एसिड सैलल, प्रभृति मृदु वचन विरोधी लोशनों से उसको धोवे, इस भाँति धोने पर यदि मूत्राशय की उग्रता बढ़ जावे तो पीड़ा की कठोर अवस्था में, विटप से गुदा तक सींवन (पेरिनियम) में एक छेद करके मूत्राशय को धोवे।

पुरातन मूत्राशय प्रदाह (Chroniccystitis)

कारण—तरुण मूत्राशय प्रदाह की अपेक्षा पुरातन मूत्राशय प्रदाह बहुत साधारण होता हैं। यह अनेक स्थल में देखा जाता हैं, पुरातन प्रकृति और मृदु होने पर मूत्राशय का कैटार नाम से कहा जाता हैं। अनेक समय में यह तरुण प्रकार के परिणाम फल स्वरूप में उत्पन्न होता है। अथवा यह पहले से ही पुरातन भाव को धारण कर लेता है, इस अवस्था में पथरी, अथवा, कोई आगन्तुक पदार्थ, अथवा, इसका कोई नूतन भावान्तर, कारण रूप से कार्य करता हैं। सुजाक के दोष से मूत्राशय के दूषित होने पर, अथवा इसका पक्षघात, या, अति विस्फार होने पर भी मूत्राशय में पुरातन प्रदाह हो सकता है, अथवा कोई पत्थर विर दूषित यंत्र के संस्पर्श से भी यह

उत्पन्न हो सकता हैं, कभी २ निकट के किसी यंत्र से प्रदाह मूत्राशय में विस्तृत होकर उसका प्रदाह पैदा हो जाता है। इसके बहुत से लक्षण तरुण प्रदाह के समान ही है इसलिये उसकी अपेक्षा बहुत मृदु है।

चिकित्सा ।

सब से पहले कारण को दूर करना चाहिये, जैसे मूत्राशय में, पथरी, अवरोध (स्ट्रिकचर) अथवा, अन्य कोई दोष होवे, तो पहले उसका प्रतिकार करे, ऐसा न हो सकने पर जैसे पीड़ा शान्त होवे, वैसा करना चाहिये, रोगी को अनुत्तेजक आहार देवे, समय२ केवल दूध ही पिलावे। सुरा, एक वार भी न देवे, आभ्यन्तर प्रयोग के लिये, बुक्कू यूवा अर्शाई, कोपेवा, बाल सम, सैलेल, और, क्लोरेटआफ पोटास, देना चाहिये, मूत्र के साथ रक्त के तुल्य गाढ़ा श्लेष्मा निकले, तो पूर्वोक्त औषधि से विशेष लाभ होता है।

मूत्र में क्षार अधिक होने पर, वेञ्जाइ एसिड: अच्छा हैं, स्थानिक चिकित्सा के स्वरूप में प्रति दिने मूत्राशय को प्रातः काल और सायंकाल एन्टीसेस्टिक सोल्यूशन से धोवें। जसे बोरिक एसिड (१ औंस में २० ग्रेन) नाइट्रिक एसिड करोसिव सल्ली मेट कुनेन, (१ औंस में २ ग्रेन) से धोना चाहिये, रोगी जितना गरम जल सह सकें। उतने गरम जल से स्वेद देवें, तो बहुत लाभ होता है, यंत्र आदि प्रयोग करने के पहले मूत्राशय आदि को अच्छी तरह शुद्ध कर लेना चाहिये।

अश्मरी.

Colculus or soonte in the Blodder.

लक्षण—मूत्राशय में अनेक प्रकार की पथरी उत्पन्न होती है, उनके मध्यमें जो अधिकांश में देखी जाती है, उनका यहांपर संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

(१) पित्ताश्मरी (यूरिक ऐसिड् आफ कैल्क्यूलस्) का आकार अण्डा के तुल्य होता है, और ताम्र के समान वर्ण होता है।

(२) एमोनियां जन्याश्मरी (यूरेट् आफ एमोनियम् कैलक्यूलस) का भी यही रूप है, परन्तु इसका वर्ण पतला होता है।

(३) वाताश्मरी (अक्जैलेट आफ लाइम) अथवा कणमयी अश्मरी (मालबेरी-कैलक्यूलस) का आकार देखने में तूत के फल के समान होता है, और बराबर नहीं होता हैं, वर्ण लाल अथवा काला होता है, और बड़ी कड़ी होता हैं।

(४) कफाश्मरी (फास्फेटिककैलक्यूलस) अविमिश्रित रूप में बहुत कम देखी जाती है।

अवस्था भेद।

बाल्य अवस्था से लेकर वृद्ध अवस्था तक पथरी मूत्राशय में उत्पन्न हो सकती है, परन्तु सामान्यतया यह पचास व सत्तर वर्ष की आयु के मध्य में अधिक देखी जाती है, और दो वर्ष से छः वर्ष की आयु के मध्य में उसकी अपेक्षा कम देखी जाती है, और चौबीस वर्ष से छत्तीस वर्ष की आयु के मध्य में अधिकतर उत्पन्न नहीं होती है, पुरुष अथवा स्त्री, सबके मूत्राशय में अश्मरी उत्पन्न हो सकती है, परन्तु स्त्री की अपेक्षा पुरुषों के अधिक अश्मरी होती है, दीन हीन बालक बालिकाओं के और वृद्धों की पौरुष ग्रन्थि के बढ़ने पर, और सन्धिवात (गाउट) होनेपर अश्मरी होने की विशेष सम्भावना है।

अश्मरी का कारण।

सब स्थल में इसकी उत्पत्ति का कारण ठीक जाना नहीं जा सकता है, भारत-वर्ष के उत्तर पश्चिम प्रदेश में, और इंगलैण्ड में नरयूच के चारों तरफ जो रहते हैं उनके पथरी अधिक तर होती है, खाद्य और परिपाक के दोष से मूत्र में अधिक मात्रासे यूरेट जम जावे, और अधिक मात्रा में सुरापान करने से अथवा अधिक परिमाण में क्षारीय पदार्थों के उपयोग करने से, व्यायाम के न करने से, पथरी उत्पन्न हो जाती है, ये इसके प्रवर्त्तक कारण है, पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि से मूत्रका अवरोध बालकों के मूत्रमार्ग की संकीर्णता, और मूत्राशय में किसी आगन्तुक पदार्थ का सन्निवेश ये रोग के उत्तेजक कारण हैं।

परिणाम फल।

अश्मरी से मूत्राशय अधिक परिमाण मे विस्फारित हो जानेपर फट भी जाता है, अपेक्षा करने पर वस्ति प्रदाह (सिष्टाईटिस) देखी जाती है, समय २ वही प्रदाह मूत्रवहा नाली से वृक्क तक फैल जाती हैं।

लक्षण।

इसके तीन प्रधान लक्षण होते हैं (१) यातना (२) क्षण २ में पेशाब करने की इच्छा (३) मूत्र के साथ रक्त का निकलना।

यातना के समय में शिश्न के अग्र भाग तक टन् २ शब्द होता है, और पेशाब करने के समय यातना अत्यन्त बढ़ जाती है। मार्ग चलने से घोड़े पर सवारी करने से, अथवा रेलगाड़ी आदि में भ्रमण करने के बाद यातना बढ़ जाती हैं, और रोगी रात्रिके समय में जिस समय स्थिर भाव से शय्या पर शयन करता है, उस समय यातना बहुत

ही कम होती हैं। पथरी मूत्राशय से मूत्रमार्ग में प्रविष्ट हो जावे, तो पेशाब करने के समय में मूत्र सहसा रुक जाता हैं, वस्ति प्रदाह (सिष्टाइटिस) होने से मूत्र पूय और श्लेष्मा मिश्रित हो जाता है, युवा पुरुष के अर्श और बालकों के गुदभ्रंश Prolapsus recti रोग होते हुए देखे जाते हैं। कभी २ अन्त्र वृद्धि भी देखी जाती है।

निर्णय

केवल मूत्रनाली में शलाका डालने से ही रोग का ठीक निर्णय हो सकता है। इस कार्य के लिये बहुत सी शलाकायें व्यवहार में लाई जाती है। उनमें से सबसे अच्छी टामसन महोदय की शलाका है, जो शलाका यन्त्र (Sound) साधारणतया सदा व्यवहार में लाया जाता हैं, वह ईस्पात लोहे की बनाई जाती है, और ठोस होती हैं। इसके आगे का भाग मोटा होता है, इसमें एक वेंट होता हैं, टामसन का शलाका यन्त्र खोखला होता है, अतः प्रयोजन होनेपर इसके भीतर मूत्र खींचा जा सकता है। 'टामसन' का शलाका यन्त्र न मिलने पर साधारण शलाका से काम निकालना चाहिये। और शलाका को गरम करके उसमें गलित स्नेह (ग्लिसरीन) मालिश करे, उसके बाद कैथेटर (Cathater) (नाड़ी यन्त्र) के तुल्य इसको मूत्राशय के अन्दर चालित करना चाहिये इसमें बल का प्रयोग निषिद्ध है, शलाका को इस चतुरता से चलावें, कि शलाका स्वयं ही गढ़ जावे, शलाका प्रवेश करने के पहिले रोगी को पलंग पर लिटावें। रोगी का मस्तक नीचा रक्खें, और नितम्ब के नीचे तकिया लगा देवें, जिससे दोनों तरफ ऊंचा हो जावे, रोगी को चित्त करके लिटावें, शलाका प्रवेश करके मूत्राशय के पीछे भाग की परीक्षा करने के लिये उसको धीरे २ सामने की तरफ चलावें, इसके बाद यथाक्रम से सम्मुख और पीछे भाग में शलाका का मुख चलावे, और मूत्राशय के तल देशकी परीक्षा करने के लिये शलाका वेंट दोनों उरुओं के बीचमें कुछ लचाकर रक्खें। मूत्राशयके अन्दर पथरी होनेपर शलाका का मुख पथरी में होकर खाकर टन् शब्द की आवाज आवेगी।

शब्द होनेपर और इससे अधिक पथरी है, कि नहीं, इसका निणय करना आवश्यक है, इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये शलाका एक बार इस तरफ, दूसरी बार उस तरफ इस भांति घुमावे अथवा एक पथरी पकड़ कर उससे खोज करें।

अस्त्र प्रयोग चिकित्सा

प्रधानतः अश्मरी की चिकित्सा अस्त्र साध्य है, इसमें तीन प्रकार का अस्त्रोपचार प्रचलित है।

१—लिथोट्रीटी (अश्मरी पोषण) Lithotrite

२—लैटरेल लियाटमी (गुदा और वृषण के मध्य में सीवन से वस्तितक चीरा देकर पथरी निकालना ।

(३) सुप्राप्यूरिक सिष्टाटमी (नाभिके नीचेसे पेट चीरकर पथरी निकालना) ।

अश्मरी पेषण (लिथोट्रीटी Lithotrite)

पहिले लिथोट्रीटी प्रक्रिया से पथरी का चूर्ण कर देते थे । फिर मूत्र के साथ उस का चूर्ण धीरे २ निकल जाता था । ऐसा शस्त्रोपचार करने परभी कभी २ कार्य सिद्ध नहीं हो होता था । और अधिक समय लगता था कभी कभी अनेक विपत्तियां भी पैदा हो जाती थीं । इसलिये इस समय इस प्रक्रिया का अवलम्बन नहीं किया जाता है कुछ काल पहिले विगलू महोदय ने इवैक्यूएटर नामक यन्त्र (पेषणी यन्त्र से पथरी को पीस कर वस्ति द्वार में जल प्रवेश करते हैं । फिर उसी जल के साथ, वा, पीछे पथरी निकल आतीं है) का निर्माण किया इससे एक बार में ही कार्य सिद्ध हो जाता है ।

अश्मरी पेषण (लिथोट्रीटी)

इस प्रक्रिया को करने के लिये पहिले रोगी को प्रस्तुत करे । जिससे शस्त्रोपचार नियमित हो सके, इसलिये रोगी को औषधि, पथ्य देकर मूत्राशयकी दाहको शान्त करे । सुविधा होने पर उसको धो भी देवे । और अस्त्र प्रयोग की पूर्व रात्रि में एक मात्रा एरण्ड तेल को पिलावे, शस्त्रोपचार के पहिले वस्ति प्रयोग करे । रोगी को गरम वस्त्रों से ढक देवै । पैरों में मोजा पहिना देवे । और चित करके रोगी को लिटा देवे, इसके बाद स्पर्श हारक औषधि का प्रयोग करे, रोगी का माथा नीचे करके रक्खे, और नितम्ब के नीचे एक तकिया लगा देवै । पीछे ऊंचा करके रक्खे । इसके बाद बोरिक ऐसिड अथवा अन्य कोई कृमिघातक द्रव (एन्टी सेप्टिक लोशन) से मूत्राशयको धोवै । और उसी द्रव को अनुमानतः ६ औंस लेकर उसके मध्य में रक्खे, इससे पथरी पकड़ने में विशेष सुविधा होती है मूत्राशय में किसी प्रकार का आघात न लगने पावै । इसके बाद लिथोट्राइट प्रवेश करै । इस विषय में टामशन की लिथोट्राइट विशेष उपयोगी है सिवियाभी महोदय के पुरातन लिथोट्राइट में एक परिवर्तन करके नवीन लिथोट्राइट बना दिया है। यह सबसे अच्छा है । लिथोट्राइट प्रवेश करने के पहिले उसको कुछ गरम कर लेना चाहिये । उसमें कोई मृदु तेल मालिश कर देवे । इसमें दो फल होते हैं । एक पुरुष के नाम से दूसरी स्त्री के नाम से प्रसिद्ध होता है । दोनों फल एक में मिला देने पर लिथोट्राइट का मुख नल के आकार का हो जाता हैं । फल मिला कर मूत्र के मार्ग से धीरे २ मूत्राशय में प्रवेश करे । लिथोट्राइट का मुख मूत्राशय में प्रविष्ट हो जाने पर उ-

सको इधर उधर चला कर के पथरी को पकड़ लेवै । यन्त्र के शरीर में एक पेच है उसको दबाये रखने से दोनों फलों में फांक हो जाती है । जिससे पथरी को पकड़ कर बुद्धि मानी से पथरी का चूर्ण उसी से कर देवै । एक बार में पथरी का चूर्ण न होवे । दो बार में अथवा तीन बार में चूर्ण करे । इसके बाद इवैक्यूपेटर से उस चूर्ण को बाहर निकाल देवै । इवैक्यूपेटर व्यवहार करने के बाद कोई शलाका (साइन्ड) चलाने की आवश्यकता नहीं । इस अस्त्रोपचार में रक्त पात की सम्भावना है । अतः दक्ष चिकित्सक इस काय को करे। शोणित स्राव होने पर उसी समय उसका प्रतीकार करे इस अस्त्रोपचार मे डेढ़ घंटा अथवा कभी २ इससे अधिक भी समय लग जाता है ।

परवर्ती चिकित्सा

अस्त्रोपचार समाप्त होते ही रोगी को चारपाईपर लिटा देवै । और गरम वस्त्र उढ़ा देना चाहिये ।जिससे रोगी को संक्षोभ जन्य मूर्च्छा न होवै। इस बात का ध्यान रक्खे। यातना होने पर अफीम का प्रयोग करे, । परन्तु वृक्क में पीड़ा होने पर अफीम का प्रयोग न करे । उस समय नाभियन्त स्नान (हिपबाथ) विशेष उपयोगी है । इसके बाद तरल पुष्टि कर खाद्य पदार्थ सेवन करावै । शय्या पर विश्राम कराना अतीव प्रयोजनीय है। मूत्राघात होने पर समय समय पर शलाका प्रवेश करके मूत्र निकालै रोगी को एक सप्ताह तक उठने बैठने न देवै । वस्ति प्रदाह होने पर सिलवर नाइट्रेट का मृदु द्रव मूत्राशय के अन्दर प्रक्षिप्त करे ।

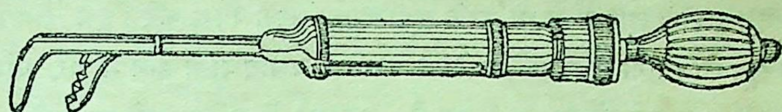
उपसर्ग

गुरु कम्प (राइगर) मूत्राघात तरुण वस्ति प्रदाह (सिष्टाइटिस) पौरुष ग्रन्थि प्रदाह (प्रोष्टेटाइटिस) स्फोट (एब्सेस) वृषण ग्रन्थि प्रदाह (अर्काइटिस) वृषण प्रदाह (एपिडिडमाईटिस) अनेक समय में उपद्रव देखे जाते हैं । कभी कभी रक्त स्राव, शिरा प्रदाह (फिलबाइटिस) होते हुये देखा जाता है ।

मृत्युका कारण

तरुण वृक्क प्रदाह (निफ्राइटिस) गवीनी मुख प्रदाह पायेलाइटिस) वस्ति प्रदाह मूत्राशय के छेद व भेद, उदर्यकला प्रदाह (पेरिटोनाइटिस) विष दूषित रक्त जन्य रोग (सैप्रिमिया) पूय मिश्रित रक्त (पाइमिया) अथवा अवसाद से रोगी की मृत्यु हो सकती है । और वृक्क में पीडा न होने पर अनेक समय किसी प्रकार की पीड़ा व, विपत्ति नहीं होती है ।

टामसन के लिथोट्राइट का चित्र

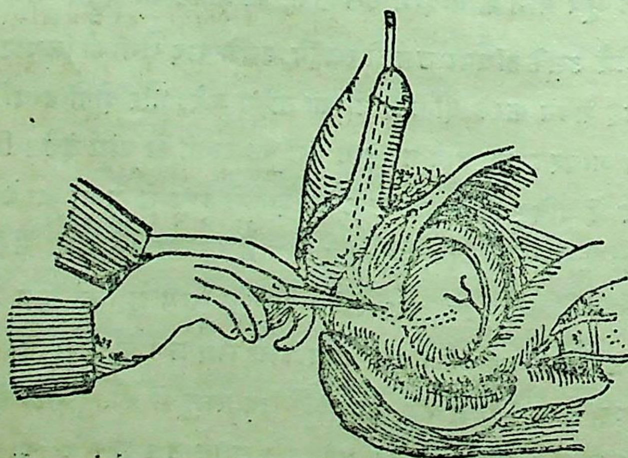


लिथाटमी Lithotomy

लिथोट्रटी से कार्य सिद्ध न होने पर लिथाटमी से पथरी निकालना चाहिये। विटप प्रदेश Perineum के भीतर का अंश अथवा Pubic प्यूविसके ऊपर का अंश काट कर मूत्राशय (ब्लैडर) से पथरी वाहर कर लेने को लिथाटमी कहते हैं। वह तीन प्रकार का होती है। १ पेरिनिपेल, २ लेटरेल ३ मिडियन साधारणतः लैटरेल लिथाटमी ही की जाती है। परन्तु आज कल इस अस्त्रोपचार का उतना अधिक आदर नहीं है। अतः इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में दो चार बातें लिखी जाती है। लियोट्रंटी प्रक्रिया करनेके लिये जो २ कार्य किया जाता है। वही प्रक्रिया इसमेंभी करै इसके वाद स्पर्श ज्ञान हारक औषधि का प्रयोग करें। विटप प्रदेश को मुण्डित करै। और एक शलाका (साउन्ड) चालित करके जान लेवै। कि पथरी है कि नहीं है। पथरी होनेपर पूर्वोक्त विधि से मूत्राशय को धोवै। इसके बाद पहिले के समान एन्टीसेप्टिक सल्यूशन (द्रव) ६ अथवा ७ औंस उसके भीतर रख देवै। लैट रेल लिथाटमी में तीन यन्त्र व्यवहृत होते हैं। एक छुरिका एकष्टाफ, और एक जुड़ा हुआ फर्सेप्स (संदेश) आगे पृष्ठ में इनके चित्र दिये जावेंगे। ष्टाफ, का आकार नल के समान होता है। यह टेढ़ा और इसके बाई तरफ में खाने कटें होते हैं। रोगी के मूत्र मार्ग के अन्दरमें उस ष्टाफ, को प्रविष्ट कर देवै। और सहयोगी कोई चिकित्सक जो होवै उसके हांथपर उसको रखदेवै, इसके बाद रोगीको लिथाटमीकी विधिसे शयन करावे। वह शयन करके दोनों हाथों का ऊंचा करे, और दोनों हाथों से दोनों पैरों को पकड़ लेवै। आवश्यकता होने पर हाथ पैरों का रस्सी से बांध देवै। चिकित्सक का सहयोगी मूत्रमार्ग में प्रविष्ट किये हुये ष्टाफ का दाहिने हाथ से ऊंचा करके पकड़े, और वायें हाथ से रोगी का अण्डकोष पकड़े। इस दशा में चिकित्सक रोगी के गुत देश के अन्दर में चालित कर सकुचित कर लेवै। उसी के साथ छुरिका गुह्य देश का मध्य रेखा में वाईं तरफ प्रवेश कर देवै। उस समय उसी सद्योव्रण के ऊपर के कोने में वाईं तर्जनी रखकर के ष्टाफ का खोज करे, मध्यवर्ती सब वस्तुओं को छुरिका से छेदन करके ष्टाफ के खाने में अंगुलि का नख प्रवेश करदे, उस समय इस अंगुलि का पश्चात् भाग

रोगी के बायें भाग में रहे। उस नल के ऊपर से मूत्रनाली के झिल्ली से युक्त अँश को छुरिका के आगे के भाग से स्टाफ के उस खाने के ऊपर ठेल करके रख देवे, इसके बाद उस खानेके ऊपरसे छुरिका सीधी करके मूत्राशयकी तरफ प्रवेश करे। इस समय छुरिकाको खूब सावधानी से चलावै, नहीं तो सामान्य असावधानी होने में भी, पौरुषग्रंथि और गुदा में आघात लगने की सम्भावना है। मूत्राशय में छुरिका प्रविष्ट होवै, तो उससे पौरुष ग्रन्थि प्रोस्टेट का छेद बढ़ा लेवे, उसके बाद ही बाईं तर्जनी मूत्राशय में चलित करे, और उसके मध्य में स्थित पथरी का यदि पा जावें, तो सहकारी से स्टाफ बाहर कर लेने के लिये कहें, और दक्षिण हाथ में फर्सेप्स (संदंश) लेकर बाईं तर्जनी के ऊपर से मूत्राशय के अन्दर उसको चलित करे। इसके बाद अंगुलि बाहर निकाल लेवे, उसी समय फर्सेप्सका फल खोलकर पथरीको पकड़ लेवे इसके बाद वस्ति मार्गकी अक्ष रेखा से बाईं ओर और नीचे के भाग में उस पथरी को खींचकर बाहर करे। इसके बाद फिर अंगुलि चलित कर देख लेवे, कि मूत्राशय में और अधिक पथरी हैं कि नहीं। संदेह होने पर एषणी यन्त्र (साउंड) से अनुसन्धान कर लेवें। इसके अनन्तर दो तीन बार पिचकारी से शीतल जल मूत्राशय के अन्दर प्रवेश करे। फिर सद्योव्रण के ऊपर आइडाफार्म Iodoform का चूर्ण छोड़ देवे। किसी प्रकार का बन्धन बांधने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु रोगी बालक होवे, तो उसके दोनों पैर बांध कर शय्या पर लिटा देवे। रक्त स्राव होने पर तो कटी हुई रक्त नाली को ढूंढ़ कर बांध देवे। व्रण Wound के गम्भीर अंश से रक्त निकले, तो बर्फ मिले हुये लोशन से उसको धोदेवै, और उसके मध्य में एक एयर टैम्पून अथवा पेटिकोटट्यूब नहीं प्रयोग करना चाहिये।

गृहीत अश्मरी का चित्र



परवर्ती चिकित्सा

अस्त्रोपचार के बाद रोगी को स्थिर भाव से रक्खे, उसके दोनों पैर बांध रक्खे, और विटप प्रदेश (पेरिनियम) के सद्य व्रण के सन्मुख में एक रेशम की गद्दी रक्खे, अथवा पशमीने की गद्दी रक्खे प्रतिदिन सद्य व्रण एक बार अथवा दो बार उसी नल के भीतर से धो दिया करे व्रण में अंकुर (ग्रैनूलेशन) दिखलाई देवे, तो नल को खोल लेवे। इस समय कई दिन तक विटप प्रदेश (पेरिनियम) के उस सद्योव्रण से मूत्र निकलता है। दो तीन सप्ताह के मध्य में देखते २ सद्योव्रण छोटा हो जाता है। और भर जाता है उस समय मूत्र स्वाभाविक मार्ग से निकलने लगता है। रोगी को लघु और अनुत्तेजक आहार देना चाहिये।

उपसर्गादि

लेटरेल लिथाटमी से चार विपत्तियां हो सकती हैं, १-शोणित स्राव, गुदा में सद्योव्रण, ३-शोणित गह्वर प्रदाह पेल्विक सेलूलाइटिस, ४-विपाक मूत्र वस्ति प्रदाह (सेप्टिक सिस्टाइटिस) रक्त स्राव का प्रतीकार प्रथम वर्णन कर लिया गयाहैं। छुरिका के प्रयोग के दोष से गुदा में व्रण हो जाता। व्रण अत्यन्त नीचे भाग में होवे, और उसका आयतन छोटा होवे, तो इस अवस्था में प्रायः चिकित्सा का प्रयोजन नहीं होता हैं, अपने से ही भर कर कड़ा पड़ जाता है, ऐसा न होने पर उसको सीं देवे, इससे अच्छा हो जाता है, बाकी दो उपद्रवहोने पर रोगी का जीवन संकट में पड़ जाता है।

स्त्री जाति की अश्मरी

पहिले वर्णन किया गया हैं कि स्त्रियों के मूत्राशय में पथरी होती है किन्तु पुरुष की अपेक्षा कम होती हैं। इस का कारण यह है कि स्त्रियों की मूत्र नाली अपेक्षा कृत छोटी और विस्फारण शील होती है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के पौरुष ग्रन्थि (प्रोष्टेट) नहीं होती हैं। इससे पथरी प्रायः नहीं पैदा होती है यदि पथरी उत्पन्न हो जावै तो उसके लक्षण, प्रतिकार, पुरुष जन्य अश्मरी के समान ही जानना चाहिये केवल भेद यही है। कि स्त्रियों के पथरी होने पर समय पर मूत्रातिसार हो जाता हैं।

चिकित्सा

पथरी छोटी होने पर, अंगुलि, तीन फलोंवाला विस्फारक यंत्र (डाइलेटर) अथवा सुचुंडी (ड्रेसिंग फर्सेप्स) से मूत्र मार्ग को विस्फारित कर देवे, इससे पथरी सहज में ही निकाली जाती है। पथरी का आयतन बड़ा होवे एक इंच का आयतन स्त्रियों

की पथरी का होवै बालिकाओं की पथरी का, पौन इञ्च होवै तो लिथोट्रीटी प्रक्रिया से पथरी एक बार में निकाल लेवै । इस से भी पथरी बड़ी होवै तो सुप्राप्यूरिक, लिथोटमी, से उस को बाहर निकाल देवें ।

निरुद्ध प्रकाश Stricture of the urethra

निर्वचन, पीड़ा, अभिघात, अथवा आजन्म अङ्ग विकार से मूत्रनाली, एक स्थान में अथवा अनेक स्थान में संकीर्ण हो जाती हैं। इस अवस्था को स्ट्रिकचर कहते हैं मूत्र मार्ग के अन्दर में स्थित पेशियों का आक्षेप अथवा उसकी आवरक झिल्ली में अधिक रक्त हो जाने से मूत्र नाली कुछ समय के लिये निरुद्ध हो जाती हैं ।

कारण

औपसर्गिक मेह (गनोरिया Gonarrhaoe) अथवा पुरातन सुजाक (ग्लीट Gleet) की उपेक्षा करने से मूत्र नाली के अन्दर में जो पुरातन प्रकृति का प्रदाह होता हैं उस से अधिक तर निरुद्ध प्रकाश पैदा होता हैं। उस अवस्था में मूत्र नाली की श्लैष्मिक झिल्ली प्रदाह कारक पदार्थ से परिपूर्ण हो जाती है वे सब पदार्थ परिशेष में प्रदाह युक्त होकर तान्तव विधान में परिणत हो जाते हैं और मूत्र नाली को संकीर्ण कर देते हैं । आघात, पतन, अभिघात, आदि कारणों से मूत्र नाली फट जावै उस में जो क्षत हो जाता है, वह धीरे २ अच्छा हो जावे और कड़ा पड़ जावै उस कड़ेपन से मूत्र नाली संकीर्ण हो जाती है। स्थल विशेष में कोई कारण खोज करने पर नहीं मिलता हैं बहुतों के जन्म से ही मूत्र नाली में स्ट्रिकचर देखा जाता है ।

प्रकार--मूत्र नाली का अवरोध (आर्गैनिक स्ट्रिकचर) कारणानुसार दो भागों में विभक्त हो सकता है। पूय चिकित्सा (पूयीपैथिक अभिघातक (ट्रमैटिक) और वैधानिक आकृति के अनुसार में यह पांच प्रकार का है । सरल—(लिनियर) मुद्रिका कार (एन्यूलर विषम स्वरूप) (इरेगुलर) अथवा टर्च्यूयस, ब्राइडल, वा पैकथ्रेड और ट्रानेलड । और प्रसार के अनुसार दो तरह पार्मियेबल (शलाका प्रवेशार्ह) इम्पार्मियेबल (जिस में शलाका न जा सके) प्रकृति के अनुसार में तीन प्रकार, सिम्पल (सादा (सेनसिटिव) (अति संज्ञक स्थान) किंवा, इरिटेबल रोपकारी स्थान) गठनानुसार में तीन प्रकार, संकोचन शील विकृति तन्तु (फाइब्रस) श्लक्ष्ण (इलैष्टिक) तरुणास्थि युक्त (कार्टिलेजिनल) पौरुष ग्रन्थि के भिन्न होने पर मूत्रनाली के जिस किसी स्थान में स्ट्रिकचर हो सकता हैं। साधारणतः यह मूत्र नाली के सम्मुख भाग में अधिक होते हुये देखा जाता है।

लक्षण

तरल स्राव, बार २ पेशाब करने की इच्छा, कभी २ पेशाब करने में कष्ट, मूत्र पाक से मोटी धार में बाहर निकलै अथवा मूत्र धारा निकलने के कई बूंद निकलते हैं। ये रोग के प्रारम्भिक लक्षण है। इस के बाद मूत्र की धारा क्रम से संकीर्ण हो जाती है। रोगी अतिकष्ट से बल लगाकर मूत्र को बाहर निकालता है।

इसके बाद उसकी और धारा नहीं देखी जाती हैं, परिशेष में मूत्र एक बारगी बन्द हो जाता हैं, इसको मूत्रघात कहते हैं।

निर्णय

यंत्र से मूत्र मार्ग की परीक्षा करने पर स्ट्रिकचर का ठीक निर्णय हो जाता हैं, पहिले आठ अथवा ६ नम्बर को काली ऋजु नाड़ी अथवा कैथिटर (शलाका) चला कर देखै यदि वह विना बाधा के चली जावे तो उससे मोटी शलाका प्रवेश करे उसके बाद उसकी गति रुक जाने पर रोग जानना चाहिये मेड नाली मुख (मियाटस) से छः इञ्च के मध्य में यदि नाड़ी यंत्र (बूजी) की गति रुक जावे तो उससे स्ट्रिकचर जानना चाहिये। और यदि उसका अपेक्षा दूर में नाड़ी की गति रुक जावे, तो पौरूष ग्रन्थि बढ़ी हुई जानना चाहिये, इससे स्ट्रिकचर कितनी दूर है, यह निश्चय हो जाने पर उसके भीतर से एक कोष विशिष्ट शलाका चालित करे। उसके बाद शलाका बाहर करने के स्ट्रिकचर के किसी स्थान में रुक जावे, तो शलाका का गात्र नापकर उसको स्थिर कर लेवे, इस उपाय से ठीक जाना जाता हैं, कि स्ट्रिकचर कितना बड़ा है।

प्रक्रिया

नाड़ी यंत्र अथवा शलाका की पहिले परीक्षा कर लेवै, यंत्र, स्वच्छ, चिकनी अविकृत और सब अवयव होना आवश्यकीय हैं, शलाका कमजोर होने से वह मूत्र मार्ग में टूट जाती है। इसलिये ऐसी शलाका व्यवहार ही नहीं करना चाहिये। शलाका मो- चालित करने के पहिले उसको कुछ गर्म कर लेवै, उसमें गलित स्नेह (ग्लिसरीन) मालिश कर देवे। ठंढी शलाका से रोगी को कष्ट होता है, और मूत्र नाली के अन्दर स्पर्श होने से आक्षेप हो जाता है, और सूखी शलाका सहज में प्रविष्ट नहीं होती हैं।

रोगी के मूत्र मार्ग में यदि इससे पूर्व कभी भी यंत्र प्रविष्ट नहीं किया गया होवे तो उसको लिटा कर रक्खे नहीं तो वह मूर्छित हो जावेगा दीर्घ काल के रोग में मूत्र नाली शिथिल पड़ जाती है, रोगी को एक दिवाल के सहारे से बैठा सकता है, अति धीरे और मृदुता से यंत्र को प्रविष्ट करना चाहिये।

विघ्न बाधा

शलाका चलाने के समय अनेक बाधओं की सम्भावना है। उनमें से दो अथवा तीन का वर्णन किया जावेगा। यह श्लैष्मिक झिल्ली के एक स्तर में अटक सकती है, मूत्र नाली के फर्श पर पहिले २ शलाका का अग्र भाग रक्खे। यह बाधा सहज में ही अच्छी हो जाती है, इस विधि से और त्रिकोणक स्नायु (ट्राइऐंगुलर लिगमेन्ट) के भीतर से जिस समय शलाका अग्रसर होती हैं, उस समय अवरुद्ध हो जाती है, पूर्वोक्त उपाय से यह भी बाधा शान्त हो सकती है,

शलाका किसी अप्रकृत पथ में प्रविष्ट हो जावे, (क) शलाका का बेंट मध्य रेखा स्खलित हो जावे (ख) गुदा के भीतर अगुलि डाल कर देखे। (ग) रक्त स्राव होवे (घ) मूत्र न निकले और शलाका के आगे का भाग इधर उधर स्वतन्त्रता से सञ्चालित नहो वे, यह आसानी से जानो जा सकता है।

शलाका के परिचालन से निम्न लिखित बाधायें हो सकती है, यथा, शोणित स्राव अप्रकृतपथ (False passage) स्फोट व्रण,शोथ, मूत्रातिसार, पौरुष ग्रन्थि उपाण्ड (एपिडिडिमस) अथवा मूत्राशय इन में दाह मूर्च्छा, गुरूकम्प (राइगर, मूत्र नाली प्रदाह (यूरिथ्रल फीवर) मूत्राघात, पायिमिया (रक्त में पूय के मिल जाने से रोग पैदा होता है,)।

रोगी को लिटा कर धीरे २ शलाका चालित करे। इनसे कोई बाधा नहीं होसकती है, जिसकी मूत्र नाली में पहिले २ शलाका प्रविष्ट की जाती है, उसको मूत्र नाली में प्रदाह देखो जाती है, शलाका चालन करने के बाद दो अथवा एक दिन तक गुरु कम्प के साथ प्रबल ज्वर देखा जाता है. कई दिन के बाद अधिक स्वेद निकल कर भग्न हो जाता है, वृद्धों के यह ज्वर अधिक होता है, वृक्क में पीडा होनेपर समय २ पर इस ज्वर से रोगी को मृत्यु हो जाती है, पहिले वृक्कों में कोई पीडा न होवे। तो मूत्राक्षत प्रायः नहीं होता है। पायमिया बहुत कम देखा जाता है।

चिकित्सा

निरुद्ध प्रकाश (यूरिथ्रल्स्ट्रिक्चर) पीडा की चिकित्सा प्रधानतः अस्त्र साध्य है। अधोलिखित सात प्रकार से इसकी शस्त्र चिकित्सा की जाती हैं।

(१) मृदु विस्फारण (स्लोडाइलेटेशन)

(२) द्रुत विस्फारण (रैपिड डाइलेटेशन)

(३) बल पूर्वक विस्फारण (फोर्शिबल डाइलेटेशन) (४) अन्दर से स्ट्रिकचर का छेदन (Division of the Stricture from within) इसका दूसरानाम इन्टर्नल यूरिथ्राटमी।

(५) बाहर से स्ट्रिकचर का छेदन (Division of the Stricture from without) इसका दूसरा नाम एक्सटर्नल यूरिथ्राटमी।

(६) कास्टिक से स्ट्रिकचर का ध्वंस।

(७) इलेकट्रोलिसिस (विद्युत् द्वारा फाड़ना)।

इन सात प्रकार की चिकित्साओं के मध्य में इस समय—

कास्टिक चिकित्सा और इलेक्ट्रोलिसिस (विद्युत द्वारा फाड़ना) ये दो चिकित्सायें अप्रचलित हैं। अतः यहां पर इनका वर्णन निष्प्रयोजन है। अवशिष्ट पाँच प्रकार की चिकित्सा के मध्यमें मृदु विस्फारण, अनायास साध्य और निरापद है। जिस समय अति शीघ्र मूत्र नाली विस्फारित करने की आवश्यकता हो, उस समय द्रुत विस्फारण करना चाहिये। पहिले यदि नाड़ी यन्त्र अथवा शलाका न प्रविष्ट होवे, तो उस अवस्था में तांत (कैटगट) सिल्क की बत्ती अथवा तिमिङ्गल नाम वाली मछली की अस्थि की शलाका बनाकर प्रविष्ट करे। उस समय रोगी को पेशाब करावे, मूत्र के जोर से मूत्र नाली जैसे फैले, वैसे उसी समय पतली शलाका प्रवेश कर देवे। इससे कार्य सिद्ध न होने पर रोगी को एक सप्ताह तक विश्राम करावे, और उस समयमें प्रतिदिन उष्ण स्वेद विरेचन और अहिफेन का प्रयोग करे। इसके बाद और एक बार शेष चेष्टा करके देख लेवे, चेष्टा निष्फल हो जाने पर अस्त्र प्रयोग करना चाहिये।

मृदु विस्फारण

पहिले वर्णन किया गया है कि धीरे २ मृदु भाव से विस्फारण हो सकी अपेक्षा अनायास साध्य और निरापद है। इससे रोग भी शान्त हो जाता है, और रोगी के कार्य में हानि नहीं होती है, वर्तमान काल में गम इलास्टिक की शलाका अथवा धातु की शलाका के बदले में कोमल लचने वाली काली काला और मुख में कोष विशिष्ट शलाका अधिकतर व्यवहृत होती हैं। सप्ताह में एक बार अथवा दो बार शलाका प्रवेश करे, पहिले पतली फिर मोटी शलाका क्रम से धीरे २ प्रवेश करे, मूत्र नाली में कई मिनट तक रक्खे। इन उपायों से मूत्र नाली धीरे २ क्रमशः फैल जाती है, पूर्व आयतन को फिर प्राप्त हो जाती है। मूत्र नाली जिससे फिर संकुचित न हो जावे, इसलिये शलाका प्रवेश करना रोगी को स्वयं सिखा देवे, वह पहिले सप्ताह में एक बार इसके बाद माल में दो बार अथवा तीन बार शलाका प्रवेश किया करे। ऐसा करने से स्ट्रिकचर सम्पूर्ण रीति से प्रशमित हो सकता है।

अविरत, वा, द्रुत विस्फारण

यह अत्यन्त प्रयोजनीय हैं, इसलिये (क्रोमिक) और मृदु विस्फारण से कार्य सिद्धि न होने पर अति शीघ्र विस्फारित करना आवश्यकीय है। अथवा शलाका चालन करने से रोगी के गुरु कम्प रक्त स्राव जलन (इरिटेशन) अथवा यातना होवे, तो द्रुतविस्फारण आवश्यकीय होता है। इस प्रक्रिया में एक रौप्य कैथिटर मूत्र नाली में प्रविष्ट करके चौबिस घंटा अथवा अड़तालिस घंटा तक उसके मध्य में बांध कर रक्खे, इसके बाद उसको बाहर निकाल लेवे। उसी रूप की और एक शलाका अथवा उसकी अपेक्षा बड़ी शलाका प्रविष्ट करे, ऐसा करते करते मूत्र नाली विस्फारित होकर पूर्वायतन को फिर प्राप्त हो जाती है। ष्ट्रिकचर विस्फारित करने के लिये पहिली भायुमें धातु की शलाका के बदले में गम इलाष्टिक की शलाका प्रयोग करे, इस प्रक्रिया के लिये रोगी दस पन्द्रह दिन तक चारपाई पर ही लिटाया रक्खे इसमें समय २ पर अत्यन्त यातना गुरु कम्प ज्वर मूत्रनाली में प्रदाह (यूरिथ्राइटिस) वृषण प्रदाह एपिडिडिमाइटिस) और मूत्राशय में क्षत आदि देखे जाते हैं इनका शीघ्र ही प्रतीकार करना चाहिये। केवल दर्द होने पर अफीम का सेवन करे। अथवा कोकीन के सल्यूशन से मूत्रमार्ग को धोवे और उपद्रव दिखलाई देवे तो उनकी उपर्युक्त चिकित्सा करे।

इन्टर्नेल यूरिथ्राटमी

बल पूर्वक विष्फारण करना सङ्कट जनक है। इससे मूत्रमार्ग छिल जाता है, अथवा फट जाता है। इसलिये इस तरह की चिकित्सा की प्रथा इस समय इस तरह छोड़ दी गई है। इस समय इंटर्नेल यूरिथ्राटमी सबसे अच्छी मानी जाती है। यूरिथ्राटमी अर्थात् मूत्रनाली के अन्दर से ष्ट्रिकचर के छेदने को यूरिथ्राटमी कहते हैं। एक छिरी छुरी से ष्ट्रिकचर को लम्बे २ ही छेदन कर देवे, शलाका से मूत्र मार्ग न फैलने पर इसी उपाय को करना चाहिये। इस प्रकार के छेदन के बाद क्षत स्थान स्वयं ही भर जाता है। वह कड़ा पड़ जाता है किन्तु उस कड़े पन से कोई विशेष क्षति नहीं होती है। नीचे लिखे हुये कई स्थानों में इस अस्त्रोपचार का अवलम्बन किया जाता है। (क) जो कष्ट साध्य ष्ट्रिकचर ५ अथवा ६ नम्बर की शलाका से भिन्न विस्फारित नहीं किया जा सकता है। (ख) विस्फारक यंत्र बाहर करते ही जो ष्ट्रिकचर बहुत जल्दी सिकुड़ जाते हैं। (ग) जिन स्थानों में यंत्र के चालन करने के बाद प्रायः मूत्राघात, रक्तस्राव, गुरुकम्प, मूत्रनाली में प्रदाह, अथवा अन्यान्य दुर्लक्षण प्रकाशित हो जाते हैं और मियाटस (मेह नाली के मुख से ३ अथवा ४ इञ्च के मध्य में

ष्ट्रिकचर हो जावै इन स्थानों में इन्टर्नेल यूरिथ्राटमी से विशेष उपकार देखा जाता है। यंत्र प्रयोग के प्रथम बोसपर्सेन्ट काकेन का शल्यूशन (द्रव्य) से मूत्र मार्ग की स्पर्श शक्ति का अपहरण करै। मेहनाली के मुख के निकट में ष्ट्रिकचर होवै तो जिसका आगे का भाग मोटा होवै ऐसी सीधी बिष्टूरी से उस का छेदन करै। अन्यथा टिवन साहेब का यूरिथ्राटम् नाम वाला यंत्र प्रयोग करे। इस यंत्र से यह अस्त्रोपचार बहुत अच्छी तरह किया जाता है। अण्डकोष के सम्मुख में स्थित ष्ट्रिकचर में इन्टर्नेल यूरिथ्राटमी से विशेष लाभ होता है। किन्तु अत्यन्त गम्भीर स्थान के ष्ट्रिकचर में इस अस्त्रोपचार के करने से अत्यन्त रक्त स्राव मूत्राशयिक प्रदाह, वृक्क प्रदाह (निफ्राइटिस) पायिमिया रक्त में पूय के मिलने से जो रोग होवे, प्रभृति रोग पैदा हो जाते हैं।

भिन्न भिन्न प्रक्रिया

विटप प्रदेश (पेरिनियम) में अस्त्र प्रयोग करके मूत्र नाली को उन्मुक्त कर देवे। इसको एक्सटर्नेल यूरिथ्राटमी कहते हैं। दो अवस्थाओं में इस की आवश्यकता होती है। (१) दुराग्य ष्ट्रिकचर (२) दुर्भय ष्ट्रिकचर, अर्थात् जिस ष्ट्रिकचर के भीतर से कठोर प्रयत्न करने पर भी शलाका चढ़ाई न जा सके और एक्सटर्नेल यूरिथ्राटमी की तीन भिन्न भिन्न प्रक्रियाओं को प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक साइम, कूक, और हुइल होस, सृष्टि कर गये हैं। इसलिये ये तीन अस्त्रोपचार उन्हीं के नामसे प्रसिद्ध हैं। दृढ़ उपास्थि से युक्त ष्ट्रिकचर के लिये साइम की प्रक्रिया का अवलम्बन किया जाता है। इस में एक सूक्ष्माग्र शलाका का व्यवहार किया जाता है। उस का नाम साइम का स्टाफ है। पहिले यह स्टाफ रोगी की मूत्र नाली में प्रवेश करे। शलाका का पतला मुख ष्ट्रिकचर के भीतर से मूत्राशय में जाकर उपस्थित हो जाता है और उस का मोटा अंश अवरोध के मुख के समीप में रुक जाता है। रोगी को लिथोटमी पोजीशन (हालत) से लिटावे। उस के विटप (पेरिनियम) की मध्य रेखा में और ष्ट्रिकचर के ऊपर में सवा इंच छेदा करै। इस के बाद उस व्रण के भीतर से शलाका प्रवेश करे, बायें हाथ में उसको पकड़े। और दाहिने हाथकी तर्जनी से छुरिका की धार दबाये रक्खे। उसका मुख शलाका के खाने के ऊपर ष्ट्रिकचर और मूत्राशय की तरफ में बैठा देवे और पीछे से सम्मुख भाग का ष्ट्रिकचर छेदन करे। ष्ट्रिकचर सब छेदित हो जाने पर स्टाफ का मोटा अंश ष्ट्रिकचर के भीतर से मूत्राशय के भीतर प्रवेश करे। इसके बाद २४ घंटा तक मूत्र मार्ग में कैथीटर (शलाका) प्रविष्ट रक्खे। और दो प्रक्रियायें प्रायः साइम क्रिया के समान ही हैं। ये अस्त्रोपचार अति कठिन है, विशिष्ट शल्य चिकित्सक, इस कार्य को करे।

मूत्र मार्ग का स्फोट Urinary Absess
यूरिनरी ऐबसेस

कारण लक्षण—संकीर्णता (स्ट्रिकचर) से जो रोग प्रकाशित होते हैं। अतः मूत्र नाली का फोड़ा (यूरिथल) वा मूत्र मार्ग का फोड़ा (यूरिनरी ऐबसेस) उन्हीं के मध्य में से है मूत्र मार्ग के जिस किसी स्थल में यह पैदा हो सकता है, तब भी सब से अधिक बिट। प्रदेश (पेरिनियम) में इसकी उत्पत्ति अधिक देखी जाती है। स्ट्रिकचर से उसके पीछे भाग में क्षत होने पर और मूत्र के रुक जाने पर ये हो सम्पूर्ण स्फोट (एबसेस) पैदा हो जाते हैं, मूत्र मार्ग में शलाका चलाने के दोष से अथवा पथरी के अविरुद्ध होनेसे अथवा औपसर्गिक मेह (गनोरिया) से उत्पन्न हुई प्रदाह शिश्नमूल ग्रंथि Cowpers gland तक फैल जाने पर यूरिनरी ऐबसेस (स्फोट) हो सकता है, गुह्यदेश के ठीक सामने और मध्य रेखा के ऊपर में इस व्रण शोथ काआरम्भ होता है इस का आयतन इतना बढ़ जाता है कि दोनों पार्श्वों में फैलना आरम्भ कर देता है शोथ फूल कर गोल हो जाता है। उसमें बहुत पीड़ा होता है टप टप शब्द होता है, कभी ज्वर कभी शुष्कम्प देखा जाता है, समय २ पर मूत्राघात भी देखा जाता है फोड़ा अधिक पक जाने पर उसमें मवाद की लहरों (फ्लैक चूयेशन) का अनुभव होता है।

चिकित्सा

मवाद की लहरों तक अपेक्षा करना अनावश्यक है मूत्र मार्ग के भीतर शलाका प्रविष्ट करके विटप प्रदेश (पेरिनियम) की मध्य रेखा के ऊपर से अन्दर का शोफ चीर देना चाहिये और उसी व्रण के मार्ग में और मूत्राशय में अँगुली डाल कर चालित करें। इससे भी फोड़े का मुख न खुले ! तो बाहर पेरिनियम (विटप प्रदेश) अथवा अन्दर सरलान्त्र में फोड़ा जा सकता है,

मूत्र मार्ग का नाड़ी व्रण Urinery fictuloe

मूत्र नाली में संकीर्णता होने से यूरिनरी स्फोट होता है। अधिक तर उससे मूत्र मार्ग में नाड़ीव्रण (नासूर) उत्पन्न हो जाता है; अस्त्र चलाने के दोष से अश्मरी होने से भी फिश्च्यूला हो सकता है। यह नाडीव्रण तीन प्रकार का होता है। १—विटप प्रादेशिक (पेरिनियल) मौष्किक नाड़ी व्रण (स्क्रोटल फिश्चयूला) ३) शैश्निक नाड़ी व्रण बिट प्रादेशिक नाड़ी व्रण अकेला होता है, और बहुत भी होते हैं परन्तु अण्ड कोष में अधिक नाड़ी व्रण हो सकता है। और गुदा के बाहर भी हो सकता है,

चिकित्सा

स्ट्रिकचर से यदि नाड़ी व्रण हुआ होवे, तो स्ट्रिकचर के अच्छे हो जाने पर और सरलता से मूत्र निकलने लगने पर यह स्वयं ही अच्छा हो जाता है। यदि ऐसा न होवे तो उसकी उपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिये विटप प्रदेश (पेरिनियम) में यदि नासूर होवे तो उसमें मूत्र नहीं लगने देना चाहिये। अपने से ही अच्छा हो जाता है। अथवा सिलवर नाइट्रेट एक सलाई में लगा कर नासूर के मध्य में लगा देवे। इससे अच्छा न होने पर दोनों मुखों का चीर देवे, और सीं देना चाहिये। मुष्क के नासूर को चीर देवे, इससे प्रायः अच्छा हो जाता है। लिङ्ग का नासूर बड़ा होने से प्रायः अच्छा नहीं होता है। इस अवस्था में उसको चीर देवे। और दोनो मुखों को छील कर सीं देना चाहिये।

अवपाटिका Peraphymosis

प्रकृति--दृढ़ शिश्नाग्र त्वचा (प्रेप्यूस) से लिङ्ग मुण्ड अवरुद्ध हो जावे, उसको अवपाटिका कहते हैं। विशेष कारण से लिङ्ग मुण्ड के अनावृत होने से बालकों के यह रोग होता है। युवा पुरुषो के प्रमेह उपदंश आदि रोगों से क्षत पैदा होकर लिङ्ग फूल जाने पर अवपाटिका रोग देखा जाता है। कभी कभी मैथुन करने से अपने आप ही उत्पन्न हो जाता है। इस रोग में शिश्न मणि और प्रेप्यूस (शिश्नाग्र त्वचा) में अत्यन्त सूजन हो जाती हैं, और शीघ्र उसको चिकित्सा न करने पर लिङ्ग की अवरोध रेखा में घाव, और यहांतक कि मांस सड़ जाता है।

चिकित्सा

दोनों हाथों के अंगूठे और तर्जनी से लिङ्ग को पकड़ कर के दोनों अगूठों से दबा कर लिङ्गमुण्ड का शोथ, और रक्त को विलीन कर देवे। और प्रेप्यूस (शिश्नाग्र) त्वचा को खींच कर ऊपर में लाने की कोशिश करे। इससे काम न बनने पर रोकने वाले चमड़े को खींच कर छुरी से चीर कर अलग कर देवे।

परिवर्तिका Phimosis

लक्षण—इस रोग में शिश्नाग्र त्वचा प्रेप्यूस बढ़ कर लिङ्ग मुण्ड को चारों तरफ से ढक देता है। और वह लिङ्गमुण्ड के ऊपर से सहज में खींच कर उन्मुक्त नहीं की जा सकती है। अनेक व्यक्तियों के यह जन्म से देखा जाता है। कभी कभी यह प्रमेह और उपदंश से पैदा होते हुये देखी जाती है। इसमें लिङ्ग का मुख अत्यन्त सिकुड़ जाता है, इससे रोगी को पेशाब करने में बहुत तकलीफ होती है; और समय समय पर मूत्रा घात भी हो जाता है। इस रोग में रोगी पेशाब करने के लिये बहुत जोर लगाता है इसमें गुदभ्रंश Prolapse of the rectum अन्त्रवृद्धि मूत्राशय की उग्रता और अश्मरी के सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

समय समय पर — नेश मूत्रातिसार हिमस्यूरिया (मूत्र में रक्त आना) भी दिखलाई देता है। इसमें नीचे के अङ्ग का संकोचन और बहुत काल का रोग होने से पथरी की पीड़ा पैदा हो जाती है। इस रोग में लिङ्ग का मुण्ड नहीं खुलता है। मैथुन आदि में बड़ा ही कष्ट होता है। शिश्नाग्र त्वचा प्रेप्यूस के अन्दर शुक्र आदि का स्राव जम जाता है प्रमेह आदि रोग पैदा हो जाते हैं। कभी कभी स्ट्रिकचर के समान सब लक्षण देखे जाते है।

चिकित्सा

इस रोग में अस्त्र चिकित्सा की जाती हैं। इसमें त्वकछेद Circumcision अथवा शिश्नाग्र त्वचा का मुख बड़ा कर देवे। पहिले कही हुई प्रक्रिया में लिङ्ग मुण्ड और शिश्नाग्र त्वचा के मध्य में एक अँगुलि अथवा शलाका प्रवेश करके सर्कम साइजिंग फर्सेप्स, (संदश) से उसको दवाये रक्खे और छुरिका से शिश्नाग्र त्वचा को छाल देवे इससे रक्त निकलने पर आहत अंश का भली भाँति धो देवे। इसके बाद सीं देना चाहिये। और आइयोडो फार्म की वत्ती से व्रण को ढका रक्खे। बालकों के लिङ्ग को नहीं सींना, चाहिये। स्नान के समय बालकों के वस्त्र का खोल कर पचन विरोधी वत्ती (एण्टीसेप्टिक गज) में बोरेसिक मलहम मालिश करके उसमें व्रण को ढक देवै मामूली पीड़ा में शिश्नाग्र त्वचा फैलाई जा सकती हैं।

यह एक साधारण रीति है। प्रतिदिन हाथ से शिश्न मणि के ऊपर शिश्नाग्र त्वचा को छोड़ने की कोशिश करे नित्य विस्तारक perpetual Dilator से भी यही कार्य हो सकता है, किन्तु उक्त दो प्रक्रियाओं के बीच में त्वचा का छेदन ही अच्छा है।

मुष्क की विविध पीड़ायें Diseses ofthe Scrotum

मुष्क और उससे मिले हुये यन्त्रों में अनेक प्रकार की पीड़ायें होती हैं। उनके मध्य में मुष्क का त्वगार्बुद (एपिथिल्यूमा) मुष्क का श्लीपद (एलिफेन्टियासिस) वृद्धि (हैड्रोसील) शिरावृद्धि (वेरिकोसील) रक्तजवृद्धि (हामेटोसील) अर्काइटिस (अण्डग्रंथि प्रदाह) आदि वर्णन करने के योग्य हैं।

एपिथिल्यूमा

मुष्क के एपिथिल्यूमा त्वगार्बुद का दूसरा नाम चिमनीसुइपार का कैन्सर (कर्कश व्रण) पहिले मुष्क में यह एक चर्म कील अथवा ट्यूबार्कल उभार के रूप में प्रकाशित होता है। इसके बाद वह फट जाता है और उसमें घाव हो जाता है, यही क्षत बढ़कर किसी २ स्थल में ठीक फूल कारी के तुल्य आहार धारण करता है। वंक्षण

ग्रन्थि (इंगूइनेल ग्लैंड में प्रदाह होकर सब ग्रन्थि फूल जाती हैं। सब सार ग्रन्थि अण्डकोष आक्रान्त हो जाते हैं। इस रोग में उपेक्षा करने पर प्रायः सांघातिक हो जाता है।

चिकित्सा

छुरिका से मांसार्बुद (कोलर) को काट देवे, और इंगूइनेल (वंक्षण) स्थपर बढ़कर कड़ो पड़ जावे तो उस ग्रन्थि को काट कर अलग कर देवे। अण्ड ग्रन्थि (टेष्टिकल) आक्रान्त होने पर उसको छीलकर अलग कर देवे।

मुष्क का श्लीपद Elephantiasis Seroti

कारण व प्रतीकार—जिस भांति पैरों में श्लीपद होता है वैसे ही मुष्क में भी श्लीपद होता है। इसके आक्रमण से दोनों मुष्कों का आयतन बढ़ जाता है। फाईलेरिया सैंगूइनस हमि निस नामक क्रिमि के आक्रमण करने से सम्पूर्ण लसीका नालियां बन्द हो जाती हैं जिनसे यह रोग पैदा हो जाता है। यह रोग भारतवर्ष के पूर्वी भाग में अधिक देखा जाता है। मुष्क के साथ अनेक समय लिंग भी आक्रान्त देखा जाता है। श्लीपद से पीड़ित मुष्क और लिङ्ग से मांस को खुरच देना चाहिये। इस अस्त्रोपचार के पहिले आक्रान्त अंश को ऊंचा करके रक्खे, और उपयुक्त बंधन से बांध देवे, फिर उसमें अस्त्र प्रयोग करे।

कोष वृद्धि Hydrocele

अंड कोष में अथवा उसको शुक्र नाली (स्पार्मेटिककार्ड) में जल इकट्ठा होकर कोष के आयतन को बढ़ा देवे। उसको कोष वृद्धि (हाइड्रोसील) कहते हैं प्रधानता से कोष वृद्धि दो प्रकार की होती हैं। १-अण्ड कोष का (Testes) हाईड्रोसील, २-शुक्र नाली में हाईड्रोसील यही दो तरह को कोषवृद्धि और चार भागों में विभक्त है। १-कोमन वा (दोषज वरुण रोग) वेजाइनल हाइड्रोसील (योनिगत वरुण रोग) २ सहज वरुण रोग (कञ्जेनिटेल हाइड्रोसील ३ शैशव वरुण राग (इनफैण्टाल हाइड्रोसील, ४-वंक्षण गत वरुण रोग (इंगूइनेल हाईड्रोसील) अण्ड वेष्ट (Tunicavaginalis ट्यूनिक वेजाइनेलस के अन्दर में जल इकट्ठा हो जाने से चार प्रकार जल दोष होता है।

दोषज वरुण रोग वा योनिगत वरुण रोग

Common or vaginal Hydrocele

निर्वचन अण्डवेष्ट Tunicavaginalis ट्यूनिकावेजाइनेलिस के गह्वर के बीच में

जल इकट्ठा हो जावे तो उसको यांत्रिगत वृषण रोग (वेजाइनेल हाइड्रोसील) अथवा दोषज वृषण रोग (कामनहाइड्रोसील) कहते हैं।

कारण

इसके मुख्य कारण का आज तक पता नहीं लगा है। बाल्यअवस्था मध्यम अवस्था, पैतृक संक्रमण, संधि वात विषम ज्वर (मलेरिया) आदि इसके पूर्व प्रवर्तक कारण कहे जाते हैं। मामूली २ आघात बार बार पाखाना पेशाब करने में जोर लगाना और अण्ड ग्रन्थि की कोई २ पीड़ा इसका उत्तेजक कारण है

लक्षण

कोई कोई इसको मृदु प्रकृति का जलोदर कहतेहैं। किन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्त से उदर से अतिरिक्त जलोदर रोग नहीं पैदा होता है। जल दोष के अन्दर का रस पीला होता है। आपेक्षिक गुरुत्व १०२० से १०३० तक होता है। इसमें अधिक मात्रा में अलव्यूमिन Allumin देखा जाता हैं। साधारणता से हाइड्रोसील देखने में चिकना फैला हुआ, स्थिति को निश्चय रखने वाला कोमल होता है। इसका निश्चय करने वाला लक्षण जल दोष से पल थल पन होता है। जल दोष वंक्षण तक फैल जाने से समय समय पर अन्त्र वृद्धिHernia समझ कर भूल हो जाती है। इसलिये अति विचार से परीक्षा करना चाहिये।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा दो प्रकार की है (१) प्रशामक (पेलिपेटिव) (२] मूलोत्पाटक (रेडिकेल)

प्रशामक

कोष्ट वृद्धि में त्रिकूर्चक शस्त्र (ट्रोकर) और नाड़ी शस्त्र (कैन्यूला) से समय २ पर वेधन करे। इससे जल बाहर निकल जाता हैं। इसको प्रशामक चिकित्सा कहते है इस प्रकार की चिकित्साके पहिले कोष के अन्दर में अस्त्र की स्थिति के स्थान का निर्णय कर लेना चाहिये। क्योंकि अस्त्रसे अंड के आहत हो जाने पर बहुत विपत्ति होती है, कोष अधिक ढका हुआ न होवे तो अण्ड जाना जा सकता है। बायें हाथ में पीछे से अण्ड कोष को पकड़ कर दबावे। इससे उसके ऊपरी भागमें खिंचाव मालूम होगा। इसके बाद अण्ड कोष के जिस स्थान में शिरा न होवे उस स्थान को बचाकर ट्रोकर शस्त्र अथवा कैन्यूला प्रवेश करे। बाद को अण्ड कोष आहत हो जाता

हैं इस लिये ट्रोकर को उसी समय में ऊपर को चलावै। उससे जल उसी समय बाहर निकल जाता हैं। जल बाहर होते ही केन्यूला (नाड़ी शस्त्र) को बाहर निकाल लेवे और उसके ऊपर लिस्फ की गद्दी रख देवें इसकानाम प्रशामक चिकित्सा है। इस चिकित्सा की बार २ आवश्यकता होती हैं।

मूलोत्पाटक चिकित्सा

यदि रोग का मूलोच्छेद करना होवे तो अण्ड वृद्धिसे जल निकाल कर उसी केन्यूला (नाड़ी शस्त्र) के भीतर से कोष के मध्य में टिंक्चर आयोडीन प्रक्षित (इन्जेक्ट) करे। दो ड्राम की मात्रा साधारण है। आयोडीन के पहिले यदि १० बूंद-५ पर्सेन्ट कोकेन, कोष के मध्य में प्रक्षिप्त की जावे। तो पहिले २ कोई यातना नहीं मालूम होती है। किन्तु कोकेन के तेज के कम हो जाने पर उत्कट ज्वाला एक घंटा अथवा डेढ़ घंटा तक रहता है। उसमें रोगी अत्यन्त विह्वल हो जाता है आयोडीन के बदले में विशुद्ध कार्बोलिकएसिड अथवा, परक्लोराइड आफमर्करी (२००० ए १) यदि प्रक्षिप्त किया जावे तो समान ही लाभ होता है। रोगी को कष्ट, जलन आदि नहीं होती हैं, इस से लाभ न होने पर दो अथवा एकबार और प्रक्षित करै। इस से कार्य सिद्धि न होने पर अस्त्र से, अण्डच्छेद कला (ट्यूनिक वेजाइनेलिस) को खोल देवे। उस का कुछ अंश काट देवे बाकी भाग को सींकर बांध देवै। किन्तु यह क्रिया सब समय में सफल नहीं होती है। इसलिये यदि रोग का सम्पूर्ण मूलोच्छेद करना होवे तो कोष को चीर कर अलग कर देवे। इस के तल में जैसा अङ्कुर होता है वैसा ही रोग भर जाता हैं। बालकों के जल दोष अपने से ही अच्छा हो जाता हैं। ऐसा न होने पर उद्बेग लोशन का प्रयोग करै। यदि अच्छा न होवै तो सूक्ष्म ट्रोकर और केन्यूला से कोष वेधन करें। इस के बाद यदि आवश्यकता होवे सोउस के भीतर आयोडीन का मृदु द्रव प्रक्षिप्त करै।

आजन्म जल दोष- Congenital hydrocele

प्रकृति—अण्डच्छदकला (ट्यूनिक वेजाइनेलिस) के कोष के मध्य में जल इकठा हो जावे उसको आजकल दोष (काञ्जेनिटैल हाइड्रोसील) कहते हैं। अंडकोप को दबाये रखने से उसके अन्दर का रस उदर गह्वर में चला जाता है। रोगी के कांखने अथवा खांसने पर उसी तरङ्ग का अनुभव होता है। इस अवस्था में आजन्म हर्निया के साथ इसका अधिक सदृश्य मिलता है।

चिकित्सा

इस प्रकार के जल दोष में पेटी (ट्रास) व्यवहार करना आवश्यक है। वंक्षण गत सुरङ्गा (इंगूइनेलकेनाल) के ऊपर पट्टी प्रयोग की जाती है। ऐसा करने पर उसका गड्ढा धीरे २ भर जाता है। और किसी प्रकार के हर्निया के उतरने की कुछ भी शंका नहीं रहती हैं। इस रूप से वही छिद्र बन्द हो जावे। तो साधारण जल दोष के तुल्य उसकी चिकित्सा करे। इससे कार्य सिद्धि न होनेपर मूत्र वस्ति के ऊर्ध्व की स्नायु (फर्जिकुल प्रोसेस) को चीर देवे, उसकी ग्रीवा बांध देवे और थैली को निकाल देवे।

अण्डकोष की शिरा प्लुती Varicocele

कारण—अंडकोष की सब शिरायें प्लुत (वेरिकाज) भाव को प्राप्त होवे और विस्फारित हो जावे उसको वेरिकेसिल कहते है। इसका स्वाभाविक कारण अधिकतर नहीं जाना जाता है इसलिये बहुत अनुसन्धान के बाद इसकी कई एक अवस्थायें कारण रूप से कही जाती है। उनका संक्षेप से वर्णन किया जाता है। अंडकोष का शिथिल भाव अल्प अवस्था से और निरन्तर जननेन्द्रिय की उत्तेजना होवै, चिरकाल तक खड़े होकर काम करे और रेतोवह (स्पार्मेटिक) शिरा के अधिक दीर्घ हो जाने पर वेरिकोसिल होता है।

लक्षण—अण्ड कोष में भार और पूर्णता मालूम होवै, अथवा शिथिलता वा तीव्र वेदना होवै, ये सब लक्षण दिन भर परिश्रम करने के बाद बढ़ जाते है। शयन करने पर पीड़ा कम हो जाती है। इसमें शारीरिक कोई कष्ट नहीं मालूम होता हैं। रोगी के मन में बेचैनी रहती है, जिससे उसके ध्वजभंग हो जाता है। अथवा पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति उसकी क्षीण हो जाती है। अण्ड कोष फूल जाता है, और उसके ऊपर में प्लुतशिर (वेरिकाज) तथा सब शिरायें स्पष्ट दिखलाई देती हैं। लेटने पर अंडकोष की वहीवृद्धि कम हो जाती ,है खड़े होने पर बढ़ जाती हैं।

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा दो प्रकार की है, प्रशामक और मूलोत्पाटक। शीतल परिषेक, उपयुक्त व्यायाम और अस्त्र को नियमित रूप से प्रयोग करने पर रोग शान्त हो जाता है और रोगी सदा जांघिया वा लंगोट पहन करके अंड कोषों को खींच कर बांधे, मूलोत्पाटन करना होवै, तो इसमें अस्त्र प्रयोग करके सब अंडकोष की प्लुत शिरा (वेरिकोसिल) को काट लेवे, यह अस्त्रोपचार अत्यन्त कठिन है।

रक्तज वृद्धि Haematocel

अंडच्छद कला ट्यूनिक वेजाइनेलिस के गह्वर में रक्त प्रस्तुत होकर इकट्ठा हो जावे. उसको रक्तज वृद्धि (हीमैटोसील) कहते हैं. जलदोष (हाइड्रोसील) के भी बीच में रक्त इकट्ठा हो जावे तो उसको भी हीमैटोसील (रक्तज वृद्धि) कह सकते हैं।

कारण

अंड कोष में चोट लगे अथवा गुरुभार वाले द्रव्य को उठावे, अथवा उठाने की चेष्टा करे, अथवा हाइड्रोसील में ऐसी कोई चोट लग जावे। अथवा हाइड्रोसील शस्त्र क्रिया करने पर कोई रक्त नाली अंड ग्रन्थि के बिंध जाने पर रक्त वृद्धि हो जाती है। कभी अंडच्छद कला (ट्यूनिक वेजाइनेलिस) का पुराना प्रदाह इसका कारण हो जाता है, समय समय में स्वयं ही पैदा हो जाता है।

लक्षण

रक्तज वृद्धि सहसा दिखलाई देने लगती है। इसका आकार गोल अथवा अंडा के समान और चिकना होता है। पहिले २ उसमें अत्यन्त खिचाव मालूम होता है। किंतु बाद को कम हो जाता है। अधिकतर इसके बीच में शोणित तरङ्ग (फ्लकच्यूयेशन) दिखलाई नहीं पड़ती है। अन्त्रवृद्धि अथवा कोषवृद्धि के साथ में इसका भ्रम हो सकता है। परन्तु एक परीक्षा करने पर दोनों का विभाग मालूम हो जाता है। जल दोष होने पर अंडकोष का मांस थल २ होता है। रक्तज वृद्धि होने पर वह खिचता है और सांस लेने पर, खांसने पर अन्त्रवृद्धि में ह्रास वृद्धि होती है, परन्तु रक्तज वृद्धि में कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता है।

चिकित्सा

पीड़ा कम दिन की होने पर शयन पर विश्राम करावे, अंडकोष में शीतल जल का परिषेक करे। अथवा उद्धय लोशन इस्तेमाल करे और आक्रान्त अंश को एक, तकिया पर रखने से रक्त शोषित होकर कम हो जाता है, इससे कार्य की सिद्धि न होवे तो ट्रोकर अथवा केन्यूला नामक शस्त्र से रक्त निकालें। इस तरह की चिकित्सा के बाद अनेक समय थैली (सैक) इस रुधिर रक्तसे भर जाती हैं। आर्थिक अवस्था में सेलो (सेक) को उन्मुक्त कर के रक्त को बाहर निकालदेवे। रक्त के जमाट को भी बाहर कर देवे और थैली को चीरकर कटे हुये अंश को सीं देना चाहिये। इस कार्य के समय में रेतोवाहनी नाली (स्पार्मेटिककार्ड) और अंड ग्रंथियों में किसी तरह से आघात न लगे, इस विषय में पूरा ध्यान रक्खे, इस क्रिया से पुराना रोग अच्छा हो जाता है।

अन्त्र वृद्धि Hernia

निरुक्त—कोई एक यंत्र, अथवा आशय का कुछ अंश, उस के गह्वर से किसी अस्वाभाविक छेद से बाहर निकल आवे । उस को अन्त्र वृद्धि (हर्निया) कहते हैं । करोटि, (स्कल) वक्ष, उदर, इन तीन गह्वरों के अन्दर अन्त्र वृद्धि हो सकता है । परन्तु उदर गुहा से सक्रान्त अंत्र वृद्धि ही वर्णन की जायगी । यह दो प्रकार का होता है । (१) आजन्म (२) सम्प्राप्त साधारण रीति से तीन प्रकार की अन्त्र वृद्धि होता है । (१) उरु पर्यन्त अन्त्र वृद्धि (फिमोरैल) (२) वंक्षण पर्यन्त अत्र वृद्धि (इङ्गूइनेल) (३) नाभि पर्यन्त अंत्र वृद्धि (अम्बीलिकैल) और नीचे लिखी हुई हर्निया (अन्त्र वृद्धि) बहुत कम देखा जाता हैं । जैसे—श्रोणि गवाक्ष पर्यन्त अंत्र वृद्धि (आब टूरेटर वेन्ट्रल) नाभि को छोड़ कर उदर में उदरच्छदकला को चीर कर जो अन्त्र वृद्धि होता हैं) एपिगेष्ट्रिक (हृदयाधारिक प्रदेश की अंत्र वृद्धि) डायाफ्रोमेटिक (महा प्राचीरक पेशी को ताड़कर अंत्र वृद्धि बाहर निकालें) लम्बार (कटिगत अंत्र वृद्धि) इस्कियाटिक (गृध्रसी द्वार गत अंत्र वृद्धि) पेरिनियल (विटप प्रदेशिक अत्र वृद्धि) वेजाइनेल (योनिगत अत्र वृद्धि) रेक्टल (गुदा तक अत्र वृद्धि) ।

साधारण अन्त्र वृद्धि

अवस्था भेद—साधारण रीति से अन्त्र वृद्धि की पांच अवस्था—

(१) परिचाल्य (रिड्यू सिबल) Reducible)

(२) अपरिचाल्य (इरड्यू सिबल Irreducible)

(३) विबद्ध (स्ट्राङ्गूलेटेड Strangulated)

(४) आबद्ध (इनकारसारेटेड Incarcerated

(५) प्रदाहित (इनफ्लेमड Inflamed)

परिचाल्य अंत्र वृद्धि Reducible Hernia

निरुक्त—जो अन्त्र वृद्धि, उदर, Abdomen गह्वर में चली जासकती है, अर्थात् रोगी के लेटने पर अपने आपही जा उदर में फिर आकर ठीक हो जाती है । अथवा रोगी स्वयं ही अथवा चिकित्सक जिसको सहज में ही ठीक बैठा सकता है । उसको रिड्यूसिबल हर्निया कहते हैं ।

लक्षणादि—उदर के एक रिङ्ग (श्रोणिरज्जु मध्यधरीछिद्र) के मध्य में पहिले पहिले केवल पूर्णता व निर्गम का भाव दिखलाई देता है । रोगी के खड़े होने पर स्वांस लेने पर खांसने पर, निकला हुआ अंश स्पष्ट मालूम होता है । किन्तु रोगी के शयन करने

पर वह बिल्कुल नहीं दिखलाई देता हैं। उपेक्षा करने पर धीरे २ इसका आयतन बढ़ जाता हैं और वह शाथ के समान वृद्धि को प्राप्त होता हैं। रोगी के खांसने पर भी वह स्फीत बढ जाती है। यदि हर्नियां के अन्दर अन्त्र होवें। तो फली हुई और स्थित को स्थापित करने वाली होता हैं।

और उसमें अंगुलि से आघात करने पर उसके मध्य से एक प्रकार का शब्द निकलता है। उस अन्त्र के अंश को दबा कर उदर में प्रवेश कर देवें। वायु और रसके स्थान से हट जानेके कारण एक प्रकार का विचित्र कोंकों शब्द सुनाई पड़ता हैं। हर्निया (अन्त्र-वृद्ध) में वपा (आमेन्टम) होवे तो अंगुलि से आघात करने पर कोई शब्द बाहिर नही होता है। बल्कि वह कठोर और अस्थिति स्थापक होता है। उदर में अन्त्रके बैठा देने पर कोई प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता है।

चिकित्सा

अन्त्र वृद्धि की चिकित्सा दो प्रकार की है। एक, प्रशामक. दूसरी मूलोत्पाटक।

प्रशामक चिकित्सा

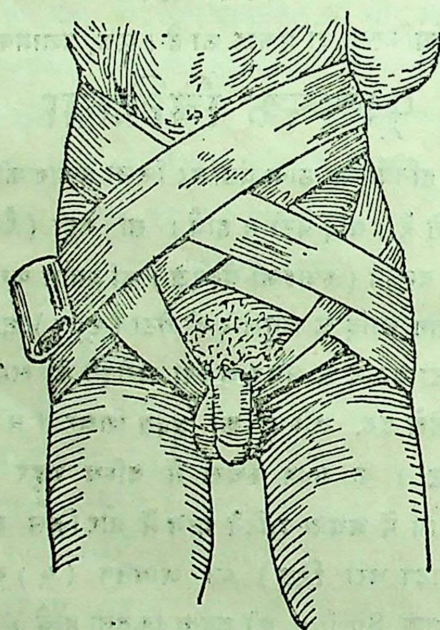
अपने स्थान पर हर्निया को ठीक बैठाकर किसी प्रकार की पेटी व्यवहार करनेको प्रशामक चिकित्सा कहते है। यदि पेटी न होवे। तो गद्दी (पैड) और अष्टाङ्काकार श्रोणि परित वंक्षण गत बन्धन (स्पाइका बैन्डज) का प्रयोग करना आवश्यकीय है। हर्निया की स्थिति आयतन आदि के अनुसार ही पेटी (ट्रस) का आकार प्रभेद आदि किया जा सकता है। पेटी बनाने के समय अथवा खरीदने के समय कई एक बातों का विचार करना चाहिये जैसे उरु, अस्थि, का वृहत शिखर (ग्रेटर्ट्र कैन्टर) और जघन च्यूड़ा (इलियमका क्रेष्ट) के मध्य स्थल में वस्थि गह्वर का माप (२) हर्नियां का प्रकार (३) बायें भाग में अथवा दाहिने भाग में और किस अश में यह उत्पन्न हुआ हैं। रिङ्ग (श्रोणि रज्जु मध्य धरा छिद्र) का आयतन (५) रोगी की अवस्था और (६) कमानी (स्प्रिङ्ग Spring) की दृढ़ता कितनी होवे। कभी भी उसको खुल न रक्खे रात्रि में एक हलका पेटी बांधे। और स्नान करने के समय में हिन्दुस्तानी रबड़ अथवा वालकेनाइट (काले वर्णकी कड़ी) रबड़से पेटी बनाकर व्यवहारमें लाना अच्छा है।

मूलोत्पाटक चिकित्सा

अन्त्र वृद्धि को एक बार में जड़से नाश करना होवे। तो अन्त्र को ठीक स्थानमें बैठा कर उसके कोष (सैक) का ध्वंस करना चाहिये। नली के नाल और रिङ्गको बांध देना चाहिये। बालकों के अग्रपाटिका (फाइमोसिस) प्रभृति कारणों को दूर करके एक पेटी

के प्रयोग से ही कार्य सिद्ध हो सकतो है। किन्तु बालक और युवा पुरुष का रिङ्ग अत्यन्त बड़ा होता है, इस लिये कार्य की सिद्धि में बाधा पहुँचती है। इस अवस्था में और भी अनेक प्रक्रियायों के अवलम्बन न करने पर रोग का मूल नाश नहीं किया जा सकता है। इस लिये पहिले २ उड़स्पैनृत ओयरेन और होटन ये चार प्रसिद्ध पाश्चात्य शल्य चिकित्सकों को भिन्न २ प्रक्रियाओं का अवलम्बन किया जात था। किन्तु इन चारों प्रक्रियाओं का इस समय व्यवहार नही होता है, इस समय मैसिओयेनष्टनमोर विपय मैक वर्गि॰ बर्कर, बल, लिष्टिड आदि शल्य चिकित्सकों की प्रक्रियायों का अवलम्बन होता है, हर्निया को ठीक अपने स्थान पर फिर बैठा कर के उसकी थैली [सैक] की ग्रीवा बांध देवे। यह सब क्रिया करके उस को काट देवै और रिङ्ग को सींकर के बांध दें सिद्ध हस्त शल्य तन्त्र चिकित्सक ही इस कार्य में हाथ डाले।

अन्त्र वृद्धि में स्पाइका बन्धन का चित्र



अपरिचाल्य अन्त्र बृद्धि Irreducible Hernia

जो अन्त्र वृद्धि उदर में परिचालित नहीं की जा सकती है, उसको अपरिचाल्य अन्त्र वृद्धि कहते हैं।

कारण

प्रदाह से रिङ्ग अथवा हर्निया का रन्ध्र पथ मोटा हो जावे, और हर्निया का आयतन बढ़ जावे कोष (सेंक) हर्निया एक में मिल जावे अथवा कोष के बीच में रस जम जावे। तब अपरिचाल्य हर्निया हो जाती है।

लक्षण—इसके लक्षण पहिलो अन्त्र वृद्धि के तुल्य ही हैं। किन्तु भेद यही है। कि यह अंत्र भीतर प्रवेश नहीं हो सकता है, इसमें समय २ पर शूल के तुल्य वेदना होती है, और अजीर्ण के सब लक्षण प्रकाशित होते है, इस भांति हर्नियाका आयतन बढ जाता है इस लिये समय पर विपत्ति होने की सम्भावना है,

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा करनेपर दो विषयोंमें विशेष ध्यान रखना चाहिये, जिससे हर्नियामें किसी प्रकारका आघात न लगे अथवा उसका आयतन न बढ़े। किसी प्रकारसे यदि अंत्र भीतर प्रवेश की जा सके तो प्रवेश करे यदि रोगी का स्वास्थ्य अच्छा है। तो पूर्व में कही हुई किसी एक मूलाच्छेद करने वाला प्रक्रिया का अवलम्बन करे। इससे अच्छा हो जाता है, पहिले इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये (बगटूस) अर्थात पेटी बांधे। और एट्रिपत से हर्निया होवे तो ताले की तरह चिपकनेवाला पेटी (हिञ्जकपटूस) बाँधे। इससे अच्छा न होवे तब अस्त्र का प्रयोग करना चाहिये।

विबद्ध अन्त्र वृद्धि Strongulated Hernia

जिस हर्निया का अन्त्र अथवा ओमेन्टम (वपा)अर्थात उदर गुदा में उदरच्छदाकला के नीचे बसा रुप आच्छदकका वया कहते है। काविस्तृत अंश जकड़ जाता है। इस लिये उसके मध्य की शोणित नालियो में ठीक शोणित सञ्चालन नहीं होता है। अतः पहिले रक्ताधिक्य होकर फिर प्रदाह होता है, बाद को गलित क्षत (गैंग्रिन) हो जाता है उसको विरुद्ध वा विजड़ित अंत्र वृद्धि कहते हैं।

कारण—रोगी पेटीबांधने में अवहेलना करता है। इस लिये अंत्र सहसा अधिक परिमाण में नीचे आकर के एकबारगी जकड़ जाता है। क्षुद्र रिङ्ग अथवा संकीर्ण रन्ध्र के भीतर से अन्त्र वा ओमेण्टम (नवागत अंत्र सहसा नीचे आजावे तो वह अधिकतर जकड़ जाती है। अपरिचाल्य अन्त्र) वृद्धि में उतरी हुई आंत अधिक बढ़ जाने पर विबद्ध अन्त्र वृद्धि हो जाती है।

लक्षण —इस रूप वाली अन्त्र वृद्धि के दो प्रकार के लक्षण होते है, (१) स्थानिक (२) सर्वाङ्गीण पहिले परिचाल्य अंत्र वृद्धि होती है फिर उसकी यह अवस्था नहीं रहती है। यह कोमल ओर स्पर्श को न सहने वाली हो जाती है। उसमें हाथ के लगने पर भी पीडा होने लगती हैं। प्रायः फूल जाती है; खांसने पर नहीं बढती है। साधारण अंत्र की वृद्धि की यातना होती है किन्तु इस अंत्र वृद्धि में नाभि कुण्डकी तरफ भी वेदना मालूम होती है। ये उपरोक्त लक्षण स्थानिक लक्षण हैं।

साधारण लक्षणों के मध्य में कोष्ठरोध और वमन होता हैं, । पहिले भुक्त द्रव्य का वमन, फिर पित्त मिला हुआ वमन होता हैं, और मल में दुर्गन्ध आता है, अनेक स्थानों पर काष्ठ रोध अत्यन्त कष्ठ दायक होता है, ऐसा कि अधोवायु भी नहीं निकलती है। कान्ति हीन मुख मण्ड से लिप्त जिह्वा नाड़ी सूत्र के समान बारीक चलती है, इसका शीघ्र प्रतिकार न करने पर मृत्यु भी हो सकती हैं, समय २ पर बद्ध मल जन्य व्रण शोथ (फिकेल ऐबसेस) पैदा हो जाता है, और उसके नाड़ी व्रण (फिकेल फिश्चूला) प्रकाशित होकर रोगी को आराम होता हैं। युवा अवस्था में तरुण अन्त्र वृद्धि के सब लक्षण कठोर भाव को धारण करते, हैं। किन्तु वृद्धावस्था में उससे पुराने भाव देखे जाते हैं।

चिकित्सा

पहिले वर्णन किया गया है। कि इस प्रकार की अंत्र वृद्धि अत्यन्त कठिन है। इस लिये जितना हो सके उतना जल्दी इसकी चिकित्सा करे।। पहिले २ कई मिनट तक हाथ से मर्दन करे, दबावे। जिससे उसकी जकड़ाहट दूर हो जावे इससे कार्य की सिद्ध न होने पर रोगी को स्पर्श ज्ञान हारक, क्लोरोफार्म आदि औषधियां सुंघावे। यद्यपि इसमें निकली आंत उदर में फिर प्रवेश न करे तब भी धीरे २ हाथ से मर्दन करे और दबावे रोगी को फिर भी चेतनता न आने पर रोग का जड़ से नाश करने के लिये अस्त्र प्रयोग करे। अस्त्र प्रयोग में देरी होने पर चिकित्सक एक बार पूरी मात्रा में अफीम का प्रयोग करे बरफ मिल जावे तो उसका स्थानिक प्रयोग करे। अथवा बड़े आयतन की गरम, एसिड की पुल्टिस कार्बोलिक प्रयोग करे। इस प्रकार की अन्त्र वृद्धि में जो अस्त्रोपचार किया जाता है। उसको हर्नियोटमी कहते हैं।

हर्नियोटमी

अन्त्र वृद्धि में अस्त्र प्रयोग करने पर दो विषयों में विशेष दृष्टि रखनी चाहिये (१) अवरोध (ष्ट्रिकचर) को द्विधाभिन्न कर के जड़ित अंत्र, और ओमेन्टम को खोल देवे (२) उपयुक्त और सम्भव हो तो उतरी हुई आंत को फिर उदर में प्रविष्ट हो कर देवे अन्त्र वृद्धि के चारों तरफ के प्रदेश के बालों को क्षुरे से कटवा देवे, फिर साबुन और जल से खूब साफ धो देवे। इस के बाद पहिले, कार्बोलिक लोशन, फिर टिन आयोडाइड स्पिरिट के लोशन में स्पञ्ज भिगोकर उस से उस स्थान को धोवे। इसके बाद हर्निया की अक्ष रेखा के ऊपर, में, तथा उस नाली की ग्रीवा के ऊपर में छुरिका

को प्रवेश कर नाली को खोल देवे । इस से रक्त निकलने पर कटी हुई सब नालिओं को बांध देवें। कोष का विस्फार, और मसृणता दिखलाई देने पर वह जाना जा सकता है। उस के पतले होने पर उसके भीतर से अन्त्र, ओमेन्टम, अथवा रस दिखलाई देता है इस अस्त्रोपचार के लिये एक प्रकार की वक्र छुरी (हर्निया नाइफ) व्यवहार में लाई जाती है । ऐसी छुरी न मिलने पर साधारण वक्र विष्टूरी से कार्य करे ।

हर्निया की नाली उन्मुक्त करके जड़ित अंत्र और वपागत अंत्र (ओमेन्टम) की अवस्था को अच्छी तरह देखे । वपागत अंत्र थोड़े दिन से उतरी हुई मालूम होवें और उस का आयतन भी छोटा होवे तो उस को फिर प्रवेश करने की चेष्टा करे । कोष (सैक) को चीर कर उस से जो रस निकले उस रस की परीक्षा करे वह मैला, सीरम से युक्त मालूम होवे तो अच्छा है यदि वह रक्त से मिला हुआ, घुला हुआ, मल की दुर्गन्धि से युक्त हो तो खराब है इसके बाद अंत्र वा वपागत अंत्र (ओमेन्टम) की अवस्था जानकर पहिले कही हुई रीति के अनुसार चिकित्सा करे।

परवर्ती चिकित्सा

अस्त्रोपचार के बाद व्रण जिस भांति न पके, ऐसे उपायों का अवलम्बन करे । फिर स्पाइका बन्धन दृढ़ रूप से बांधे, इसमें आधा ग्रेन मार्फिया त्वचा के नीचे भागमें प्रक्षिप्त करे । कोई चिकित्सक इसके साथ शतांश भाग ग्रेन ऐट्रोपिन मिलाने के लिये कहते हैं। विबद्ध अन्त्र वृद्धि की परवर्ती चिकित्सा अति आवश्यक है । रोगी को शय्या पर शयन कराके शान्ति पूर्वक रक्खे, पहिले चौबीस घंटा तक कोई खाने की वस्तु न देवे, और प्यास लगने पर एक एक टुकड़ा बरफ का चूसने के लिये देवे, अथवा एक दो मात्रा चमचा गरम जल पीने के लिये देवे । वेदना न होने पर अफीम नहीं देना चाहिये, उत्कट वेदना होने पर थोड़ी मात्रा में मार्फिया त्वचा के नीचे प्रक्षिप्त (इंजेक्ट) करना चाहिये, चौबीस घंटा के बाद थोड़ी मात्रा में तरल भोजन देवे, अन्त्र का कार्य ठीक होने पर किसी प्रकार का विरेचन प्रयोग नहीं करना चाहिये । पांच छः दिन तक एक बार भी विरेचन न होवे तो एक मात्रा एरण्ड के तैल की देवे ।

उपसर्ग

अस्त्रोपचार के बाद बहुतसे उपसर्ग पैदा हो जाते हैं, उनका शीघ्र ही प्रतिकार करे।

(१) क्लोरोफार्म के प्रयोग करने से वमन होता है । वह वमन कष्टदायक है, अतः इसमें मार्फिया का अन्तःक्षेपण करे, इससे वमन बंद हो जाता है ।

२-अन्त्र मंडल की ठीक क्रिया न होने से कठिन कोष्ठरोध हो जाता है, ऐसा होने पर किस स्थान में प्रदाह है कि नहीं, पहिले यह देखे, प्रदाह की कोई सूचना वा कारण न होने पर विरेचक अथवा टार्पेन्टाइन एनिमा (वस्ति) का प्रयोग करे।

३-जकड़ी हुई आंत में अथवा उसके ऊपर तरुण आंत्रिक प्रदाह (एन्टराइटिस) प्रकाशित हो सकता है। ऐसा रूप होने पर वेदना, वमन, और अतिसार दिखाई देता है। अतिसार में केवल कफ निकलता है। ४-अन्त्र में क्षत अथवा छेद होने पर उदरच्छद कला में दाह (पेरिटोनाइटिस) होता है। समय पर यह रोग भीषण भाव धारण कर प्राण नाश कर देता है। ऐसा रूप होने पर मार्फिया के साथ बिस्मथ दिया जा सकता है। इस अवस्था में सब तरहके कठिन खाद्य पदार्थ निषिद्ध हैं, किन्तु उत्तेजक औषधियां दी जा सकती हैं।

आन्त्रिक नाभि वृद्धि Umbilical Hernia

नाभि स्थान के बढ़ जाने पर नाभि वृद्धि (अम्बिलकैल हर्निया) कहते हैं। यह तीन तरह की होती है। आजन्मजात (Congenital) शैशव कालोत्पन्न (Infantile) और सम्प्राप्त अथवा आगन्तुक (Acvaired)।

लक्षण

बालकों के नाभि स्थल में कोमल अर्बुद के आकार में बढ़ी हुई आंत दिखलाई देवे, तो यह अंत्र वृद्धि सहज में ही जानी जा सकती है। इसको दबा देने से यह बैठ जाती है। अधिकांश स्थलों में अपने से ही अच्छी हो जाती है, ऐसा न होने पर आयु की वृद्धि के साथ उसके आयतन की भी वृद्धि हो जाती है। समय २ पर जकड़ जातीहै तब यह अनायास से बैठाई नहीं जा सकती है। इसमें अक्सर आध्मान (अफारा) अजीर्ण और शूल की पीड़ा दिखलाई देती है, कभी २ कोष्ठ बद्ध और अतिसार भी पैदा हो जाता है।

चिकित्सा

अनेक समय में बालकों की यह हर्निया स्वयं ही शान्त हो जाती है, इसके ऊपर एक बंधन स्तेमाल करने पर यह अक्सर अच्छी हो जाती है। युवा पुरुषों के नाभि स्थल में पेटी बांधे; विबद्ध अंत्र वृद्धि होने पर अस्त्रोपचार करे।

वांचाणिक अन्त्र वृद्धि (इंगूइनेल हर्निया)

प्रकार भेद—जो अंत्रवृद्धि वंक्षण की नली के भीतरसे विस्तृत होतीहै, अथवा उसके मध्य में जकड़ जाती है, उसको वांक्षणिक अत्र वृद्धि कहते है, इसके तीन विभाग हैं। प्रत्यक्ष (Direct) डाइरेक्ट) आभ्यंतरिक (Internal इंटर्नेल) तिर्यक (ओवलिक Obligue) अथवा वाह्य (External इक्सटर्नेल) अथवा मध्यवर्ती (Interstitial इण्टर्स्टिटियेल।

प्रत्यक्ष वा आभ्यंतरिक अंत्र वृद्धि, वाह्योदर के श्रोणिरज्जु के मध्यवर्ती छिद्र के (एक्सटर्नेल एब्डामिनेलरिंग) भीतर से अप्रत्यक्ष भाव में निकलती है, और उदर की गम्भीर धमनी के अंदर में होती है। इसलिये वह इस नामसे कही जाती है। तिर्यक वा वाह्य अंत्रवृद्धि वंक्षण की नली के भीतर से तिरछी नीचे आकर उदर की गम्भीर धमनी के वाह्यांश में होकर उदर से निकलती है, इसके चार विभाग देखे जाते हैं हैं। १-साधारण अथवा संप्राप्त, २ आजन्मजात, (काञ्जिनिटैल) (३) हर्नियामें सहज से थैली (एनिसिस्टैड) काञ्जिनेटल, ४ शिशु अंत्र वृद्धि इन्फैंटाइल हर्निया।

लक्षण प्रभृति

वंक्षण देश में स्फीति दिखलाई देवे, अंत्र वृद्धि असम्पूर्ण होने पर वही स्फीति वंक्षण प्रदेश में पैदा होती है। इस अवस्था में बढ़ी हुई जानुगत ग्रंथि, जानुगत अन्त्र वृद्धि (फिमोरेल हर्नियां) नाभिगत अंत्र वृद्धि मुष्कमें जल भर जाना मुष्क लोप, (Not descendedtesticle) और वंक्षण नली के फोड़े इन अनेक पीड़ाओं के साथ इसका भ्रम हो सकता है। कभी वीर्य वाहिनी नली में मेद से उत्पन्न हुआ अर्बुद अथवा दूसरी भांति का अर्बुद दिखलाई देने पर वंक्षण गत अंत्र वृद्धि समझ कर भ्रम हो सकता है, किन्तु भली भांति परीक्षा कर लेने से किसी तरह का भ्रम नहीं रहता है। इसलिये नीचे इनका भेद वर्णन किया जाता है। १ बढ़ी हुई गांठ में नली के अंदर में कुछ न होवे और गांठे उसके समान दिखलाई देवे। २-जानुगत अंत्रवृद्धि में फिमोरेल हर्निया पेडू के स्पाइन के बाहर के भागमें वही स्फीति और शोथ दिखलाई देता है। श्रोणि रज्जु के बंधनके तांगे में हर्निया की ग्रीवा होती है। वंक्षण नलीमें कुछ नहीं होता है। ३-मुष्क में जल भर जाने से वहबढ़ा हुआ अंडा के समान होता है, उसमें थल २ शब्द होता है, और फैल जाता है, वह देखने पर ही मालूम हो जाता है। रोगी के खांसने पर वह फैलता नहीं है। ४ अंड कोष में अंड का लोप होताहै। खांसने पर उसकी वृद्धि घटतीनहीं है ५-अंड कोष परिवेष्टनी झिल्ली में जल भर जाने पर यह अर्बुद के समान चौड़ी और

थल थल शब्दसे युक्त होती हैं, उसके भीतरमें पानी की लहरें कुछ २ मालूम होती हैं। ६ यदि शिरा वृद्धि हो, तो अंड कोष को फैलाने पर सब शिरायें दिखलाई पड़ती हैं।

चिकित्सा

जो अन्त्र वृद्धि की चिकित्सा वर्णन की गई है, वही चिकित्सा इसकी करे, परंतु इसमें अस्त्र काप्रयोग करना होवे, तो वाह्य उदर केरिंग (श्रोणि रज्जुमध्यावर्ती छिद्र) से आरम्भ करके हर्निया के दीर्घ अक्ष के ऊपर से नीचे और अन्दर के भाग में छुरी प्रवेश करे, इसके साथ अंड आबद्ध होवे, तो त्रिकोणाकार गद्दी (पैड) के साथ पेटी (ट्रस) व्यवहार करना आवश्यकीय है।

अंगच्छेद Amputation एम्पूटेशन

निरुक्ति—कोई अङ्ग प्रत्यङ्ग दूषित, और पीड़ित होवे जिससे रोगी के जीवन में सन्देह मालूम होवे, और उस दूषित अथवा पीडित अङ्ग प्रत्यङ्ग के आरोग्य विधान की कोई सम्भावना न होवे इस लिये उस अंग अथवा प्रत्यङ्ग को काट देना ही आवश्यकीय है इसको अङ्गच्छेद (एम्पूटेशन) कहते हैं। भिन्न २ पीडाओं में विभिन्न अङ्ग प्रत्यङ्गों का छेदन अपने २ स्थान पर वर्णन किया जा चुका है, इस लिये यहाँ पर साधारण रीति से अङ्गच्छेद के विषय में वर्णन किया जावेगा।

विभाग जबसे स्पर्श ज्ञान हारक क्लोरोफार्म आदि औषधियोंका आविष्कार हुवा है, तबसे अङ्गच्छेदादि शस्त्र क्रिया में एक नया युगान्तर पैदा हो गया है। इससे अब किसी प्रकार विपत्ति की सम्भावना नहीं है। अङ्गच्छेद तीन प्रकार का होता है। (१) वृत्ताकार (सक्यूलर) (२) अण्डा के (रैकेट) आकार काछेदन (३) दीर्घास्थि छेदन (फ्लैप)।

वृत्ताकार छेदन (सक्यूलर)

पहिले वृत्ताकार छेदन अधिकांतर किया जाता है, किन्तु इसका इस समय में अधिक प्रचार नहीं है. इसमें काटने के योग्य अङ्ग के चारों तरफ से त्वचा और उसके नीचे के सब कोमल विधान तन्तुओं को छुरी से गोलाकार काटते हैं। इसके बाद पुन

सब कोमल अंशों को इकट्ठा करके अलग कर देवे। और रक्त वाहिनी नालियों को बांध देवें इस भांति यदि अस्थि का छेदन करना होवे। तो कर पत्र शस्त्र से काटना चाहिये हाथ पैर आदि के काटने के लिये यही रीति की जाती है।

अण्डाकार छेदन [रैकेट]

इस प्रक्रिया में काटने के योग्य अङ्ग प्रत्यङ्ग को चारो तरफ अण्डा छेदन किया जाता है, इसका एक मुख ऊपर को तरफ में चालित करना आवश्यक है, अंगूठा अंगुलि वंक्षण और स्कन्ध सन्धि में किसी प्रकार का शस्त्रोपचार करना होवे तो रैकेटाकार प्रक्रिया का अवलम्बन करे।

फ्लैप आपरेशन

इस समय लम्बी हड्डियों के काटने के लिये फ्लैप आपरेशन् अधिक व्यवहार में लाया जाता है। इसमें छेद्य अङ्ग के जिस स्थल में करपत्र का प्रयोग किया जाता है, उस स्थल में नीचे की तरफ कुछ दूर तक एक अथवा दो (Flap) फ्लैप अथवा कोमलांश के टुकड़े पहिले काट कर उठाये रक्खे। इसके बाद अस्थिच्छेदन करे। अस्थि काट देने के बाद हो एक अथवा दो टुकड़े मिला कर सिलाई कर देवे। इस प्रक्रिया को इस समय अच्छा मानते है।



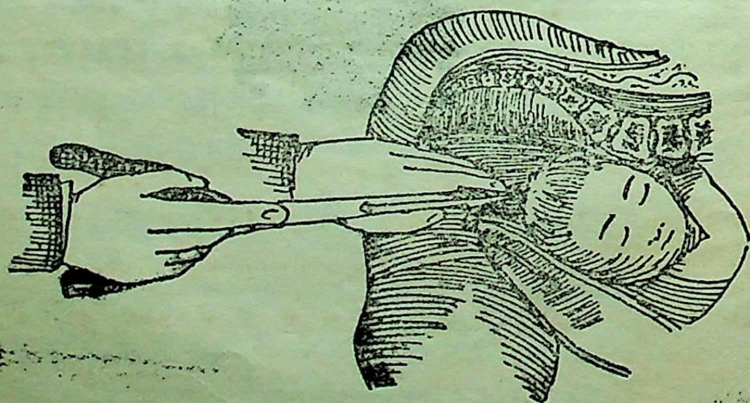
मूढ़ गर्भ

Unnatural labour

मूढ गर्भ रूपी शल्य का निकलना अत्यन्त कठिन हैं, इसमें अधिक तर उत्कर्षण आकर्षण, स्थान, परिवर्तन, उत्कर्तन, भेदन, छेदन, पीडन, ऋजूकरण, और दारुण, ये नव प्रक्रिया हैं। इन के मध्य में एक न एक प्रक्रिया की आवश्यकता ही होती है। इनके मध्य में भेदन, छेदन, और दारण इन तीन क्रियाओं से अङ्ग प्रत्यङ्ग का छेदन किया जाता हैं, अवशिष्ट छः प्रक्रिया कर कौशल से की जाती हैं, महर्षि सुश्रुत का सिद्धान्त हैं। कि गर्भ में अगर बालक जीवित होवे तो कभी यंत्र से पकड़ना नही चाहिये। कारण यह है, कि उस से जननी और सन्तान दोनों के प्राण नष्ट हो जाते हैं, वे सहज में यंत्र शस्त्र के पक्षपाती नहीं हैं। उनका मत यह है, कि पहिले कर कौशल से अथवा औषधि आदि से मूढ गर्भ की निकालने की कोशिश करे उसके कार्य की सिद्ध न होवे, तब यंत्र प्रयोग करना चाहिये। अन्तमृंत बालक के अङ्ग प्रत्यङ्ग आदि को काटने के लिये मण्डलाग्र शस्त्र, और वृद्धि पत्र शस्त्र व्यवहार में लाये जाते हैं।

इन के मध्य में मण्डलाग्रनामक शस्त्र ही उन के मत से ठीक है। कारण यह है कि तीक्ष्ण अग्रवृद्धिपत्र नामक शस्त्र से जननी के अपत्य पथ में आघात लग सकता है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में भी मूढ गर्भ की चिकित्सा के विषय में अधिक तर एक ही सिद्धान्त है। मूढ गर्भ की शस्त्र चिकित्सा चार प्रकार की हैं। (१) कपाल छेदन (क्रेनियाटमी) (२) कपाल चूर्णी करण (सिफलोट्रिप्सि, (३) शिर काटना (डकेपिटेशन) (४) एविसरेशन।

मूढ़ गर्भ निष्काशन विधि



क्रेनियाटमी

इस प्रक्रिया से भ्रूण का मस्तक चीर कर, उसे छिद्र पथ से बाहर निकाल लेवें। मस्तिष्क के बाहर निकल जाने पर, मस्तिष्क का आयतन कम हो जाता है। उस के बाद, वडिश यंत्र (क्रोचेट,) और वडिस (हुक, आदि यंत्रों से सन्तान को बाहर खींच लेना चाहिये। भ्रूण हन्तारक शस्त्रोपचार में अधिक तर पांच शस्त्र व्यवहार में लाये जाते हैं। भेदक यंत्र (पर्फोरेटर) वडिश यंत्र (क्रोचेट) कशेरुका बडिश (वार्टिब्रेल हुक, कपालच्छेदन संदंश (क्रेनियटमी फर्सेप्स) और, शिरः पिष्टक (शिफेलोट्राइब)।

भेदक यंत्र (पर्फोरेटर)

पर्फोरेटर शस्त्र दो तीक्ष्णाग्र वाले फलकों से गठित होता है। इस से करोटी (स्कल) विदारित की जाती है। इसलिये इस को पर्फोरेटर, कहते हैं। इस को कपालछेदक क्षुरक (क्रेनियट मोसीजर्स) भी कहते हैं। इस के दोनों फलकों में बाहर की तरफ धार होती है। इसलिये इस से करोटि विदारित करके उस विदारण को दोनों तरफों में बिस्तारित कर सकते हैं।

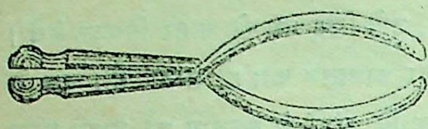
क्रोचेट

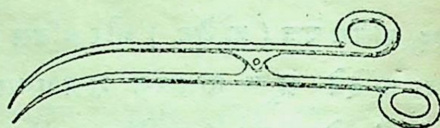
क्रोचेट, देखने में बडिश शस्त्र के तुल्य होता है यह खूब शख्त और तीक्ष्णाग्र होता है। यह एक दण्डा में लगा रहता है, यही इस का वेंट है। करोटी, के बाहर, अथवा भीतर किसी कठिन अंश में, वाडिश (हुक) को लगा कर वेंट को पकड़ कर खींचा जाता है। यह बहुत कम काम में लाया जाता है। वार्टिब्रेल हुक, बडिश यंत्र (क्रोचेट) के समान ही है।

कपालच्छेदक संदंश (क्रेनियटमी फर्सेप्स)

क्रेनियटमी फर्सेप्स (कपालच्छेदक संदेश) में दो फलक लगे रहते हैं। उन दोनों फलकों के भीतर की तरफ के मुख में दांतों के समान खर दरे कांटे होते हैं। इस रूप का खरदरा पन होने से इस से भ्रूण का मस्तक, दृढ़ता से पकड़ा जाता है, इस प्रकार के संदंश (फर्सेप्स) से मस्तकका विदारण चूर्ण करना, और समय २ भ्रूण के शरीर को बाहर निकालना, ये तीन प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं।

गर्भ भेदक यन्त्र







सिफैलोट्राइब

यह दोफलकों से बना हुआ होता है। इस से मस्तक के छोटे २ टुकड़े कर सहज में ही निकाला जा सकता हैं। इस से जो शस्त्रोपचार किया जाता है। उस को सिफैलोट्रिप्सी, कहते हैं किस स्थल पर क्रेनियटमी, करना चाहियें, इस सम्बन्ध में मत भेद देखा जाता है। इसलिये भिन्न २ मतों का समन्वय करने पर यह मात्रा जानी जाती है। साधारणतः जिस स्थल में वस्ति का युगल व्यास (कञ्जूगेट व्यास ३ इञ्च से डेढ़ इञ्च की कुछ अधिकतां में क्रेनियटमी की आवश्यकता है, ठीक १॥ इञ्च होने पर सिजरियन्सेकशन (परिचार करके) करना चाहिये।

श्री राजवैद्य पितामह पं० माधवराम शुक्लात्मज पं० रघुवर दयालु शुक्लात्मज प्रोफेसर डाक्टर बालकराम शुक्ल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्विज्ञाना-चार्य, एम् डी एच, शास्त्राचार्य कृतः पाश्चात्य शस्त्रतन्त्र समाप्तः।

* इति शुभम् *

२३—५—२८



